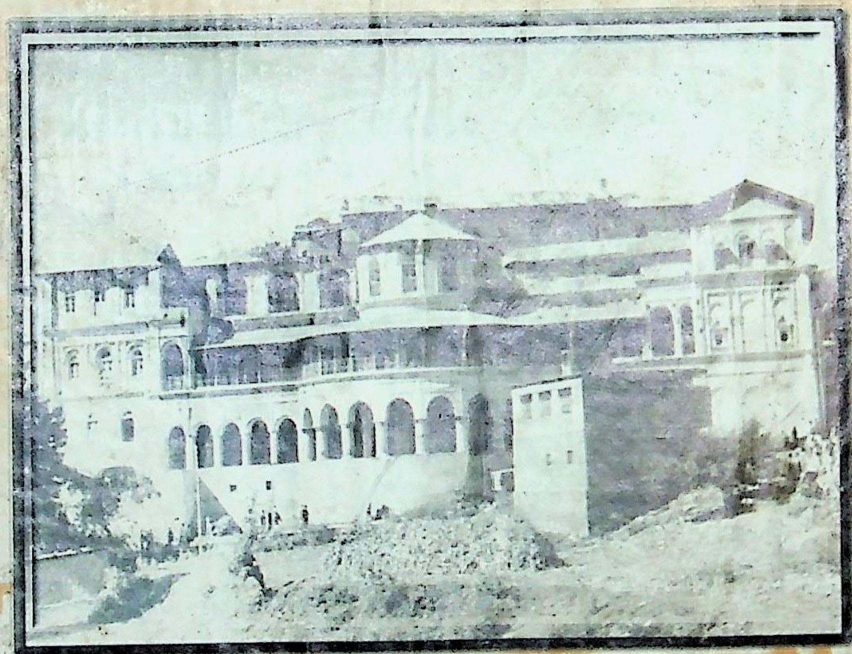
डुग्गर के दुर्ग



-शिव निर्मोही

वेद मन्दिर पुस्तकालय

के लिए

लेखक की ओर से

सादर भेंट

— प्रो० [illegible]

20.08.2002

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

डुग्गर के दुर्ग

लेखक

शिव 'निर्मोही'

95/1991

Tel 85541

प्रकाशक

शिवालिक प्रकाशन

पैंथल (उधमपुर)

Duggar Ke Durg

By

Shiv 'Nirmohi'

Published by

Shivalik Prakashan

Panthal (Udhampur)

प्रकाशन वर्ष	:	2002
प्रतियां	:	500
मुद्रक	:	क्लासिक प्रिंटर्ज बड़ी ब्राह्मणां, जम्मू।
		फोन : 951923-20243, 22871
मूल्य	:	पच्चास रुपये 50/-

आभार

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ लेखक जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ द्वारा प्रदत्त वितीय सहकार हेतु आभारी हैं। पुस्तक की त्रुटियों से अकादमी का कोई सम्बन्ध नहीं। पुस्तक में प्रकाशित सामग्री का दायित्व लेखक पर है।

पूर्व कथन

डुग्गर रण बांकुरों और वीर योद्धाओं का प्रदेश है। इस के शौर्य का प्रतीक इस भू भाग में स्थित बीसियों दुर्ग हैं। इन दुर्गों में कई दुर्ग सीमावर्ती दुर्ग हैं तो कई गिरि दुर्ग हैं जो अपनी दुर्जेता की गाथा गाते प्रतीत होते हैं। इन दुर्गों में हमारा इतिहास सोया हुआ है। कईं राज वंशों के उत्थान और पतन की कहानी ये दुर्ग हमें सुनाते हैं।

ये दुर्ग हमारी संस्कृति की धरोहर भी हैं। इन के अनुशीलन से इतिहास को नया आयाम मिल सकता है। ये दुर्ग वास्तव में हमारी सांस्कृतिक अस्मिता की अमूल्य निधि हैं। अत: मैनें इस पुस्तक में इन दुर्गों के विषय में अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक में उल्लिखित अधिकांश दुर्गों का अवलोकन मैनें स्वयं किया है और उनके स्थापत्य शिल्प को उसी रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया है, जो मैंने देखा है।

उजड़े और वीरान पड़े इन दुर्गों को राजवंशों के पतन के बाद बहुत क्षति पहुँची है। ये कई वर्षों से लावारिस से पड़े हुए हैं। मैंने उपलब्ध सामग्री को इस पुस्तक में सहेजने का प्रयास किया है।

मैं अपने उन सभी साहित्यकार और इतिहासकार मित्रों का ऋणी हूँ जिन्होंने यह पुस्तक लिखने में मेरा मार्ग दर्शन किया। मैं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण कश्मीर मंडल का कुछ किलों के चित्र प्रदान किए जाने के लिए आभारी हूँ।

–शिव 'निर्मोही'

विषय सूची

पहला अध्याय

दुर्ग-स्थापत्य

वैदिक साहित्य में 'ऋग्देव' एक ऐसा ग्रंथ है जिस में 'दुर्ग' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऋग्देव के विविध मंडलों में दुर्ग शब्द के दुर्गो, दुर्गे, दुर्गेषु, दुर्गाषि तथा दुर्गात आदि विभक्ति युक्त रूप प्रयुक्त हुए हैं।[1] धनुर्वेद में दुर्ग का वर्गीकरण है। मनु ने मनुस्मृति में दुर्ग के स्वरूप को स्पष्ट किया है। आदि कवि वाल्मीकि ने 'रामायण' में अयोध्या और पुरी (लंका) के दुर्गो का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया है। महाभारत काल में दुर्ग राज्य शक्ति के केन्द्र थे। पुराणों में भी दुर्गों का उल्लेख मिलता है। अग्नि, मत्स्य, देवी तथा ब्रह्म-वैर्वत पुराण में 'दुर्ग' के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अग्नि पुराण में दुर्गों का वर्गीकरण भी किया गया है। शुक्र नीति में श्रेष्ठ दुर्ग के लक्षण परिगणित किए गए हैं। सूत्र और ब्राह्मण ग्रंथों के अतिरिक्त कामन्दक नीतिसार, नारद शिल्प शास्त्र, जातक, अर्थ शास्त्र, मानसोल्लास, समरांगण-सूत्रधार अष्टाध्यायी तथा युक्ति कल्प तरू आदि ग्रंथों में 'दुर्ग' का न केवल जिक्र ही मिलता है अपितु दुर्ग सन्निवेश से सम्बधित विवरण उपलब्ध हैं। इन के अतिरिक्त वासव भूपाल कृत शिवतत्व रत्नाकर, विश्वकर्मा प्रकाश, वास्तुराज वल्लभ, वास्तु मंजरी आदि ग्रंथों में दुर्ग स्थापत्य पर चर्चा की गई है।

मानसर और समरांगण ग्रंथों में दुर्ग स्थापत्य पर विशद् चर्चा की गई है।

'शुक्र नीति' के अनुसार राज्य के सात अंग-राजा, मंत्री, मित्र, कोष, प्रजा, दुर्ग और सैन्यबल हैं। इन में राजा मस्तक, मंत्री नेत्र, मित्र कान, मुख

---

1. वि दुर्गा वि द्विषः पुरो ध्वन्ति राजान् एषाम् नयन्ति दुरिता तिरः। (ऋग्देव 1.41.3)

कोष, दुर्ग हाथ और पांव राज्य है। कौटिल्य ने अर्थ शास्त्र में दुर्ग के स्वरूप का विवेचन विस्तार से किया है। अर्थ शास्त्र के दुर्ग-विधानम् अध्याय में दुर्ग गोपुर, प्रतोली, तोरण, स्तम्भ और वास्तुविधा के बारे में अच्छा विवेचन है।

भोजदेव, सोमेश्वर और कृष्णदेवराय आदि सम्राटों ने भी दुर्गों की संरचना पर ग्रंथ लिखे हैं। महाराजा भोजदेव ने समरांगण सूत्रधार में दुर्ग-निवेश के स्वरूप की व्याख्या मौलिक ढंग से की है। दक्षिण के ग्रंथों में भी दुर्ग सन्निवेश पर विशद् चर्चाएं की गई हैं। इन ग्रंथों में ऋषि मानसार का ग्रंथ वर्णनीर. है। मानसार ने दुर्गों को श्रेणी बद्ध करते हुए इस के उ..उ अंग शिखिर, वाहिनी मुख, स्थानीय द्रोणक, साध्विद्धार्थक, कीलक, निगम और स्कन्धवार निर्धारित किये हैं।



सन्दर्भ

अष्टाचक्र नव द्वारा : देवानां पुरयोध्या तस्यां हिरणमय: कोश: स्वर्गो ज्योतिषा: वृत:॥
(अथर्ववेद 10,2,31)
विष हीनो यथा नागो मद हीनो यथा गज:।
सर्वेषां वश्यतां यान्ति दुर्ग हीनस्था नृप:॥
(शिव तत्व रत्नाकर क.यू.5/त6/46)
लंका पुननिर्रा लम्बा देव दुर्गा भया वहा।
नादेय पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम्॥
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देव पुरापमा।
वाजिवारण सम्पूणा लंका परम दुर्जया॥
युद्ध कांड सर्ग 3-20/22

दुर्ग के विविध रूप

अग्नि पुराण के अनुसार दुर्ग छः प्रकार के हैं और वे हैं:-

धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्ष दुर्ग, जलदुर्ग और गिरि दुर्ग। इन में गिरि दुर्ग श्रेष्ठ है।

'शुक्राचार्य' शुक्र नीति में दुर्ग के छः भेद परिखा दुर्ग, परिधा दुर्ग, वन दुर्ग, धन्व दुर्ग, जल दुर्ग, गिरि दुर्ग और सैन्य दुर्ग व सहायक दुर्ग बताये गए हैं। शुक्राचार्य के अनुसार युद्ध की सामग्री और कुशल सैनिकों के बिना राजा का दुर्ग में रहना अच्छा नहीं है। राजा के लिए निर्देश है कि दुर्ग अर्ध चन्द्राकार या चौकोनी बहुत से मकानों, जल से भरी खाई, ग्रामों से घिरी बाबड़ी आदि से युक्त हो, जिस में चारों दिशा में फाटक हो। बीच में पथ बने हों, मंदिर हो, ऐसी सुरक्षित नगरी में राजा बास करें।

मत्स्य पुराण में वर्णन है कि दुर्ग के छः रूप हैं और वे हैं- धनुदुर्ग मही दुर्ग, नर दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, जल दुर्ग और पर्वत दुर्ग। इस पुराण में पर्वत या गिरि दुर्ग को उत्तम माना जाता है। 'मत्स्य पुराण में दुर्ग से राज महल, कोषागार और इन की स्थिति आदि का भी सम्यक् निरूपण है। अग्नि पुराण में दुर्ग रचना का वर्णन करते हुए शैल दुर्ग को अभेद्य बताया गया है। इस पुराण में भी छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख है। गरुड़ पुराण में देव व मानवकृत भवनों, दुर्ग-निवेश और नगर निवेश का विस्तृत वर्णन है। किन्तु देवी पुराण में दुर्गों के केवल चार रूप ही माने गए हैं और वे हैं- जल दुर्ग. पर्वत दुर्ग, धान्व दुर्ग

सन्दर्भ

2. भारत के दुर्ग-दीनानाथ दूबे।
3. डा. प्रसन्नकुमार आचार्य द्वारा मानसर का अंग्रेजी-संस्कृत में प्रकाशित ग्रंथ।
4. भारत के दुर्ग-दीनानाथ दूबे

और वन दुर्ग। इस पुराण में पर्वत दुर्गों के दो और वन दुर्गों के तीन भेद बताए गए हैं। पर्वत दुर्ग में स्थल गुहा और वन दुर्गों में एरिण, खंजन और स्तम्भ गहन हैं। महाभारत के शांति पर्व में छः प्रकार के दुर्गों-धान्व, मही, गिरि, मनुष्य, जल और वन दुर्ग का विधान है।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में दुर्ग विधानम् एक अलग अध्याय है। 'इस ग्रंथ में राजा को निर्देश है कि वह जनपद की सीमाओं पर चारों दिशाओं में युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण कराएं। अर्थ शास्त्र के अनुसार दुर्ग चार प्रकार के हैं-1) औदक 2) पार्वत 3) धान्वन और वनद।

ऋषि मानसर रचित मानसार नगर विधानम् के अनुसार दुर्ग की आठ श्रेणियाँ हैं-1) शिविर 2) वाहिनी मुख 3) स्थानीय 4) द्रोणक 5) सम्बिद्धार्थक 6) कीलक 7) निगम 8) स्कन्धवार। ऋषि मानसर ने इन आठ श्रेणियों को सात उपश्रेणियों में विभाजित किया है। गिरि दुर्ग को तीन श्रेणियों में बांटा गया है और वे हैं 1) पर्वतावृत्त 2) पर्वता मध्य 3) पर्वतासमीपक।

महाराज भोजदेव रचित समरांगण सूत्रधार ग्रंथ में दुर्ग के स्वरूप को कृत्रिम-अकृत्रिम रूप में निर्धारित करके फिर श्रेणियों में इन का वर्गीकरण किया है। भोजदेव ने दुर्गों का वर्गीकरण करते हुए इन की जो श्रेणियाँ मानी हैं वे हैं- 1. जल दुर्ग 2. वन दुर्ग 3. गिरि दुर्ग 4. पंक दुर्ग 5. एरिण दुर्ग और 6. गुहा दुर्ग। भोजदेव ने भी पार्वतीय दुर्ग को श्रेष्ठ माना है।

डा. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल ने भारतीय शिल्प शास्त्रों के ग्रंथों के अध्ययन के बाद दुर्ग-प्रभेद किए हैं जिन में कृत्रिम व अकृत्रिम दुर्गों को निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया है-

(क) कृत्रिम दुर्ग

1. शिविर 2. वाहिनी मुख 3. स्थानीय 4. द्रोणक 5. सम्बिद्धक

---

5. भारत के दुर्ग-दीनानाथ दूबे

6. कोलक 7. निगम 8. स्कन्धवार

(ख) अकृत्रिम दुर्ग

1. पर्वतीय दुर्ग

क. प्रान्तर (ख) गिरि समीपक (3) गुहासमीपक

2. जल दुर्ग (क) अन्तर द्वीपीय (ख) स्थल दुर्ग

3. धान्व दुर्ग (क) निरूदक (ख) एरण

4. वन दुर्ग (क) खंजन (ख) स्तम्ब गहन

5. मही दुर्ग (क)पारिध (ख) पंक (ग) मृदु

6. नृदुर्ग (क) सैन्य (ख) सहाय

7. मिश्र दुर्ग (क) पार्वत (ख) वन्य

8. देव दुर्ग

दीनानाथ दुबे रचित 'भारत के दुर्ग' ग्रंथ में दुर्गो को सात श्रेणियों में विभाजित किया गया है जिन का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. गिरि दुर्ग-स्कन्ध पुराण कार ने-''सर्वेपामेव दुर्ग पार्वतीय प्रशस्थते'' अर्थात सभी दुर्गों में पार्वतीय दुर्ग सर्वश्रेप्ठ है, ऐसा माना है। इसी पुराण के अनुसार यह चारों ओर से पर्वतों से घिरे हुए पर्वतों के मध्य किसी चौरस पर्वत पर स्थित होता है। मनु ने भी गिरि दुर्ग को देव दुर्ग माना है। स्कन्ध पुराण के अनुसार गिरि दुर्ग खाई, प्राकार, ऊंची अट्टालिकाओं से युक्त होना चाहिए। उस में किवाड़ सहित मनोहर फाटक हो, जिस से हाथी पर बैठा हुआ राजा पताका सहित नगर में प्रविष्ट हो सके। दुर्ग चौकोना आयताकार हो, नदी पर तट पर बना अर्ध चन्द्राकार दुर्ग श्रेष्ठ होता है।

कौटिल्य ने बड़ी-बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग को पार्वत अर्थात् गिरि दुर्ग माना है। अग्नि पुराण में भी शैल

गिरि दुर्ग के सभी उद्धरण भारत के दुर्ग पुस्तक से साभार उद्धृत।

दुर्ग यानि गिरि दुर्ग को सर्वोत्तम बताया गया है। इस में श्रेष्ठ शिल्पियों को बसाने और पाँच दोषों-सरोवर में कीचड़, दुर्ग की जीर्ण परिखा की टूट-फूट, युद्धास्त्रों का पुराना पड़ना, अक्षम सैनिकों की मौजूदगी और युद्धास्त्रों की आपूर्ति की उपेक्षा से बचने को कहा गया है। मनुस्मृति के अनुसार इस दुर्ग का एक धनुर्धारी सैनिक सौ शत्रु सैनिकों तथा सौ धनुर्धारी हज़ार योद्धाओं से युद्ध कर सकते हैं। गिरि दुर्ग को तीन श्रेणियों में बांटा गया है-1. पर्वत वृत 2. गिरि समीपक 3. गुहा समीपक

2. <u>जल दुर्ग</u>- शुक्राचार्य ने इसे नदी दुर्ग की संज्ञा दी है। यह दुर्ग निरन्तर बह रहे जल से घिरे स्थल पर बनाया जाता है। मनुस्मृति में सब ओर से जल से घिरे हुए दुर्ग को जलदुर्ग कहा है यह दुर्ग प्रायः नदी या समुद्र के तट पर ऐसे स्थान पर निर्मित किया जाता है, यहाँ शत्रु सेना का पहुँच पाना कठिन हो। दो नदियों के संगम स्थल पर भी ऐसे दुर्ग निर्मित किए जाते रहे हैं। इस की अन्तर्द्वीप और स्थल दो कोटियां हैं।

3. <u>धान्व दुर्ग</u>-जल तथा घास आदि से रहित या सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्व दुर्ग होता है। इसे रेगिस्तानी दुर्ग भी कहते हैं। इस की भी निरूदक और एरिण दो श्रेणियाँ हैं। रेगिस्तानी दुर्ग को निरूदक कहते हैं और जहाँ भूमि में कभी खारा पानी रहा हो, वहाँ बने दुर्ग को एरण कहते हैं।

<u>वन दुर्ग</u>-वनों और दल दलों से घिरे हुए दुर्ग को वन दुर्ग की संज्ञा दी गई है। इस दुर्ग के आस-पास सघन वन होता है और यह कांटेदार झाड़ियों से परिनेष्टित होता है। इस प्रकार के दुर्गों की मुख्य रूप से दो श्रेणियाँ हैं जिन में एक को खंजन और दूसरी को स्तम्ब गहन कहते हैं। ये दुर्ग जंगल के बीच में सुरक्षा की दृष्टि से बनाए जाते थे।

<u>मही दुर्ग</u>-जिस दुर्ग के अधिक से अधिक वप्र हो उसे श्रेष्ठ मही दुर्ग कहा जाता है। वप्र मही दुर्ग के प्राण तत्व माने जाते हैं। इन से शत्रुओं

को रोकने में सहायता मिलती है। जय पृच्छ ने वप्र के आधार पर मही दुर्ग को 36 कोटियों में बांटा है। महाभारत के शांति पर्व में मही-दुर्ग की व्याख्या की गई है। मही-दुर्ग की तीन श्रेणियाँ पारिध, पंक और मृदु हैं। मृदु दुर्ग को धूल कोट भी कहा जाता है। इस दुर्ग के परकोट मिट्टी के बने होते हैं।

6. नृदुर्ग-अस्थायी छावनियों और सैन्य दुर्ग शिविर की परिगणना नृदुर्ग के अन्तर्गत की जाती है। कई प्रदेशों में इसे 'गढ़ी' भी कहा जाता है। इन दुर्गों का निर्माण सीमावर्ती क्षेत्रों के अतिरिक्त राज्य के भीतरी भागों में भी किया जाता है। विशाल दुर्ग के साथ जो छोटे-छोटे सहायक दुर्ग बनाये जाते हैं, वे भी इसी कोटि में आते हैं। नृदुर्ग की वास्तुकारों ने दो श्रेणियाँ की हैं जिन्हें सैन्य दुर्ग और सहाय दुर्ग के नाम से अभिहित किया जाता है। मित्र राजाओं के दुर्ग सहाय दुर्ग हैं और छावनियाँ या गढ़ियाँ सैन्य दुर्ग माने गए हैं।

7. मिश्र दुग-मिश्र दुर्गों की दो श्रेणियाँ हैं (क)-पर्वत और वन्य। कौटिल्य के अनुसार आपत्ति काल में राजा और जनपद की रक्षा के लिए पार्वत दुर्ग बहुत ही उपयोगी होते हैं। आपत्ति के समय प्रजा सहित राजा भाग कर इस दुर्ग में छुप कर अपनी रक्षा कर सकता है। वन्य दुर्ग का निर्माण भी किसी घने अपरिचित वन में राजा की सुरक्षा के लिए किया जाता रहा है।

इन के अतिरिक्त वास्तुकारों ने नगर दुर्ग, औदक दुर्ग, नर दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, गुहा दुर्ग आति की चर्चा भी अपने ग्रंथों में की है किन्तु ये सभी दुर्ग किसी न किसी रूप में उपरोक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत आ ही जाते हैं।

यहाँ तक 'नगर दुर्ग' का सम्बन्ध है, इस से अभिप्राय राजधानी से है। कौटिल्य ने राष्ट्र को 'पुर' व जनपद में बांटा है। पुर का अर्थ नगर या राजधानी लिया जा सकता है। प्राचीन और मध्यकाल में राजधानी की रक्षार्थ जो परकोट

और तोरण आदि बनाये जाते थे, उससे राजधानी की सुरक्षा में सहायता मिलती थी। ऐसे कई परकोट बस्तियों की रक्षा के लिए भी बनाए जाते थे।

'वैदिक इंडैक्स' में मैकडानल और कीथ ने 'पुर' का अर्थ दुर्ग से लिया है। अत: प्राचीन काल में यहाँ पुर थे, वहाँ दुर्ग भी थे।

दुर्ग-सन्निवेश (किले बंदी)

समरांगण-सूत्रधार के अनुसार दुर्ग सन्निवेश के छ: आवश्यक तत्व **हैं**:- वप्र 2. परिखा 3. प्राकार 4. द्वार 5. अट्टालक 6. तोरण

वप्र -'अर्थ शास्त्र और समरांगण सूत्रधार में परिखा के खनन से निकली मिट्टी से वप्र बनाने का विधान बताया गया है। अर्थशास्त्र में वप्र के निर्माण के लिए मिट्टी को हाथियों, बैलों से कुचल जाने तथा वप्र के ऊपर विषैली व कंटीली झाड़ियां लगाने का निर्देश है, जिस से शत्रु का प्रवेश निषिद्ध हो जाए। इस प्रकार बना वप्र 6 दंड (11 मीटर) ऊँचा और 12 दंड (22 मीटर) चौड़ा होना चाहिए। खाई से चार दंड की दूरी पर छ: दण्ड ऊँचा, नीचे से मजबूत और ऊपर से 12 दंड चौड़ा वप्र बनाएँ। ये वप्र तीन प्रकार के होते हैं उर्ध्वचय मज्वपृष्ठ और कुंभ-कुक्षित। ऊँचा वप्र उर्ध्वचय, मध्यम ऊँचा मज्व पृष्ठ और अत्यन्त मजबूत कुंक्ष-कुक्षित कहलाता है।

भू-दुर्गों के लिए वप्र अनिवार्य माना जाता है। प्राचीन सभी भू-दुर्गों की संरचना वप्र पर आधारित है। प्राचीन समय में 'पुर' के चारों ओर परिखाओं का खनन कर के वप्र बनाये जाते थे।

दुर्ग-सन्निवेश का आरम्भ भी वप्र से किया जाता था। वप्र एक प्रकार से मिट्टी का दूहा होता था। दुर्ग की रक्षा का प्रारम्भ वप्र से होता था।

परिखा-(खाई) दुर्ग निर्माण में परिखा दूसरा अनिवार्य तत्व है। अर्थशास्त्र और समरां गण सूत्र धार में तीन परिखा बनाने का विधान है। ब्रह्म वैर्वत पुराण में सात परिखाओं का उल्लेख हैं। अर्थशास्त्र में परिखा के लिए 14, 12, 10

दंड (25.6, 22, 18.25 मीटर) का विधान है। ये खाईयाँ क्रमशः 14, 12, 10 दंड चौड़ी हों। जितनी चौड़ी हों, उससे चौथाई या आधी गहरी होनी चाहिए। खाईयों की तलहटी बराबर चौरस और मजबूत पत्थरों की बनी हो। दीवार ईंट की बनी हो। कमल के फूल, घड़ियाल और जलधर उन में रहे। परिखा पर उठवा और तुड़वा पुल हों।

पाणिनि में परिखा की गहराई तीन पुरुषा (5.4 मीटर) बताई है। अर्थ शास्त्र में भी तीन प्रकार की परिखा का उल्लेख है जिन के नाम तोयपूर्णा, सपरिवाहा और पद्मावती हैं। वायु पुराण में निर्देश है कि परिखा का अग्र भाग नदी से मिला हो। शुक्रनीति के अनुसार परिखा की गहराई उस की चौड़ाई से आधी होनी चाहिए। महाभारत के शांति पर्व में परिखा में मगरमच्छ आदि जन्तु छोड़ने का विधान है।

<u>प्राकार</u>-प्राचीन ग्रंथों में प्राकार युक्त दुर्गो का उल्लेख मिलता है। 'वास्तुशास्त्र के अनुसार प्राकार की चौड़ाई वप्र के विस्तार से दुगुनी ऊँची हो। कम से कम 12 हाथ से लेकर 14, 16, 18 सम संख्याओं या 15, 17 की विषम संख्या में और अधिक से अधिक 24 हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए कि एक रथ आसानी से चलाया जा सके।

हरिवंश पुराण में प्राकार (प्राचीर) के तीन भेद हैं- 1. प्रांस प्राकार 2. इष्टका प्राकार 3. प्रस्तर प्राकार। प्रांस प्राकार मिट्टी का होता था, इसे धूलकोट भी कहते थे। इष्टका दीवार ईंट की चुनाई से तैयार की जाती थी और प्रस्तर प्राकार पत्थर से बनाई जाती थी।

अर्थ शास्त्र में कौटिल्य ने तीन प्रकार के प्राकार बताये हैं और वे हैं- 1. उर्ध्वचय 2. मज्व पृष्ठ और 3. कुंभ कुक्षित। समरांगण के अनुसार प्राचीर

---

10. भारत के दुर्ग-दीनानाथ दूबे-पृष्ठ-28
11. भारत के दुर्ग-दीनानाथ दूबे-पृष्ठ-29

17 हस्त ऊँची हो जिसे शत्रु या दस्यु लांघ न सके। पातंजलि ने अट्टालक, इन्द्रकोष तथा देवपथ को दीवार का आवश्यक अंग माना है। वास्तुविधा में प्राकार की रचना में उसके दो उपांगों का उल्लेख है- कपिशीर्ष और काण्ड वारिणी समरांगण-सूत्रधार के अनुसार कपिर्शीष (कंगूरे) एक हाथ और काण्ड वारिणी दो हाथ ऊपर होनी चाहिए।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में प्राचीर पर अस्त्र-शस्त्रों को स्थापित करने का निर्देश दिया है ताकि शत्रु के आक्रमण के समय उन का प्रयोग किया जा सके। प्राकार में रथ के आने जाने के लिए रथ पथ भी जरूरी है। ग्रंथों में ऐसे पथ को देवपंथ का नाम दिया है।

अट्टालक-वास्तुकारों ने किले बंदी के लिए अट्टालक (बुर्ज) को भी अनिवार्य माना है। अर्थ शास्त्र में दो बुर्जों के बीच 30 दंड (28 मीटर) के अन्तराल में चारों दिशाओं में अट्टालक बनाने का विधान है। अट्टालक से दुर्ग की शोभा बढ़ती है। समरांगण-सूत्रधार में प्रत्येक दिशा में प्राचीर में अट्टालक बनाने का निर्देश है। कौटिल्य ने दो अट्टालकों के बीच एक इन्द्रकोष के निर्माण के लिए आदेश दिया है। इन्द्रकोष एक प्रकार से ऐसा कक्ष होता था जिस में रहकर रक्षकं बाहरी गतिविधि की टोह लेते थे। दुर्ग में जो अट्टालक बनाए जाते थे, उन के प्रायः अलग-अलग नाम होते थे। इन की संख्या दीवार की लम्बाई पर निर्भर करती थी। अट्टालकों के बीच लगभग पच्चास मीटर के अन्तराल पर प्रहरी कंगूर होते थे और इन कंगूरों के बीच में प्रवेश द्वारों पर दुहरे बुर्ज बनाये जाते थे। अर्थ शास्त्र में यह निर्देश भी दिया गया है कि प्राकार के साथ अट्टालक और प्रतोली के बीच गुप्त मार्ग रखा जाए।

प्रवेशद्वारः-प्रवेशद्वार को 'तोरणद्वार' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। वास्तु शिल्प में तोरण द्वार को विशेष महत्व दिया गया है। अर्थशास्त्र में दुर्ग के प्रवेश द्वार को 'गोपुरम' की संज्ञा दी गई है। शब्द कल्पद्रुम के अनुसार गोपुर

'गुप' धातु से बना है जिस का अर्थ रक्षा से है। 'गोपुरों' की रचना इस प्रकार से होती थी कि एक द्वार पार करके दूसरे में प्रवेश करने पर पहले भाग के सभी भवन ओझल हो जाते हैं। सभी गोपुर एक दूसरे से बड़े लगते हैं।

समरांगण सूत्रधार में पुरद्वार को तीन श्रेणियों में रखा गया है वे हैं-1. महाद्वार 2. चक्रद्वार 3. पक्षद्वार। अर्थशास्त्र में प्रत्येक दिशा में एक द्वार होने का विधान है। समरांगण में तीन महाद्वार प्रत्येक दिशा में और वक्रद्वार तथा पक्षद्वार निर्माण का निर्देश है। पक्षद्वार का उपयोग रात्रि में मुख्य और चक्रद्वार के बंद हो जाने पर होता था। महाद्वार में प्रतोली, प्राकार, विन्यास का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रतोली एक ऐसा द्वार था, जिसके ऊपर तिमंजिला कक्ष बनाने का विधान है।

'प्राचीनकाल में मुख्य द्वार का नाम राजा या देवता के नाम पर रखने का विधान था। पणिनि के अनुसार नगर-द्वार का नाम उस दिशा में पड़ने वाले दूसरे प्रमुख नगर के नाम पर पड़ता था।

अर्थ शास्त्र में प्रवेशद्वार के फाटकों को तीन या पाँच परतों में बनाने का निर्देश है। कपाटों में लोहे की मोटी-मोटी मेखों या कोण कीलों का विधान है। प्रवेशद्वार के कपाटों को तोड़ने के लिए जब मदमस्त हाथियों का प्रयोग किया जाता था तो ये कीलें बचाव का साधन मानी जाती थीं।

दुर्ग का प्रवेशद्वार वास्तु शास्त्र के अनुसार इतना बड़ा होनी चाहिए कि चार हाथी राजा के छत्र समेत एक साथ प्रवेश कर सकें। दुर्ग में प्रवेशद्वार के बाद नरेश के राज प्रासाद, मंत्रियों, सेनापतियों के लिए आवास, सैनिकों, शिल्पियों के लिए पृथक्-पृथक् खण्डों में आवास, संकुल, मंदिरों की शृंखला, यज्ञशाला, कूप, मंडप, उपवन, पुष्प वाटिकाएँ, कोषागार, अन्नागार, आवास से 180 मीटर की दूरी पर शस्त्रागार, ध्वज, स्तम्भ या मीनार आदि किलेबंदी के भीतरी अंग थे।

दुर्ग के अनिवार्य तत्वों की सामग्री-'भारत के दुर्ग' पुस्तक से साभार उद्धृत।

मध्यकाल में दुर्ग स्थापत्य में कई परिवर्तन भी हुए। परिखा, प्राचीर, तोरण और महलों के निर्माण में परिवर्तन आया। बड़े दुर्गों के चार के स्थान पर पाँच, सात या नौ तक द्वार बने। प्रथम द्वार को राजस्थान में सूरजपोल और दूसरे को गणेश पोल का नाम दिया गया। अन्य दरवाजों के नाम योद्धाओं और देवताओं के नाम पर रखे जाने लगे। राजमहलों का स्थापत्य भी बदला। राजमहलों में प्रवेशार्थ कई द्वारों का निर्माण किया जाने लगा। राजमहल के मुख्य प्रवेशद्वार को सिंह द्वार कहा जाने लगा।

प्रवेशद्वारों से दुर्ग में सीधा प्रवेश संभव नहीं रहा। साठ अंश पर मोड़ और उसके बाद दूसरा प्रवेशद्वार बनाया जाने लगा। तोपों के प्रचलन के बाद बुर्जों पर तोपें रखी जाने लगीं। इस युग के दुर्गों पर मुगल शैली का भी प्रभाव पड़ा। मेहरावी प्रवेशद्वार, गुम्बद और जालियों का प्रचलन मुगल प्रभाव के कारण बढ़ा। राज महलों के साथ सिलहखाना, अस्तबल, रानीवास भी बने। सिलहखाना के इलावा बारूद खाना अलग से बनने लगा। प्राचीरों पर बने अर्ध-वर्तुलाकार कंगूरों का प्रचलन बढ़ा। दुर्ग के भीतर पानी के संग्रह के लिए बड़े-बड़े जलाशय भी बने। इस से दुर्ग स्थापत्य के रूप में जो निखार आया वह आधुनिक युग तक भी बना रहा।



सभी उद्धरण भारत के दुर्ग से साभार उद्धृत।

डुग्गर के दुर्ग

डुग्गर अति प्राचीन प्रदेश है। आद्य ऐतिहासिक एवं हड़प्पा कालीन अवशेष जो इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं उन में मांडा के निकट खुदाई में भूमि के 9.20 मीटर नीचे जिस दीवार के अवशेष मिले हैं, उस के अनुशीलन से लगता है कि वहाँ कभी कोई दुर्ग रहा होगा। हड़प्पा काल में जो दुर्ग अवशेष मिले हैं वे प्राय: सामानान्तर चतुर्भुज आकार के थे। लगता है कि मांडा का यह दुर्ग भी इसी आकार में रहा होगा। ऐसे और कई दुर्गों की मौजूदगी की सम्भावना की जा सकती है, किन्तु बाढ़ों के कारण उन के निशान तक मिट चुके लगते हैं।

राजतरंगिणी में डुग्गर क्षेत्र में दुर्गों के बजूद की बात वर्णित है। इस पुस्तक की षटी तरंग में खस नरेश सिंहराज को लोहर आदि अनेक दुर्गों का शासक कहा गया है। राजतरंगिणी के रचनाकाल के समय डुग्गर के दुर्गों का स्वरूप क्या रहा होगा, इस विषय में पूरे विश्वास के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता किन्तु समझा जाता है कि ये दुर्ग गिरि दुर्ग रहे होंगे और इन का शिल्पगत विधान भी अलग रहा होगा। इस काल का अब केवल पौनी की पहाड़ियां में एक ही दुर्ग बचा है जिसे 'सानाल कोट' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह दुर्ग पौनी की पहाड़ी के ऊँचे शिखर पर स्थित है और उत्तर की ओर एक ऊँची दीवार से घिरा हुआ है। ऐसे दुर्गों का निर्माण केवल आपद् के समय ही किया जाता था।

दसवीं शताब्दी के पहले और उसके बाद भी डुग्गर में कोट शैली के दुर्गों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार के दुर्ग प्राय: पर्वत श्रृंगों पर निर्मित किये जाते थे। श्रृंग को ऊँची दीवार से परिवेष्टित किया जाता था और उस में प्रवेश

के लिए एक संकीर्णद्वार रखा जाता था। कोट के भीतर गण देवता, कुल देवता, अथवा इष्ट देवता का मंदिर होता था। यह दुर्ग उसी देवता को समर्पित किया जाता था। डुग्गर में ऐसे कई दुर्ग थे जो देवी देवता के नाम समर्पित थे यथा भीम-देवता को समर्पित भीमगढ़ दुर्ग, मंगला देवी को समर्पित-मंगला दुर्ग आदि।

डुग्गर में कोट शैली के दुर्गों का प्रचलन मध्यकाल तक बना रहा। इस शैली के दुर्ग उन स्थानों पर भी बने जहां एक प्रजाति-विशेष के लोग रहते थे। जब एक ही प्रजाति के लोग एक ही बड़े क्षेत्र में भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गए तो उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए 'गढ़ों' की स्थापना की। बाद में 'गढ़' डुग्गर प्रदेश में दुर्ग के पर्यायवाची समझे जाने लगे। ऐसा समझा गया कि जिस स्थान का नाम गढ़ रहा वहाँ कोई न कोई दुर्ग भी रहा होगा।

डुग्गर में कश्मीर की भाँति लकड़ी के दुर्गों का प्रचलन भी रहा है। प्राय: पहाड़ी-शिखरों और नदी तटों पर ही ऐसे दुर्गों का निर्माण हुआ । चनैनी के राजा दयालचन्द ने 1822 में ऐसा ही दुर्ग शिवगढ़ में बनवाया। इसी प्रकार डुग्गर में स्थित लकड़ी के दुर्ग का उल्लेख वेट्स ने अपनी पुस्तक ए गजेटयर आफ कश्मीर में किया है।

सोलहवीं सदी में डुग्गर प्रदेश में जब बाह्य-आक्रमण बढ़ने लगे तो इस क्षेत्र के सामंतों और शासकों ने अपने-अपने क्षेत्र की सुरक्षा के लिए पाषाण शिलाओं के अतिरिक्त छोटी पक्की ईंटों से दुर्ग की दीवारें निर्मित कीं जो तोप के गोलों की मार सह सकती थीं। इसी काल में धूलि दुर्गों का भी निर्माण पहले की भाँति होता रहा। धूलि दुर्ग कच्ची मिट्टी की दीवारों के बने होते थे और इनकी दीवारों को गिराना सहज था। ये दुर्ग लड़ाई के समय उपयोगी सिद्ध नहीं हुए, अत: इन का अस्तित्व ही मिटता गया।

डुग्गर में सामंत काल में महल नुमां दुर्गों का प्रचलन भी आरम्भ हुआ। इसी काल में नगर की सुरक्षा के लिए नगर दुर्गों की भी संरचना की गई। जसरोटा, जम्मू, बिलावर और भड्डु के राजाओं ने अपनी-अपनी राजधानियों

को नगर दुर्ग का रूप देने का प्रयास किया।

मुगलों ने भी सोलहवीं सदी में इस क्षेत्र में प्रवेश किया और वे इस से आगे बढ़ कर कशमीर तक चले गए। मुगल स्थापत्य ने भी डुग्गर के दुर्ग स्थापत्य को प्रभावित किया। मुगलों ने भी राजौरी और पुंछ क्षेत्र में कई महलों और दुर्गों का निर्माण करवाया।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में मुगलों की शक्ति क्षय हो जाने के बाद इस क्षेत्र में स्थानीय सामंतों ने सुख की सांस ली। उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र की सुरक्षार्थ जिन दुर्गों का निर्माण किया उस पर पहाड़ी मुगल और राजस्थानी स्थापत्य कला का प्रभाव पड़ा।

डुग्गर में उन्नीसवीं शताब्दी में सिक्ख डोगरा काल में भी अनेक दुर्गों का निर्माण हुआ और इस प्रकार यह वीर भूमि दुर्गों का गढ़ मानी जाने लगी।

इस प्रदेश में जिन दुर्गों का निर्माण हुआ उन में कुछेक का उल्लेख इस पुस्तक में किया जा रहा है।



बाहु का किला

बाहु डुग्गर का सबसे नामी और ख्याति प्राप्त दुर्ग है। यह दुर्ग जम्मू के सामने तवी नदी के पूर्वी तट पर स्थित जिस पहाड़ी पर निर्मित है, उस का सामरिक दृष्टि से अत्याधिक महत्व है। घने वृक्षों, ऊँची झाड़ियों और ऊबड़ खाबड़ पहाड़ी चट्टानों से घिरा यह किला डुग्गर का नग माना जाता है। यह किला पहाड़ी पर बना है, अतः इस की परिगणना पर्वतावृत दुर्गों के अन्तर्गत की जा सकती है।

पहाड़ी चट्टानों के ऊपर बना यह किला तवी नदी से अनुमानतः पचहत्तर मीटर ऊँचा है। यह एक आयताकार दुर्ग है। इस की पूर्व से पश्चिम की ओर निर्मित प्राचीर लगभग 95 मीटर है जब कि उत्तर से दक्षिण की ओर बनी दीवार की लम्बाई डेढ़ सौ मीटर है। यह दीवार प्रस्तर खंडों से निर्मित है। इस के कोणों और मध्य में जो बुर्ज हैं उन की दीवारों में मारकरन्ध्र कई तलों में बने हैं।

किले का प्रवेश द्वार दक्षिणोन्मुख है। यह स्थापत्य की दृष्टि से धनुष-आकार में है और इस की ऊँचाई लगभग साढ़े पाँच मीटर है। प्रवेशद्वार के दायीं ओर प्रस्तर शिला पर उकरी हनुमान की मूर्ति है, बायीं ओर प्रतिष्ठित मूर्ति उखड़ चुकी है, कहते हैं यह मूर्ति भैरव की थी।

प्रवेशद्वार ड्योढ़ी के रूप में है। ड्योढ़ी आच्छादित है। इस की लम्बाई लगभग पाँच मीटर और चौड़ाई सवा तीन मीटर है। ड्योढ़ी पार करते ही एक खुला सहन दृष्टिगत होता है। सहन के दक्षिण में ड्योढ़ी की दीवार के साथ सैनिकों के निवास कक्षों के अवशेष बिखरे हुए हैं। ड्योढ़ी के शीर्ष-भाग में

जाने के लिए किले की दीवार में दोनों ओर सोपान पथ है। सोपान पथ से ड्योढ़ी के दायीं और बायीं ओर खड़े बुर्जों में प्रवेश किया जा सकता है। किले में निर्मित इन बुर्जों की छतें नहीं हैं, अतः ये शीर्ष हीन लगते हैं।

इस किले का निर्माण दुर्ग शिल्प शास्त्र के आधार पर किया लगता है। किले को दुर्जेय बनाने के लिए इस के पूर्वी-दक्षिणी भाग में परिखा है जिस की चौड़ाई लगभग दस मीटर और गहराई छह मीटर थी। इस खाई को लांघने के लिए लकड़ी का एक संकीर्ण पुल था, जिस से कठिनता से एक ही व्यक्ति एक समय में गुजर सकता था। आपद् काल में पुल उठा लिया जाता था। किन्तु अब यह खाई भर दी गई है और इस का पुल भी उठा लिया गया है। फिर भी खाई के निशान अब भी बने हुए हैं। इस खाई के दूसरी ओर भी पत्थरों की एक दीवार थी जिस की ऊँचाई पौन दो मीटर थी, किन्तु आज इसके निशान मिट चुके हैं।

किले की दीवारों में जिन शिला खंडों की चिनाई की गई है उन को तराश कर लगाया है। किले की दीवार की ऊँचाई लगभग साढ़े दस मीटर है। दीवार में बने अट्टालक इस किले की शोभा में वृद्धि करते हैं।

ड्योढ़ी से तीस मीटर की दूरी पर एक आयाताकार जलाशय है जिस की अट्टारिकाएँ कलात्मक थी। बाद में वज्रलेपन करने से इन का स्वरूप बदला। जलाशय में जहाँ स्नानाघाट है, वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं।

किले में पंक्तिबद्ध कक्षों के अवशेष पूर्व और पश्चिमी भाग में अब भी बिखरे हुए हैं। इन की शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन करने से लगता है, ये सामान्य कोटि के थे और सैनिकों एवं प्रहरियों के लिए बनाए गए थे। इन्हीं कक्षों के निकट एक महाकक्ष है जो सम्भवतः इस किले का शास्त्रागार रहा होगा। ऊपर किले की आधिष्ठात्री देवी महाकाली का शोभाशाली नागर शैली में बना मंदिर है। यह मंदिर प्रस्तर खंडों का है। मंदिर में प्रवेशार्थ एक द्वार पूर्वोन्मुख तथा दूसरा पश्चिमोन्मुख है। मंदिर के गर्भ-गृह तक जाने के लिए

दोनों ओर सोपान हैं। गर्भ-गृह में तीन देव कोष्ठक हैं जिन में मध्यवर्ती कोष्ठक में काले पत्थर में बनी महाकाली की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मंदिर के पूर्वी द्वार में पहाड़ी शैली में बना एक ठाकुर द्वारा है और जगती के नीचे पशुबलि कुंड है।

मन्दिर के दायीं ओर निवास कक्षों की श्रृंखला के साथ ग्यारह सीढ़ियाँ हैं। इन सीढ़ियों के चढ़ने के बाद एक खुला सहन है। इस के उत्तरी और पश्चिमी भाग में भवनों की एक लम्बी श्रृंखला है। किले के उत्तर में ऊँची पठार पर बने इन भवनों को मनसबदार का महल भी कहते हैं। यह महल किले से अनुमानतः अढ़ाई मीटर ऊंचे एक समतल मैदान में है।

महल की वास्तुकला का अवलोकन करने से लगता है कि इस का निर्माण भिन्न-भिन्न चरणों में भिन्न-भिन्न राजाओं द्वारा किया गया है। महल का पुराना भाग पूर्वी हिस्से में और परवर्ती भाग पश्चिमी हिस्से में है। दोनों भागों के मध्य में सीढ़ियाँ के दायीं ओर जो महल है उस की केवल दीवारें ही शेष बची हैं, शेष भाग धराशायी है। महल का यह भाग शिलाखंडों से निर्मित है। इस का वास्तुशिल्प पहाड़ी शैली से प्रभावित है।

महल का दूसरा भाग मिट्टी की ईंटों से बना है। इसका वास्तुशिल्प मुगल शैली से प्रभावित है। इस के कक्षों के आगे खुला बरामदा है। जिस के द्वार मेहरावी हैं। महल में बने कक्षों की संख्या बारह है। कक्ष बज्रलेपन से आवेष्टित हैं। इन के भीतर कक्ष को गर्म रखने के लिए अंगीठियाँ बनी हैं। इन के छत्त लकड़ी के हैं। इन कक्षों के भीतर बने ताख और वितान देखने में सुन्दर हैं। महल के इस भाग के एक बड़े कक्ष की उत्तरी दीवार में एक मूर्ति ऐसी है जो देखने में विलक्षण है।

महल का यह भांग दुमंजिला है। दूसरी मंजिल तक जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। इस मंजिल में केवल दो ही विशाल कक्ष बने हैं जिन्हें बारादरी नाम से अभिहित किया जाता है।

इस महल की बाहरी दीवारों पर बेलबूटों का अनूठा चित्रांकन हुआ है।

महल के पश्चिमी भाग में भी निवास कक्षों की एक श्रृंखला है। ये कक्ष पूर्वोन्मुख हैं। महल चारों ओर से ऊँची दीवार से घिरा है दीवार में मारकरन्ध्र स्थान-स्थान पर बने हैं। महल के सहन में जो जलाशय है उसकी गहराई अढ़ाई मीटर है। बाहु के दूसरे भाग के महल का निर्माण कहते हैं कि अन्तिम चरण में पूर्ण हुआ। बाहु के अन्तिम राजा गम्भीर देव के शासनकाल में खालसा सरकार ने बाहु पर अधिकार करने के उपरान्त इन महलों को अपने मनसबदार का निवास कक्ष बनाया।

यहाँ तक बाहु दुर्ग के निर्माता का सम्बन्ध है, इस विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कुछ विद्वान् इस किले को बाहु के राजा जगदेव (1530-1571) द्वारा निर्मित मानते हैं जब कि कई जगदेव के पुत्र परसराम (1580-1610) का नाम लेते हैं। डुग्गर के इतिहास में यह वृत मिलता है कि अकबर के सेनापति शेख फरीद ने सन् 1596 ई० में इस किले में अपना डेरा जमाया था। उस समय बाहु का राजा परसराम था। उसने मुगल-सम्राट् अकबर के विरुद्ध विद्रोह करने वाले आठ पहाड़ी राजाओं का दमन करने के लिए मुगल सेना की सहायता की थी। मुगल इतिहासकारों ने भी परसराम को मुगल-सम्राट अकबर का चहेता माना है। कहते हैं कि उसने बाहु दुर्ग के बाहर मस्जिद भी बनवाई।

परसराम के देहावसान के बाद उसका उत्तराधिकारी कृष्णदेव सन् 1610 में इस किले का संरक्षक बना और उसके बाद 1635 ई० में अजमत देव ने बाहु का राजा बनने के बाद इस किले में बैठ कर शासन किया। किन्तु 1660 ई० में अजमतदेव का बेटा कृपाल देव बाहु का राजा बना तो उसने अपनी नीति और व्यवहार से डुग्गर के राजाओं को प्रभावित करके उन्हें अपने अधीन किया। कहते हैं कि उसने बाहु दुर्ग का विकास किया और निवास के लिए महल भी बनवाया। कृपालदेव की मौत के बाद सन् 1675 ई० में उसका पुत्र अनन्त देव बाहु का राजा बना तो उसने जम्मू राज्य पर भी अधिकार कर लिया। जम्मू का

राजा रणजीत देव (1730-1783) जब मुगलों की कैद से मुक्त होकर पुनः जम्मू की गद्दी पर बैठा तो उसने बाहु के राजा अनन्तदेव को लड़ाई में हरा कर बाहु के किले पर अधिकार किया। जब राजा अनन्त देव ने राजा रणजीतदेव की अधीनता में रहना स्वीकार किया तो उसने बाहु का किला उसे लौटा दिया। सन् 1745 में अनन्तदेव के बाद रत्नदेव बाहु का राजा बना। राजा रत्नदेव के शासनकाल में पंजाब की सिक्ख मिसलों के सरदारों ने बाहु पर तीखे हमले किए। परिणामस्वरूप इस किले को अपूर्वक्षति पुहँची और इस की दशा शोचनीय बनी। रत्नदेव के बाद उसका चाचा बसन्त देव बाहु का राजा बना तो उसने बाहु दुर्ग को बचाने के लिए सिक्ख मिसलों के सरदारों से कई लड़ाईयां लड़ीं। परिणाम स्वरूप उसे इन सरदारों को अपने राज्य के कई गांव देकर तुष्ट करना पड़ा। इसके शासनकाल में बाहुराज्य सिमट कर कुछ गावों तक ही सीमित रह गया। राजा बसन्तदेव के बाद उसका बेटा शहजाद देव बाहु दुर्ग का संरक्षक बना। जब वह इस संसार में न रहा तो उसके पुत्र गम्भीर देव को सिक्ख सेना ने लड़ाई में हताहत कर के बाहु के इस ऐतिहासिक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। राज्य का प्रशासन चलाने के लिए खालसा सरकार ने मनसबदार नियुक्त किया। उसे रहने के लिए बाहु के किले में बना महल प्रदान किया।

सन 1922 ई० में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने मियां गुलाब सिंह को जम्मू का राजा बनाया तो गुलाबसिंह ने बाहु के इस ऐतिहासिक किले पर अधिकार किया। गुलाबसिंह ने सामरिक महत्व के इस किले का पुनःउद्धार किया और इस में स्थित जीर्ण-शीर्ण महलों को आवासीय बनाया।

महाराजा गुलाबसिंह ने महाकाली मंदिर को भी नया रूप दिया। इसे स्वर्ण कलशों से मंडित किया। गुलाबसिंह ने बाहु किले में निर्मित महलों को कारावास में परिवर्तित करके इस में राजनैतिक कैदियों को भी रखा। आपदकाल में किले से बाहर निकलने के लिए एक तंग सुरंग भी थी। सन् 1880 ई० तक यह दुर्ग पूर्ण रूप से सुरक्षित रहा किन्तु बाद में इस की उपेक्षा की गई जिससे यह खंडहर में बदल गया।

टिप्पणियाँ

1. जनश्रुतियों के अनुसार बाहु दुर्ग की नींव 1350 ई० पू० बाहुलोचन ने रखी।
2. राजदर्शनी के अनुसार बाहु राज्य का संस्थापक सर्व प्रकाश था। उसने गुम्मट के निकट एक दैत्य का संहार किया और उस की बाजू काटी। वह उस का बाजू घसीट कर तवी नदी के पार ले आया। उसने उस बाजू को प्रदर्शन के लिए एक चट्टान पर रखा। जिस स्थान पर वह बाजू रखा गया था, वह स्थल 'बाहुस्थली' नाम से प्रसिद्ध हुआ।
3. राजतरंगिणी में बाहुस्थल का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ की आठवीं तरंग के अनुसार बाहुस्थल के राजा सुर ने अपनी पुत्री का विवाह कश्मीर के राजा के साथ किया (श्लोक संख्या 1844)
4. डॉ. वी. के शास्त्री लिखित 'बाहु का किला' पुस्तक के अनुसार जम्मू के राजा ध्रुव देव (1703-35) और रणजीत देव (1735-1782) ने भी बाहु के किले की मुरम्मत करवाई।
5. बाहु के किले के बाहर जो शाही मस्जिद है उसके निर्माण काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। तारीख डोगरा देश के अनुसार इस का निर्माण राजा परसराम के पुत्र राजा कृष्ण देव ने सोलहवीं सदी के अंतिम चरण में मुगल सम्राट् जहाँगीर के लिए करवाया। किन्तु तारीख-ए-जम्मू के अनुसार यह मस्जिद राजा जगदेव (1530-1571) के शासन काल में बनी। एक मत यह भी है कि इस का निर्माण मुगल सम्राट अकबर के एक सेना नायक हसन ने 1596 ई० में करवाया। लोग परम्परा अनुसार राजा गजै सिंह (1688-1703) के शासनकाल में जम्मू के फौजदार क्यामूदीन और इसके बाद नए बने फौजदार साहबखान में से एक ने जम्मू की मस्तगढ़ मस्जिद और दूसरे ने बाहू की मस्जिद बनवाई। एक अन्य सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है कि औरंगजेब के अधिकारी खलील खान के जम्मू आने के उपलक्ष्य में इस मस्जिद का निर्माण करवाया गया।
6. गुलाबसिंह के शासनकाल में अंग्रेज पर्यटक एल. बीत्र एडवर्ड जम्मू आया। उसने बाहु दुर्ग देखा और लिखा-'जम्मू का यह दुर्ग सुदृढ़ है। सेना सहित इस में प्रवेश करना कठिन है। घने और गहन जंगलों से घिरे इस दुर्ग को देखकर यदि कोई सेना नायक हतोत्साहित हो जाए तो इस में कोई विस्मय नहीं।

सन्दर्भः-

1. कल्चरल हिस्टरी आफ बाहु फोर्ट-ले० विजय शर्मा
2. गजेटर आफ कश्मीर एंड लद्दाख-1975 पृष्ठ-402
3. बाहु का किला-डॉ वी. के शास्त्री
4. फोर्ट एडं पैलेसेज आफ द वेस्टरन हिमालय-पृष्ठ.संख्या-63
5. शीराजा डोगरी-बरा 16 अंक: 5 पृष्ठ 33



गुम्मट-द्वार-जम्मू

यह द्वार जम्मू नगर के दक्षिण में गुम्मट पहाड़ी के ऊपर स्थित है। उसे जम्मू का प्रवेशद्वार भी कहा जाता है। गुम्मट पहाड़ी की दो चट्टानों के संकरे मार्ग में पत्थर की ईंटों से यह द्वार बना हुआ है। इस द्वार की ऊँचाई अनुमानत: आठ मीटर और चौड़ाई दो मीटर के करीब है। इस में दोनों ओर जो गोल मेहराब बनी है वह स्थापत्य की दृष्टि से मुगल शैली में है। द्वार के शीर्ष भाग में छज्जे बने हैं जिन से यह द्वार शोभायमान लगता है।

इस द्वार के शीर्ष भाग में पत्थरों को काट कर सुराख बने हैं। लगता है कि आपद् काल में द्वार बन्द किया जाता होगा।

द्वार के दायें-बायें एक-एक बुर्ज है जिस की दीवारों में मारक रन्ध्र कई तलों में हैं। इन बुर्जों के साथ एक लम्बी दीवार के निशान मिलते हैं। कहते हैं कि जम्मू के शासकों ने जम्मू की सुरक्षा के लिए इस के पूर्व और दक्षिण में जो दीवार बनाई थी उस में दो और प्रवेशद्वार थे जिन में एक का नाम महेश्वरी दरवाजा था।

गुम्मट द्वार और इस के साथ बने बुर्ज और दीवार का अवलोकन करने से लगता है कि जम्मू के शासकों ने जम्मू को एक नगर दुर्ग का रूप देने का प्रयास किया है। जम्मू पर अतीत में जितने आक्रमण हुए, शत्रु पक्ष की सेनाएँ इस द्वार से जम्मू में प्रवेश पाने में प्राय: असफल ही रहीं। शत्रु के साथ जम्मू के शासकों की लड़ाईयाँ प्राय: इस द्वार के नीचे ही लड़ी गईं।

इस द्वार ने जम्मू को आपद के समय सुरक्षा प्रदान की, अत: युगों-युगों से इस का महत्व बना रहा और लोक- समाज में इस की गौरव-गाथा दोहराई जाती रही।

गुम्मट द्वार का निर्माण जनश्रुतियों के अनुसार जम्मू के राजा माल देव (1347-1398) ने करवाया। इसी राजा के शासनकाल में सन् 1398-99 में अमीर तैमूर ने जम्मू पर आक्रमण किया। मुगल काल में सन् 1596 में मुगल सेना ने जब जम्मू पर हमला किया तो जम्मू के लोगों ने इसी द्वार के नीचे मुगल सेना का सामना किया। सिक्ख काल में भी जम्मू पर जितने भी आक्रमण हुए, इस द्वार ने जम्मू के लोगों को सुरक्षा प्रदान की।

राज दर्शनी के अनुसार जम्मू नरेश रणजीत देव (1724-81) के शासनकाल में गुम्मट द्वार के निकट जगात खाना था जिस में ख़ुफिया नवीस बैठता था। उन दिनों जम्मू का बाज़ार गुम्मट द्वार से ही आरम्भ होता था। सन् 1845 में गुम्मट बाज़ार सहित जम्मू में दो सौ दुकानें और सोलह सौ घर थे।

सिक्ख काल (1812-22) में जम्मू का थाना गुम्मट द्वार के निकट बनां, जो आज भी है। इस द्वार का समय-समय पर उद्धार होता रहा है। महाराजा रणवीर सिंह (1856-85) ने इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

गुम्मट दरवाजा जम्मू के इतिहास और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। यह डुग्गर का एक ऐसा स्मारक है जिस पर डुग्गर के लोगों को गौरव है।



---

1. ऐतिहासिक ग्रंथों में जम्मू दुर्ग का उल्लेख मिलता है कहा जाता है कि कन्नौज के राजा रामदेव राठौर ने पहली शताब्दी के अन्तिम चरण में जम्मू दुर्ग पर आक्रमण किया था, किन्तु वह पुराना दुर्ग धारा नगरी के आस-पास कहीं स्थित रहा होगा।
2. डॉ० अशोक जेरथ के अनुसार जम्मू में दो पुराने किले और भी थे जिन में एक का नाम मस्तगढ़ और दूसरे का नाम रामनगर था। देखिए:-
   फोर्ट एडं पैलेसेज आफ वेसटरन हिमालय पृष्ठ संख्या 60-61

मौहरगढ़ का किला

डुग्गर के गिरि दुर्गों में संरचना की दृष्टि से विशिष्ट कोटि का यह दुर्ग जम्मू जनपद के अन्तर्गत तहसील साम्बा में प्रसिद्ध मानसर झील के दक्षिण में परिव्याप्त पर्वत शृंखलाओं के मध्य में एक ऐसे स्थान पर अवस्थित है जो पर्वत शिखरों की ओट में होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं है।

सुरक्षा की दृष्टि से निर्मित यह पर्वतावृत कोटि का दुर्ग साम्बा नगर के उत्तर-पश्चिम में कठोर चट्टानों से बनी एक पहाड़ी के शिखर पर स्थित है। यह दुर्ग साम्बा से अनुमानतः सतरह किलोमीटर की दूरी पर साम्बा-मानसर सड़क में स्थित नड्ड गाँव के पश्चिम में अवस्थित है। इस गिरिदुर्ग तक पहुँचने के लिए तीन मार्ग हैं। एक मार्ग नड्ड गाँव से मानसर नाला के साथ-साथ इस किले की पहाड़ी की ओर जाता है। नड्ड से मौहर गढ़ सात किलो मीटर दूर है। इस मार्ग में मानसर नाला के उत्तरी और दक्षिणी तट पर बसे कपाई, सराई, चखेमा और सलेतर गाँव वन्य वैभव से समृद्ध लगते हैं। यह मार्ग मानसर नाला के बीचो-बीच जाता है। नाला में रेत और जल के कारण फिसलन का भय बना रहता है। सलेतर गाँव से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर पश्चिम में एक चट्टानी पहाड़ी पर चढ़ने के लिए सीधी खड़ी पगडंडी है जो अनुमानतः एक किलो मीटर लम्बी है। दुर्ग तक पहुँचने का दूसरा मार्ग मानसर झील के दक्षिण में स्थित पहाड़ी से आरम्भ होता है। यह मार्ग अति दुर्गम है। चार किलोमीटर थका देने वाली पहाड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद मानसर पहाड़ी का शिखर आता है। इस शिखर से ढलाई आरम्भ होती है। तीन किलोमीटर ढलाई ढलने के बाद सरूईसर नाला आता है। इस नाला को पार करके एक किलोमीटर की चढ़ाई चढ़ने के बाद मौहरगढ़ का दुर्ग दृष्टिगत होता है।

इस दुर्ग तक पहुंचने का तीसरा मार्ग विजयपुर से जाता है। विजय पुर से कुम्भ, रजूल, पाडल और चिलडंगा के रम्य पर्वतीय गाँवों की प्राकृतिक छठा का अवलोकन करते हुए कठार, गुज्जर नाल और गुज्जर झांडा गाँवों के हरे-भरे खेतों से गुजर कर भी मौहरगढ़ पहुँचा जा सकता है। इस मार्ग में चिल डंगा तक सड़क है, अत: यह मार्ग अति सुगम और सरल है। इस मार्ग की लम्बाई अनुमानत: नौ किलो मीटर है। उतर वाहिनी से भी एक दुर्गम-मार्ग मौहरगढ़ को जाता है जो पर्वतीय शिलाखंडों और घने वन से आच्छादित है।

पहाड़ी शिखर पर 3203 एकड़ भूमि में परिव्याप्त समतल भूमि पर निर्मित यह प्रस्तर दुर्ग चहार दीवारी से परिसीमित है। इस का सिंहद्वार दक्षिणोन्मुख है जो स्थानीय शिलाखंडों को उकेर कर मसाले का प्रयोग कर के बनाया गया है। इस भव्य सिंह द्वार की ऊँचाई अनुमानत: सोलह मीटर है। इस में प्रवेश के लिए जो बड़ी मेहराब है वह लगभग नौ मीटर ऊँची और छ: मीटर चौड़ी है। दूसरी ओर जो छोटी मेहराब है उस की ऊँचाई अनुमानत: छ: मीटर और चौड़ाई पाँच मीटर है। इन मेहराबों के ऊपर जो बाहर की ओर झरोखे से बने हैं वे अनुमानत: पौने दो मीटर लम्बे और सवा मीटर चौड़े हैं। इन की पट्टिकाओं और लघु स्तम्भों पर सुन्दर अंलकरण बने हैं जो देखने में अति आकर्षक हैं। सिंह द्वार के ऊपरी भाग में दूसरी मंजिल के नीचे चौदह सिंह मुख प्रस्तर-शिलाओं को उकेर कर बनाये गए हैं। इसे अधिक सुन्दर बनाने के लिए जो प्रस्तर-पट्टिकाएँ मढ़ी गई हैं उन पर भी तक्षणकार्य हुआ है।

सिंहद्वार ड्योढ़ी आकार में है इस की लम्बाई 6.90 मीटर और चौड़ाई 3.90 मीटर है। इस के दोनों ओर एक ही आकार के दो ताक बने हैं। इन में प्रत्येक की लम्बाई 2.30 मीटर और चौड़ाई 1.10 मीटर है। इन ताकों के ऊपर बलुआ पत्थरों की जो पट्टिकाएँ लगी हैं उन पर अरबी में मोटे-मोटे अक्षरों में अल्लाह-अल्लाह उत्कीर्ण है। इन ताखों के भीतर त्रिकोणात्मक दीप-शिलाएँ हैं।

सिंह द्वार के नीचे निचले-भाग में जिन शिलाखंडों का प्रयोग किया गया है उन में प्रत्येक की लम्बाई 1.62 मीटर है और इन के ऊपर जो तक्षित शिलाएँ

चिनी गई हैं वे 75 × 22 से. मी तथा 63 × 25 से.मी. की हैं।

सिंहद्वार के दोनों ओर आकर्षक त्रिकोणात्मक आकार बने हैं जिन के दोनों कोणों पर उकरेवां पत्थर मढ़े हुए हैं। इन पत्थरों के ऊपर मध्य भाग में एक त्रिकोणाकार वितान है जिसका छत्त आच्छादित है। इस के दायें-बायें बाहर को निकले दो वितान हैं जो सम्भवत: दुर्ग रक्षकों के लिए बनाए गए हैं। इन वितानों के नीचे जो पट्टिकाएँ मढ़ी गई हैं वे कलात्मक हैं।

सिंहद्वार की ड्योढ़ी के ऊपरी भाग में ललाट-बिन्दु के दायें-बायें जो गोलाकार रेखा युक्त उभरवां शिलाखंड लगे हैं वे तक्षण कला की दृष्टि से कुशल शिल्पियों की कृति लगते हैं। सिंहद्वार के बाहरी भाग में जो शिला-पट्टिकाएँ लगाई गई हैं उन में भी पल्लवाकृतियाँ बनी हैं।

सिंहद्वार के साथ ही थोड़े से अन्तराल में दायें-बायें दो बुर्ज हैं। इन में बायें बुर्ज के साथ ही सोपान पथ है जो सिंहद्वार की ऊपरी मंजिल तक जाता है। ऊपरी मंजिल तक जाने के लिए एक और सोपान पथ बायें बुर्ज में भी बना है। सिंहद्वार के बुर्जो के साथ-साथ पक्की प्राचीर है जिस की ऊँचाई अनुमानत: साढ़े तीन मीटर है।

मौहरगढ़ दुर्ग में प्रवेशार्थ पूर्व, पश्चिम और उत्तर में भी प्रवेशद्वार बनाए गए हैं जो एक मोटी और सुदृढ़ प्राचीर से सिंहद्वार के साथ जुड़े हैं। पूर्व में स्थित प्रवेशद्वार तक पहुँचने के लिए कृत्रिम परिखा है जो भूमि को खोद कर बनाई गई है। यह अनुमानत: बीस मीटर लम्बी हैं। इस के दायें बायें इतनी गहरी ढलाई है कि व्यक्ति तो क्या साँप भी रेंग कर ऊपर नहीं चढ़ सकता। लगता है कि कभी इस परिखा (खाई) के ऊपर उठवां पुल रहा होगा। सिंहद्वार के उत्तर में जो प्रवेशद्वार बना था, वह भव्य और विशाल था। इस के दायें-बायें छोटी-छोटी दो कोठरियाँ थीं जिन के भीतर पहरेदार रहते थे। मानसर मार्ग से आने वाले आगन्तुकों को इस प्रवेशद्वार को पार करना पड़ता था। दुर्ग के पश्चिम में जो छोटा प्रवेशद्वार था, वह अब पूर्ण रूप से नष्ट है।

इस दुर्ग के सिंहद्वार के ऊपर जो मंजिल है वह एक बड़े कक्ष तथा दो छोटी कोठरियों पर आधारित थी। बड़े कक्ष का प्रयोग दुर्गपति द्वारा किया जाता था और कोठरियों में उस के सहायक रहते थे।

इस दुर्ग के भीतर एक विशाल सरोवर है जिस की लम्बाई अनुमानतः 115 मीटर और चौड़ाई 105 मीटर है। इस सरोवर की अट्टारिकाएँ और स्नानघाट प्रस्तर खण्डों से निर्मित है। सरोवर के उत्तर और पूर्व में एक खुला मैदान है जिस का उपयोग सैन्य-अभ्यास के लिए किया जाता था।

मौहर गढ़ दुर्ग क्षेत्र में इस समय 45 के लगभग घर हैं। जिन में 25 घर पुरी बाह्मणों, 18 घर गुज्जरों, 9 घर हरिजनों तथा 3 घर राजपूतों के हैं। यहाँ के राजपूत मौहर गढ़िये कहलाते हैं।

डुग्गर प्रदेश में स्थित यह शैल दुर्ग एक ऐसे स्थान पर निर्मित है, यहाँ लोगों का आवागमन नहीं के बराबर रहा है। इस दुर्ग के चारों ओर जो ढलान है वह डेढ़ सौ मीटर से लेकर अढ़ाई सौ मीटर तक है। यह घनी झाड़ियों और ऊपर को उठी हुई कठोर चट्टानों के कारण गमन के योग्य नहीं है।

इस दुर्ग क्षेत्र में सिंहद्वार के साथ प्राचीर के साथ जुड़े चार प्रवेशद्वारों के अतिरिक्त अन्य कोई आवासीय-भवन अथवा कोठरियों के अवशेष उपलब्ध नहीं हैं। लगता है जिस शासक या सामंत ने इस दुर्ग का निर्माण करवाया उस का लक्ष्य शत्रु सेना को यहाँ से आगे बढ़ने से रोंकना मात्र था।

दुर्ग के सिंहद्वार तथा बुर्जों की दीवारों में बने तिरछे छिद्रों से लगता है कि इस किले में शस्त्रागार भी रहा होगा।

शताब्दियों से उपेक्षित रहने के कारण यह दुर्ग अब जर्जरित अवस्था में है। इस का केवल सिंहद्वार ही उत्तम कोटि के मसाला के प्रयोग के कारण बचा है, शेष इसके दोनों बुर्ज और ऊपर की मंजिल का कक्ष तथा कोठरियाँ ध्वंसित हैं। इस के पूर्व, उत्तर और पश्चिम में बने प्रवेशद्वार और उन के साथ बनी कोठरियाँ ढह गई हैं। प्राचीर का भी बहुत बड़ा भाग-विक्षत है। समुचित संरक्षण के अभाव

में डुग्गर का यह ऐतिहासिक स्मारक नष्ट प्राय: स्थिति में है।

ठेर गढ़

मौहरगढ़ किला समूह के दूसरे भाग का नाम ठेरगढ़ है। यह स्थान मौहरगढ़ के उत्तर पूर्व में एक चट्टानी पहाड़ी के ऊपर स्थित है जिस का क्षेत्रफल केवल 426 एकड़ है। सुरक्षात्मक दृष्टि से निर्मित यह भी एक अगम्य और दुर्जेय किला है। यह सुदृढ़ किला पूर्व और दक्षिण में गहरे नालों से घिरा हुआ है। इस के उत्तरी और पश्चिमी भाग भी नालों, पहाड़ों और वन्य झाड़ियों से परिपूर्ण हैं। किले तक पहुँचने के लिए एक मार्ग मौहरगढ़ नाला से जाता है। मौहरगढ़ के उत्तर में बनी एक पगडंडी नाले की ओर जाती है। नाला से चट्टानों को काट-काट कर पाँव रखने के लिए बने दुर्गम पथ से अनुमानत: दो सौ मीटर की चढ़ाई चढ़ने के बाद ठेरगढ़ किले का क्षेत्र आरम्भ होता है। इस मार्ग में सब से पहले किले का सरोवर दृष्टिगत होता है जो अनुमानत: दो एकड़ जमीन में परिव्याप्त है। इस विशाल सरोवर की अट्टारिकाएँ पूर्व और पश्चिम में प्रस्तर खंडों से निर्मित हैं। इस के पूर्व में जो स्नान घाट बना है वह विशाल है। सरोवर के उत्तर में आम का बाग है और इस के निकट ही पीपल का प्राचीन वृक्ष है।

सरोवर के निकट एक बस्ती है जिस में पच्चीस के करीब घर हैं। इस बस्ती में अधिकांश घर चम्बियाल राजपूतों के हैं, कुछ हरिजनों के भी हैं। बस्ती से डेढ़ सौ मीटर की दूरी पर इस किले का सिंहद्वार है जो स्थापत्य की दृष्टि से मौहरगढ़ दुर्ग के सिंहद्वार की अनुकृति लगता है। यह द्वार ड्योढ़ी-आकार में है जिस की लम्बाई 6 मीटर और चौड़ाई 4 मीटर के लगभग है। अनुमानत: दस मीटर ऊँचा यह सिंहद्वार प्रस्तर-खंडों से निर्मित है और इस के बाहरी-भाग में उच्च कोटि का तक्षण कार्य हुआ है। सिंहद्वार का बाह्य रूप आकर्षक है। इस में झरोखा आकार के तीन वातान बने हैं जो बाहर की ओर बड़े हुए हैं। इन्हें सहारा देने के लिए प्रत्येक वातान में चार-चार लघु स्तम्भिकाएँ निर्मित हैं जो प्रस्तर-शिलाओं को उकेर कर बनाई गई हैं। ये तीनों वितान इस ढंग

से बने हैं कि इन से शत्रु सेना की गतिविधि वितान की ओट में खड़े होकर देखी जा सकती है। इन झरोखों में एक झरोखा सिंहद्वार की मेहराब के ठीक ऊपर बना है· शेष दोनों दायें-बायें हैं।

सिंहद्वार पर जो बड़ी मेहराब बनी है उस के दोनों ओर लगे शिलाखंड उत्तम कोटि के मसाले से चिने गए हैं शताब्दियाँ बीत जाने पर भी उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँची है। सिंहद्वार के मध्य में स्थित वितान की दायीं ओर अरबी-भाषा में सुन्दर लिखावट में लिखित एक शिलालेख एक प्रस्तर पट्टिका में प्रदर्शित है। यह शिलालेख एक ऐसे स्थान पर जड़ा गया है जिस का चित्र लेना कठिन लगता है। इस शिलालेख में दुर्ग निर्माता का नाम ओर दुर्ग निर्माण का उद्देश्य उत्कीर्ण होगा। इस शिलालेख के साथ जो सिंहद्वार की प्राचीर है वह भग्नावस्था में है, अत: कभी भी इस शिलालेख के क्षतिग्रस्त हो जाने का भय है।

इस सिंहद्वार के ऊपर जो दूसरी मंजिल है उस में प्रवेश के लिए बायीं ओर से सोपान पथ बना है। दूसरी मंजिल ठीक अवस्था में है। इस में एक बड़ा सा कक्ष है जिस की लम्बाई अनुमानत: 10.5 मीटर और चौड़ाई 2 मीटर है। इस कक्ष के पूर्व में तीन, उत्तर में एक, दक्षिण में एक और पश्चिम में तीन झरोखे हैं। इस के ऊपरी भाग में पल्लवाकार सात शृंग बने हैं जिन में प्रत्येक के ऊपर 'अल्लाह' लिखा है।

सिंहद्वार की मेहराब की चोटी के ऊपर कमल फूलों के चार सुन्दर डिजाइन हैं। प्रत्येक डिजायन वर्ग में है। दो ऐसे डिजायन भी इस किले के सिंहद्वार के पिछले भाग में हैं जिन में 'तारा' की आकृतियाँ हैं।

सिंहद्वार के दायें-बायें प्रहरियों के लिए जो कोठरियाँ है, वे अब भग्नावस्था में हैं। इन कोठरियों की प्राचीरों में बने तिरछे रन्ध्र यह सिद्ध करते हैं कि इन में शस्त्र चलाए जा सकते थे। ऐसे रन्ध्र दुर्ग की मुख्य मेहराब के ऊपर भी दृष्टिगत है।

ठेरगढ़ दुर्ग में सिंहद्वार के दायें-बायें कोठरियों के निकट बुर्जों के

अवशेष भी मिलते हैं। इन बुर्जों की दीवारों में जो छेद बने हैं वह शत्रु पर गोली बरसाने के लिए थे।

ठेरगढ़ का यह किला भी प्राकार से परिसीमित था। इस किंले की लम्बी प्राकार के जो अवशेष मिले हैं वह दक्षिण से पूर्व की ओर हैं। इस दीवार के एक सिरे पर सिंहद्वार है तो दूसरे सिरे पर एक छोटा प्रवेशद्वार है जो अब पूर्ण रूपेण ध्वसित है। किले का उत्तर पश्चिमी भाग पहाड़ी ढलान के कारण सुरक्षित है।

ठेरगढ़ के इस किले की संरचना में शत्रुसेना पर दृष्टि रखने के लिए तीन बुर्ज और बनाए गए हैं जिन में एक बुर्ज इस के दक्षिणी सिरे पर बना है और दो बुर्ज पश्चिमी-उत्तरी सिरे पर निर्मित हैं। ये तीनों बुर्ज टूटी-फूटी अवस्था में हैं।

ठेरगढ़ का सिंहद्वार भी ऐसे स्थान पर बनाया गया है जिस के नीचे ढलवां चट्टान है ओर उसके ऊपर चढ़ना अति कठिन है। सिंहद्वार के नीचे जो पेचदार नाला प्रवाहमान है, वह भी इस दुर्ग को सुरक्षा प्रदान करता है।

मलकोट

मौहरगढ़ किला समूह का यह तीसरा भाग है। यह स्थान ठेरगढ़ के उत्तर-पश्चिम में एक ऐसे स्थान पर स्थित है जो चारों ओर से अति सुरक्षित है। इस के उत्तर में मानसर पर्वत-शृंखला, दक्षिण में गहरी घाटी बनाता मौहर नाला और पश्चिम में पहाड़ी ढ़लान है। इस के पूर्व में ढेरगढ़ है और यहीं से एक संकीर्ण पथ ऊबड़-खाबड़ चट्टानों से इस ओर जाता है। मलकोट, ठेरगढ़ से अनुमानतः अढ़ाई कि. मी. दूरी पर स्थित है।

यहाँ एक ऊँची सुदृढ़ चट्टान के ऊपर तिमंजिला-भवन है, जिसे 'सरदार का महल' भी कहते हैं। यह भवन प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित है, अतः बहुत मजबूत है। भवन में प्रवेश के लिए जो ड्योढ़ी है, उस की लम्बाई अनुमानतः दो मीटर और चौड़ाई डेढ़ मीटर है। इस की दीवारों में गोली दागने या तीर

चलाने के लिए तिरछे रन्ध्र बने हैं। दूसरा बुर्ज ड्योढ़ी की दूसरी ओर है।

मलकोट का महल अब भग्नावस्था में हैं। इस की तीसरी मंजिल गिर गई है और पहली तथा दूसरी मंजिल खड़ी है। इस महल में जो कक्ष और कोठरियाँ बनी हैं उन में एक 'गोल हाल' है। इस महल के कक्षों में इतना अन्धकार रहता है कि इन्हें ठीक ढंग से देखा नहीं जा सकता। इस की दीवारें भी इतनी जर्जरित हैं कि महल के भीतर प्रवेश करने में भय लगता है।

दक्षिणोन्मुख इस महल की मुख्य ड्योढ़ी का कुछ भाग अब भी बचा है। स्थापत्य की दृष्टि से यह महल मुगल कला से प्रभावित लगता है। महल के निकट जो छोटा सा चट्टानों को खोद कर जलाशय बनाया गया है, उसमें अब केवल बारिश का जल ही एकत्रित होता है।

मलकोट के महल की सुरक्षा के लिए जो प्राचीर बनाई गई थी वह अब गिर गई है और उसके कहीं-कहीं निशान ही उपलब्ध हैं। कहते हैं कि मलकोट में प्रवेश के लिए चार ड्योढ़ियाँ थीं। 'मलकोट का महल' ऐसे सुनसान स्थान में स्थित है जहाँ पशुचारक भी नहीं पहुँच पाते हैं। अब यह भव्य महल धीरे-धीरे धराशायी होता जा रहा है।

बवनेरगढ़

मौहर गढ़ किला बन्दी का चौथा भाग बवनेर गढ़ है यह स्थान ढेरगढ़ के पूर्व में मानसर नाला की तटवर्ती पहाड़ी पर स्थित है। ढेरगढ़ के सिंहद्वार की दूसरी मंजिल से इस दुर्ग का अवलोकन किया जा सकता है।

बवनेरगढ़ भी एक अति सुरक्षित दुर्गम स्थान है। इस के पूर्व में गंगेल पश्चिम में ढेरगढ़, उत्तर में मानसर की पहाड़ियाँ तथा पश्चिम में जाड़ा गांव है।

बवनेर गढ़ की किलाबन्दी में पाँच ही अवशेष उपलब्ध हैं जिन में उल्लेखनीय सिंहद्वार है जिस की ऊँचाई 22 फुट चौड़ाई 16 फुट और ऊँचाई 33 फुट है। इस सिंहद्वार की मेहराव ठेरगढ़ की ही अनुकृति लगती है। इस

के शीर्ष भाग में भी अरबी भाषा में लिखित एक शिलालेख उपलब्ध है जो दुर्भाग्य से अभी तक पढ़ा नहीं गया। मेहराब के ऊपर कमल के फूलों की आकृतियाँ तथा बेल-बूटे उत्कीर्ण हैं जिस से यह मेहराब अलंकृत लगती है।

बवनेरगढ़ में चार ड्योढियों के और अवशेष भी मिलते हैं। लगता है ये चारों ड्योढ़ियाँ प्राचीर के साथ जुड़ी थीं किन्तु प्राचीर के अवशेष यहाँ कहीं-कहीं ही उपलब्ध हैं। बवनेरगढ़ की किला बन्दी में जो ड्योढ़ियाँ बनी हैं वे एक मंजिला हैं इन के साथ प्रहरियों के लिए कोठरियों के अवशेष मिलते हैं।

बवनेरगढ़ का यह किला 2131 एकड़ जमीन में परिव्याप्त है। यहां चट्टान को खोद कर बनाया गया एक विशाल जलाशय है जिसकी अट्टारिकाएँ सुन्दर हैं।

स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ कभी एक गुम्बदाकार महल भी था, किन्तु उस के अवशेष अब नहीं मिलते।

बबनेरबढ़ में इस समय सोलह घर हैं जिन में पन्द्रह चबियाल शाखा के राजपूतों के हैं और एक हरिजनों का है। गांव में लोकदेवता बावा ब्रह्मा का मंदिर अर्वाचीन है।

जांडा

यह स्थान नड्ड से अढ़ाई किलोमीटर दूरी पर पश्चिम की ओर स्थित है। यहाँ एक पक्का चबूतरा है जिसके विषय में कहा जाता है कि इस का निर्माण तोप चलाने के लिए किया गया था। यह चबूतरा स्थापत्य की दृष्टि से साधारण कोटि का है। स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ एक मस्जिद का निर्माण भी किया गया था, किन्तु उसके अवशेष यहाँ उपलब्ध नहीं। सम्भवत: मस्जिद यहाँ से हटा ली गई। वैसे इस स्थान को स्थानीय लोग आज भी 'मसीत' कहते हैं।

जांडा गाँव में चबूतरा के अतिरिक्त किलाबन्दी से सम्बधित अन्य कोई अवशेष प्राप्त नहीं है।

मौहरगढ़ किला-समूह के निर्माता के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं विद्या रत्न खजूरिया के अनुसार-'मौहरगढ़ का किला लगभग ई० 16वीं सदी का बना हुआ है। इस किले की किलाबन्द ड्योढ़ियों की बनावट तथा दूसरे भवन कला के नमूनों से यह स्पष्ट पता चलता है कि सूर खानदान के किसी बादशाह ने इस की नींव रखी होगी।' इतिहास में उल्लेख मिलता है कि पंजाब और दिल्ली के शासक सिकन्दर सूरी ने सन् 1555 ई० में हुमायूं से सरहिन्द स्थान पर पराजित होने के बाद शिवालिक की पहाड़ियों की ओर प्रस्थान किया था। एक मत यह भी है कि यह किला सिकन्दर सूरी ने अपने छुपने के लिए बनवाया किन्तु प्रो० लक्ष्मीनारायण और संसार चन्द बड्डु के अनुसार वास्तुकला की दृष्टि से यह किला दिल्ली में स्थित लोधी भवनों से बहुत सीमा तक मिलता जुलता है किन्तु किसी लोधी सुलतान या सामंत ने शिवालिक पर्वत श्रृंखला में शरण ली, ऐसा उल्लेख ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं हुआ है।

एक मत यह भी है कि इस किले का निर्माण हुमायूं के भाई मिर्जा कामरान ने तब करवाया जब वह हुमायूं से पराजित होकर मनकोट के राजा प्रतापदेव की शरण में आया। राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है मिर्जा कामरान ने मनकोट में महल के निर्माण का कार्य आरम्भ करवाया था, किन्तु जब उसे मनकोट के राजा पर सन्देह हुआ तो वह इस महल को खाली कर के स्त्री वेश में एक अफगान के साथ चला गया। किन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत यह है कि यह किला-समूह शेरशाह सूरी के पुत्र जलाल खान जिसे सलीमशाह भी कहते हैं, की निर्मित है। अकबर के प्रधानमंत्री अबुल फजल का ध्यान जब किसी ने इस किले की ओर दिलाया तो उसने इसे शेरशाह सूरी के पुत्र इस्लाम शाह की ही कृत्ति बताया। कुछ इतिहासकारों ने इसे पठान काल की रचना भी बताया है।

स्थानीय जनश्रुति के अनुसार यह किला अकबर के एक विद्रोही सेना नायक की निर्मित है। बागी सरदार सम्राट् अकबर का अमूल्य खजाना लूट कर

अपने कुछ साथियों के साथ शिवालिक क्षेत्र की इन पहाड़ियों में आ छुपा। उसने अपनी सुरक्षा के लिए दुर्गम पहाड़ी घाटियों में इस सुरक्षात्मक दुर्ग का निर्माण करवाया। वह अभी इस दुर्ग को पूर्ण करवा ही रहा था कि मुगल सेना उसे ढूंढ़ती हुई इन पहाड़ियों में पहुँच गई। मुगल-सेना ने जाड़ स्थान पर तोपें जमाईं और इस किले की ओर धुआँधार गोलाबारी की। बागी सरदार को मुगल सेना के आगमन की जैसे ही सूचना मिली वह अपने विश्वस्त साथियों के साथ घोड़े पर सवार होकर चन्द्रभागा नदी की ओर भागा। मुगल सेना उस का पीछा करती जब चन्द्र भागा के तट के निकट पहुँची तो वह नाव में बैठ कर नदी पार कर गया। बागी सरदार का नाम क्या था? इस सम्बन्ध में जनश्रुतियाँ मौन हैं।

कुछ भी हो इतना निश्चित है कि इस दुर्ग की निर्मिति पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच हुई है। इस का निर्माण किसी धनाढ्य शासक, सामंत अथवा सरदार ने अपनी सुरक्षा के लिए करवाया। इस का निर्माता कोई मुस्लिम सुलतान अथवा सामंत था क्योंकि इस का स्थापत्य मुस्लिम वास्तुकला से प्रभावित है।

संदर्भ

1. साढ़ा साहित्य 1964 पृष्ठ संख्या 39 से 46
2. साढ़ा साहित्य में प्रो० निर्मोही का प्रकाशित लेख-डुग्गर दी वास्तुकला।
3. डोगरी फोक लिटरेचर एंड पहाड़ी आर्ट पृष्ठ संख्या 139-141
4. राजदर्शनी-ले० गणेशदास बटैहडा, अनु. डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क
5. डुग्गर की दन्त कथाएँ-पृष्ठ संख्या 63-64
6. डोगरी फोक लिटरेचर एंड पहाड़ी आर्ट पृष्ठ संख्या-141
7. पुरावेत्ता केदार नाथ शास्त्री के अनुसार यह दुर्ग प्राय: 15वीं सदी में पठान वंश के किसी नवाब या सूबेदार ने सुरक्षार्थ गिरि दुर्ग के रूप में बनवाया। देखिए:- रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ, डोगरी संस्था जम्मू पृष्ठ संख्या 77
8. शीराजा हिन्दी पूर्णांक में छपा कश्मीरी-विश्वकोश का अनुवाद-पृष्ठ संख्या-73
9. शीराजा हिन्दी-वर्ष 31 अंक 1, 2 पृष्ठ 40



कपूरगढ़ का किला

चारों ओर सुरम्य पर्वत मालाओं से घिरा कपूरगढ़ का किला तहसील जम्मू के अन्तर्गत जम्मू से अनुमानतः पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर बटाल की पहाड़ी के शिखर पर निर्मित है। किले तक पहुँचने के लिए गंडोली-नगरोटा से भैड़ गाँव की ओर जो सड़क जाती है, उसी के किनारे पर बसे कट्टल गाँव से एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी इस दुर्ग की ओर जाती है जो 2 कि.मी. लम्बी है। पहाड़ी के ऊपर 52 एकड़ भूमि में फैला एक समतल मैदान है और यह दुर्ग इसी मैदान में परिसीमित है।

दुर्ग के पुरावशेष मैदान में फैले हैं। प्रस्तर खंडों के अध्ययन से लगता है कि दुर्ग के चारों ओर प्राचीर थी जिस की ऊँचाई तीन से पाँच मीटर तक रही होगी। इस प्राचीर के चारों कोणों में अट्टालकों के भी अवशेष मिलते हैं। पूर्वोन्मुख एक अट्टालक की दीवारें अब भी खड़ी हैं।

दुर्ग की मुख्य ड्योढ़ी के पास ही एक सरोवर है जिस की अट्टारिकाएं पक्की हैं और प्रस्तर-शिलाओं से इन का निर्माण हुआ है। सरोवर की लम्बाई अनुमानतः 16 मीटर और चौड़ाई बारह मीटर है। इस की अट्टारिकाएँ सवा मीटर चौड़ी हैं।

दुर्गम पर्वत-शृंखलाओं के मध्य में निर्मित इस किले की परिगणना गिरि-दुर्ग के रूप में की जाती है। प्राकृतिक दृष्टि से अति सुरक्षित स्थान पर बना यह दुर्ग जम्मू के राजा कपूरदेव (1530-1571 ई०) की निर्मिति है। राजा कपूरदेव के शासनकाल में जम्मू सुरक्षित नहीं था। इस क्षेत्र पर मुगल सेना के आक्रमण की आशंका को दृष्टि में रख कर राजा कपूरदेव ने अपनी और अपने

परिवार की सुरक्षा के लिए इस आपद् कालीन दुर्ग का निर्माण करवाया। मूल रूप में यह दुर्ग मुगल और पहाड़ी शैली का मिश्रित रूप था। इस की प्राचीर कोट शैली में और अट्टालक मुगल शैली में थे। राज परिवार के लिए जो महल बनाए गए, वे शिलाखंडों और मिट्टी से निर्मित थे। इन की छत्तें लकड़ी के शहतीरों से आवेष्टित थीं।

सौभाग्य से राजा कपूरदेव के शासनकाल में कोई बाहरी आक्रमण न हुआ, अतः जम्मू और यह नवनिर्मित दुर्ग सुरक्षित रहा। राजा कपूर देव ने सुरक्षा की दृष्टि से इसे महत्त्वपूर्ण समझते हुए कट्टल-बटाल का क्षेत्र अपने एक बेटे को जागीर के रूप में दिया जिस ने इस किले को अपना आवास बनाया। राजा कपूरदेव के इस बेटे के वंशज कपूर दयालियें कहलाए ओर इन की जागीर को 'कोट' नाम से भी अभिहित किया जाता रहा। कपूरदयालिया जागीर दारों ने इस किले का विकास किया। यहाँ कई नये भवन बनवाये और शिव को समर्पित एक मंदिर का निर्माण किया। उन के समय में यह दुर्ग इसलिए भी अजेय माना जाता रहा क्योंकि इस के चारों ओर जो गहरी चट्टानी ढलवान थी, उस पर मनुष्य तो क्या चींटी भी नहीं चढ़ सकती थी।

जम्मू के राजा कपूरदेव के बाद जम्मू राज्य का विभाजन हुआ। नए बाहु राज्य का राजा जगदेव और जम्मू का राजा समैह्ल देव बना। राज्य के विघटन के बाद जम्मू पर बाहरी आक्रमणों का ऐसा क्रम बंधा कि जम्मू कई बार जला और उजड़ा। जम्मू के शासक आपद्काल में अपने प्राण बचाने त्रिकूटा पहाड़ की ओर तो भागे किन्तु उन्हें अपने ही पूर्वजों द्वारा निर्मित इस गिरि दुर्ग का कोई ज्ञान ही न रहा। अन्ततः सन् 1822 ई० में जम्मू का राजा बनने के बाद मियां गुलाबसिंह ने इस लुप्त दुर्ग को ढूंढ़ लिया किन्तु वह लड़ाइयों में इतना व्यस्त रहा कि वह इस ओर ध्यान ही न दे सका।

अन्ततः महाराणा रणवीर सिंह (सन् 1856 -1885 ई०) ने इस दुर्ग के अधिपति राजा त्रिंगड़देव से यह किला खाली करवाया ओर इस किले को

असलाखाना के रूप में बदला। महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में इस किले के भीतर चार नए भवन बने जिन की दीवारें शिलाखंडों की तथा छत्तें लकड़ी के शहतीरों की थी।

इन में सब से बड़े भवन का प्रवेशद्वार पूर्वोन्मुख हैं। इस की लम्बाई 17.10 मीटर, चौड़ाई 12.15 ऊँचाई अनुमानत: साढ़े छह मीटर हैं। यह भवन दो भागों में परिसीमित है। पहले भाग में एक महाकक्ष तथा उसके दायें-बायें दो कोठरियाँ हैं। इस के पार्श्व में भी दो और कमरे हैं जिन में बड़े कमरे की लम्बाई साढ़े दस मीटर और चौड़ाई साढ़े पाँच मीटर है। इस भवन का छत पत्थर और चूना सुर्खी का बना है। इस के द्वार गोल हैं तथा सहन खुला है। कहा जाता है कि इस भवन का उपयोग असला खाना के रूप में किया जाता है।

इस भवन के उत्तर में दूसरा आयताकार भवन है। इस की लम्बाई 19 मीटर और चौड़ाई 11.50 मीटर है। यह भवन चार कक्षों पर आधारित है जिन का फर्श कच्चा है। इस के दो प्रवेशद्वार पश्चिमोन्मुख तथा एक द्वार पूर्वोन्मुख है। इस का छत लकड़ी का था। इस में निर्मित कक्षों की चौड़ाई केवल 4.5 मीटर है।

इस किले के भीतर बना तीसरा भवन पश्चिम में है। इस की लम्बाई 18.75 मीटर और चौड़ाई 6 मीटर है। छत हीन इस भवन का प्रवेशद्वार उत्तरोन्मुख है। इस भवन की संरचना से लगता है कि इस का निर्माण सैनिकों के आवास के लिए किया गया होगा।

चौथा भवन तीसरे भवन के निकट है। इस की लम्बाई 19.66 मीटर है। उत्तरोन्मुख इस का प्रवेशद्वार प्रस्तर खंडों और लकड़ी से निर्मित है। इस भवन के दक्षिण में जो गोलाकार बुर्ज है उस की ऊंचाई 6 मीटर के लगभग है। यह बुर्ज शिलाखंडों और चूना-सुर्खी से बना है और इस के अन्दर मिट्टी का ढेर है।

कपूरगढ़ का किला जिस पहाड़ी पर बना है उसके पूर्व में तवी नदी प्रवाहमान है। दक्षिण में कट्टल-बटाल गाँव है। इस के उत्तर और पश्चिम में पहाड़ियों की शृंखला है। इतिहासकार काहनसिंह बलौरिया के अनुसार इस किले में असलाखाना था।[1]

महाराजा प्रतापसिंह (1885-1926) के शासनकाल में इस किले के बारूदखाने में आग लगी जिस के कारण इस किले के भीतर कई दिनों तक विस्फोट होते रहे।

इन विस्फोटों से कई सैनिक हताहत और कई घायल हुए। किले के कक्षों के छत उड़ गए और दीवारों को भी क्षति पहुँची। सन् 1920 ई० में सरकार ने इस किलें से सैनिक हटा लिए और किला खाली कर दिया।

सन् 1952 में सरकार ने वीरान पड़े इस किले की भूमि कुछ गुज्जर परिवारों में आवंटित की। गुज्जरों ने इस किले की 52 एकड़ भूमि में से 26 एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाया। किले के भवनों में उन्होंने नई छतें डालीं। इस के भीतर गुज्जरों के बीस के करीब घर हैं जिन का व्यवसाय पशुचारन और कृपि कर्म है। बच्चों की पढ़ाई के लिए किले के भवन के एक कक्ष में प्राइमरी स्कूल भी है।

कपूरगढ़ का किला अब चाहे सामरिक महत्त्व खो चुका है किन्तु इस का ऐतिहासिक महत्त्व आज भी बना हुआ है। डुग्गर के सुदृढ़ गिरि दुर्गों में इस की परिगणना की जाती है।



---

1. तारीख राजगान जम्मू एंड कश्मीर भाग 1, पृष्ठ 21

डन्साल का किला

मुगलकाल में बाहरी हमलों से बचने के लिए डुग्गर के राजाओं और सामंतों ने शिवालिक पर्वत माला में सामरिक महत्त्व को दृष्टि में रखकर जिन किलों का निर्माण करवाया उन में एक किला तहसील जम्मू के अन्तर्गत जम्मू जन्द्राह सड़क के दक्षिण में झज्झर नदी की तटीय पहाड़ी पर 'बग्गे' नामक गाँव में स्थित है। यह दुर्ग जम्मू से अनुमानत: 35 किलोमीटर और डन्साल से तीन किलोमीटर की दूरी पर पहाड़ी शैली में बना था। किले तक पहुँचने के लिए बग्गे गाँव के दक्षिण से एक पगडंडी सीढ़ी नुमां खेतों से होती हुई उस टीले की ओर जाती है जिस के शिखर के ऊपर यह किला बना है। यह पगडंडी प्रस्तर शिलाओं से निर्मित है और एक मीटर के लगभग चौड़ी है। इसकी दीवार कच्ची है। शिखर पर जहाँ पगडंडी समाप्त होती है, वहाँ उत्तरोन्मुख एक ड्योढ़ी के निशान हैं। लगता है यह ड्योढ़ी शिलाखंडों से निर्मित थी और इस के किवाड़ लकड़ी के थे।

किला चारों ओर से प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित सुदृढ़ प्राचीर से घिरा हुआ था। दीवार की ऊँचाई बताते हैं, दो से अढ़ाई मीटर तक थी। किले के भीतर सैनिकों के आवास के लिए कच्ची कोठरियाँ तथा सामंत के लिए कच्चा पक्का एक महल था जो दो भागों में विभाजित था। पूर्वोन्मुख भाग में सामंत रहता था और पश्चिमी भाग में रानिवास एक दीवार से मुख्य महल से अलग किया गया था। किले के भीतर दो छोटे-छोटे जलाशय थे। एक जलाशय रानिवास में और दूसरा सैनिकों की कोठरियों के निकट था। उपलब्ध जानकारी के अनुसार इस किले का निर्माण राजा कपूरदेव के बाईस में से किसी

एक उस पुत्र ने करवाया था जिसे राजा कपूरदेव ने डन्सान की जागीर प्रदान की। बहुत बाद में राजा जीतदेव (सन् 1799-1813 ई०) के शासन काल में मियां मोटा इस जागीर का जागीरदार था। मियां मोटा जम्मू नरेश राजा जीत देव के दरबार में महत्त्वपूर्ण पद पर था, अत: डन्साल की जागीर का प्रबन्धक उस का पुत्र मियां भूपसिंह था। मियां भूपसिंह खड़ी लखेन लड़ाई में और मियां मोटा जम्मू में जीतदेव की रानी बन्दराली द्वारा रचे एक षड्यंत्र में मारा गया तो मियां बज्रदेव इस जागीर का जागीरदार बना। बज्रदेव मियां भूपसिंह का पुत्र और मियां मोटा का पोता था। मिंया वज्रदेव ने इस किले का नए ढंग से विकास किया, अत: इस किले का एक नाम 'मियां वज्रदेव का किला' भी प्रचलित हुआ।

मियां वज्रदेव के समय डन्साल की जागीर अठारह गाँवों पर आधारित थी जिन में कुछेक के नाम-बड़सू, छटाल, सरमाल, ताड़ा, चनाखा, नन्दनी, काह्पोता, कन्याला, छप्पड़, छुता, सगेतर, झज्झर कोटली, डन्साल तथा जनाखा आदि थे। राजा ने डन्साल गाँव में भी अपने रहने के लिए किला नुमा महल बनवाया जिस के अवशेप आज भी गाँव में बिखरे मिलते हैं।

मियां वज्रदेव जनश्रुतियों के अनुसार क्रूर किन्तु महत्त्वकांक्षी जागीरदार था। वह अपने दादा मियां मोटा की भांति जन्मू कश्मीर के शासक महाराजा रणवीर सिंह के दरबार मं उच्चपद की इच्छा रखता था। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह ने जब उसे विशेष महत्त्व न दिया तो वह महाराजा रणवीर सिंह के चचेरे भाई और नौशहरा और चिभाल के राजा जवाहर सिंह के साथ मिलकर महाराजा रणवीर सिंह को राजगद्दी से उतारने और उन की हत्या करने के षड्यंत्र रचने लगा। सन् 1859 ई० में महाराजा रणवीर सिंह की हत्या का प्रयास करने में जिन लोगों ने भाग लिया उन में एक नाम वज्रदेव का भी था। किन्तु सौभाग्य से महाराजा षडयंत्रकारियों के द्वारा चलाई गई गोलियों की बौछाड़ से बच गया। उसने षड्यंत्रकारियों को पकड़ने का आदेश दिया तो मियां

ब्रज्रदेव भाग कर डन्साल आ गया और किले के भीतर छुप गया। जम्मू की सेना वज्रदेव को ढूंढती हुई जब डन्साल में पहुँची तो उसने डन्साल के किले को चारों ओर से घेर लिया। मियां वज्रदेव ने जम्मू की सेना का मुकाबला तो किया किन्तु अपने ही सैनिकों द्वारा हथियार डाल देने पर वह नि: सहाय इधर-उधर दौड़ने लगा। जम्मू की सेना किले की दीवार तोड़ कर किले के भीतर घुसी और उस ने राजा बज्रदेव को पकड़ कर उसे जंजीरों से बांधा और किले से घसीट कर डन्साल लाया। जम्मू की सेना ने किला छोड़ने से पूर्व मियां वज्रदेव के महल को आग लगा दी और किले को धराशायी कर दिया। शताब्दियों पूर्व बना डन्साल का किला जो जम्मू के राज-परिवार की सुरक्षा के लिए बनाया गया था, नष्ट हो गया। जम्मू की सेना मियां बज्रदेव को बन्दी बनाकर जम्मू ले आई। उसे कड़ी सुरक्षा में कारावास में रखा गया। षड्यंत्र कारियों के विरुद्ध महाराजा रणवीर सिंह ने अपना निर्णय 10 फरवरी 1860 को सुनाया। इस निर्णय में कई षड्यंत्रकारियों को प्राण-दंड मिला तो कईयों को आजीवन कारावास और कईयों को रियासत से निष्कासित किया गया। किन्तु मियां बज्रसेन को राजवंश का होने तथा मियां मोटा का पोता होने के कारण प्राण दंड से मुक्त रखा। किन्तु उससे डन्साल की जागीर छीन ली और उसके स्थान पर उसे तहसील रियासी के अन्तर्गत अरनास में स्थित चलद्ध गाँव की जागीर प्रदान करके उसे वहीं भेज दिया।

मियां बज्रदेव के डन्साल से चले जाने के बाद डन्साल का यहा किला पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस के महल धाराशायी हुए और शिलाखंड बिखर गए। अब इन महलों की नीवें ही शेष बची हैं जो इस किले के गौरवमय अतीत की गाथा सुनाती हैं।

डन्साल वासियों ने राजा ब्रजदेव की स्मृति में इस किले में एक वर्गाकार चबूतरा निर्मित किया है जो 4 मीटर आकार में है। चबूतरे पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ हैं। चबूतरे के ऊपर प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित एक छोटा-सा देहरा

है जिस में दो मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। इन में एक मूर्ति एक घुड़सवार की है और दूसरी एक महिला की है। समझा जाता है कि पुरुष की मूर्ति मियां ब्रज्रदेव की तथा दूसरी उस की रानी की है।

अब यह किला वीरान पड़ा है।



साम्बा का किला

जम्मू से 35 किलोमीटर की दूरी पर पूर्व-उत्तर में जम्मू-पटानकोट राजपथ से केवल आधा किलोमीटर दूरी पर टीले में निर्मित यह किला स्थापत्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह डुग्गर प्रदेश का एक सुदृढ़ और संरक्षित किला रहा है। इस की शिलाखंडों से निर्मित वाह्य दीवारें कई कोणों में विभाजित हैं। दीवारों की ऊँचाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न हैं। कहीं ये चार से छः मीटर तक ऊँची हैं तो कहीं इन की ऊँचाई सात और आठ मीटर के बीच है।

यह किला जन श्रुतियों के अनुसार नागराजा गौरसेन के दुर्ग की नीवों के ऊपर बना है। कभी इस दुर्ग को 'नन्दिनी दुर्ग' नाम से अभिहित किया जाता था। इस का विस्तार महेश्वर मंदिर से भी काफी आगे था तथा इस की परिगणना पहाड़ों के प्रमुख किलों में की जाती थी। सन् 1294 ई० में बलबन के पुत्र महमूद ने इस किले की अतुल्य सम्पति को लूटने के उद्देश्य से इस पर आक्रमण किया। नागराजा गौर सेन ने महमूद का कड़ा मुकाबला किया किन्तु अन्ततः पराजित होने के बाद पहाड़ों की ओर भाग गया। महमूद ने इस दुर्ग को नष्ट-भ्रष्ट किया, नगर को लूटा और अग्नि की भेंट करके इसे जला डाला। नगर के लोग पलायन करके पहाड़ी क्षेत्र में चले गए। महमूद ने इस विजित क्षेत्र को कैहलदेव को सौंपा। उसने दुर्ग की मुरम्मत करवाई और लोगों को पुनः यहाँ बसाया। सन् 1320 ई० में त्रिकोट (लखनपुर) के राजा मल्लदेव ने कैह्लदेव से यह दुर्ग और क्षेत्र प्राप्त किया। वह भगवान् साम्ब का प्रतिनिधि बन कर शासन चलाने लगा। तभी से इस नगर का नाम साम्ब या साम्बा प्रचलित हुआ। राजा मल्लदेव के वंशज साम्बा के शासक होने के कारण 'सम्बेयाल' कहलाए।

पहाड़ी राजाओं के विद्रोह का दमन करने सन् 1594 ई० में मुगलसेना जब साम्बा की ओर आई तो उपलब्ध जानकारी के अनुसार राजा मल्लदेव के वंशज 'साम्बा' नगर से हट कर निकटवर्ती उन पहाड़ियों में जा बसे जो घने वृक्षों से आवेष्टित थीं। ऐसी बस्तियों को 'मंडी' कहा गया। साम्बा में ऐसी बाईस मंडियाँ स्थापित हुईं। इन बाईस मंडियों में कोई केन्द्रीय इकाई नहीं थी, अत: साम्बा का राज्य बिखर गया।

पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह ने सन् 1808 ई० और 1812 ई० में जसरोटा पर चढ़ाई की तो साम्बा भी खालसा दरबार के अधिकार में आ गया। सन् 1822 ई० में महाराजा रणजीतसिंह ने जम्मू का राज्य गुलाबसिंह को और बन्दरालता तथा साम्बा का क्षेत्र सुचेतसिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया।

राजा सुचेत सिंह ने अनुमानत: 1830 ई० में साम्बा में स्थित नाग राजा गौहर सेन के किले के अवशेषों पर इस नए दुर्ग का निर्माण करवाया।

तीन ओर से पहाड़ी से परिवेष्टित इस दुर्ग में प्रवेश के लिए जो सिंहद्वार बना है, वह पूर्वोन्मुख है। मूल सिंहद्वार जो प्रस्तर शिलाओं से बना था सन् 1947 में ढह गया और उसके पुरावशेषों से ही नया प्रवेशद्वार बना जो दोनों ओर से ऊँची प्राकार से परिसीमित है। प्रवेशद्वार के उत्तर में प्रहरियों के लिए जो कोठरी बनी है, वह पक्की है।

इस किले के पश्चिम में आयताकार जो जलाशय है वह अनुमानत: बीस मीटर लम्बा, सोलह मीटर चौड़ा और दस मीटर गहरा है। जलाशय की अट्टारियाँ प्रस्तर शिलाओं से बनी हैं और इन की संख्या इक्कीस है। जलाशय के उत्तर में एक-चबूतरे पर लोक देवता कालीवीर का लघु मंदिर है जिस की ऊँचाई केवल डेढ़ मीटर है। पूर्वोन्मुख इस मंदिर के गर्भगृह में लोकदेवता के अतिरिक्त लोकशैली में निर्मित एक पुरुष और नारी की युगल प्रतिमा है। मंदिर के चबूतरा में लौकिक और शहीद देवताओं की मूर्तियाँ पंक्तिबद्ध ढंग में सजाई गई हैं।

जलाशय से पच्चास मीटर की दूरी पर आवासीय-भवन है। यह भवन परवर्ती रचना लगता है। इसी प्रकार प्रवेशद्वार के साथ बने कक्ष भी परवर्ती हैं।

किले के पश्चिमी भाग में राजमहल है जिस की ड्योढ़ी की ऊँचाई अनुमानतः तीन मीटर और चौड़ाई दो मीटर है। इसके ललाट में ग्यारह छोटे-छोटे कोष्ठक हैं जिन में निर्माण के समय छोटी मूर्तियाँ संस्थापित थीं। किन्तु अब यह द्वार मूर्तियों से रहित है। पूर्वोन्मुख इस द्वार के शीर्ष-भाग में जो सूर्य का चित्र बना है, वह अब धुंधला पड़ गया है। धनुषाकार इस प्रवेश द्वार के बाहरी भाग में जो लघु स्तम्भिकाएँ बनी हैं, वे कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कही जा सकती हैं।

महल कोठरियों, कक्षों और बरामदों पर आधारित है। इस के मध्य में एक खुला प्रांगण है जिस के चारों ओर सतरह कक्ष हैं जो काष्ठ-वातानों से सुसज्जित हैं। इन के द्वार लकड़ी के हैं और काष्ठ-कला की दृष्टि से सामान्य हैं। कक्षों और कोठरियों को गर्म रखने के लिए अंगीठियों की व्यवस्था की गई है। इन कोठरियों में जो आलय बने हैं, वे एक ही आकार में हैं।

इस महल का विशेष आकर्षण गोल हाल है जिस के विशाल और खुले वितान इसे दिन के समय प्रकाश से आलोड़ित रखते हैं सभी कक्षों और कोठरियों की छतें लकड़ी की हैं। इन में कईयों पर बाद में पक्का छत डाला गया है।

इस महल के उत्तर तथा दक्षिण में दो छोटी-छोटी ड्योढ़ियाँ और बनी हैं जो स्थापत्य की दृष्टि से सामान्य हैं। इन का उपयोग सम्भवतः आपद् के समय किया जाता रहा होगा।

महल की मुख्य ड्योढ़ी के साथ जो कोठरियाँ बनी हैं, वे परिचायक और परिचायिकाओं के लिए थीं।

बीस कनाल भूमि में फैले इस महलनुमा दुर्ग को बुरे दिन तब देखने

पड़े जब सन् 1845 में इस के निर्माता राजा सुचेत सिंह की हत्या उसी के भतीजे राजा हीरासिंह ने करवाई। राजा सुचेतसिंह की हत्या के बाद उस की कई रानियाँ तथा परिचायिकाएँ बसन्तर नदी के तट पर चिता जला कर सती हो गईं। जिससे यह किला वीरान हो गया।

सन् 1905 ई० में साम्बा के लोगों के अनुरोध पर महाराजा प्रतापसिंह ने यह किला शिक्षा-विभाग को विद्यालय चलाने के लिए सौंप दिया। तब से आज तक यह किला शिक्षा-विभाग के अधिकार में है। शिक्षा-विभाग की ओर से इस किले में विद्यार्थियों के लिए कक्षा कक्ष बनाए जाने के बाद इस का भीतरी स्वरूप परिवर्तित है।

अतीत की स्मृतियों को संजोए यह किला साम्बा की शोभा है।

---

1. शीराजा डोगरी अंक 138 में प्रकाशित-साम्बा नगर निर्माण-लेखक डा० जगजीत सिंह सम्बयाल के लेख से उद्धृत।
2. वही

टिप्पणी:-

(1) साम्बा के विषय में एक जनश्रुति यह भी प्रचलित है कि इस की नींव भगवान् कृष्ण के पौत साम्ब ने तब रखी जब वह कुष्ट-रोग के निवारण के लिए यहाँ आया था। किन्तु इस प्रकार की दन्तकथा उड़ीसा में भी प्रचलित हैं, अत: यह विश्वसनीय नहीं।

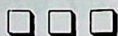
(2) भगवान् साम्बेश्वर का मंदिर नगर में स्थित है।

(3) महेश्वर मंदिर में एक प्राचीन शिलालेख है जो सम्भवत: आठ सौ वर्ष पुराना है। इस की लिपि पुरानी टाकरी कही जाती है। इस मंदिर के निकट पुराने शहर के अवशेष उपलब्ध हैं।

(4) 'आदि तुर्क कालीन भारत' के अनुसार बलबन के बेटे महमूद ने सन् 1294 ई० में साम्भ नामक पहाड़ी राज्य पर आक्रमण किया था।

(5) डा. सुखदेव चाड़क ने 'द किंगडम आफ हिमालियन स्टेटस' पुस्तक में राजा महलदेव का साम्बा आगमन सन् 1320 ई० माना है।

(6) 'सम्बयाल वंश एवम साम्बा' पुस्तक के अनुसार सन् 1294 ई० तक साम्बा पर राजा गौरसेन का राज्य था।



रामगढ़ का किला

सन् 1846 ई० में जम्मू व कश्मीर राज्य की स्थापना के बाद रियासत के शासकों ने जिन सीमावर्ती किलों का निर्माण करवाया, उन में उल्लेखनीय एक किला जम्मू जनपद के अन्तर्गत साम्बा से अनुमानतः बारह किलोमीटर की दूरी पर रामगढ़ गाँव में अवस्थित है। रामगढ़ को जम्मू पठानकोट राष्ट्रीय पथ पर स्थित विजयपुर से सड़क जाती है। रामगढ़ विजयपुर के दक्षिण में अनुमानतः चार किलो मीटर दूर है।

रामगढ़ किला दुर्ग शिल्प की दृष्टि से परिखा, सिंहद्वार, अट्टालक, तथा आवासीय भवनों पर आधारित है। यह किला रामगढ़ गाँव के दक्षिण में स्थित एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। किले की परिखा टीले के चारों ओर निर्मित है जिस की चौड़ाई अनुमानतः आठ मीटर और गहराई सात मीटर थी। किन्तु बहुत बाद में सम्भवतः महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में इस परिखा को अनुपयोगी समझ कर भर दिया गया।

इस किले का प्रवेशद्वार एक विशालकाय दरवाजे के रूप में उत्तरोन्मुख है। यह एक बहुकोणीय किला है। इस की बाहरी दीवारें टेढ़ी मेढ़ी और कहीं-कहीं तिरछी और भीतर को धंसी हुई हैं। किले के प्रत्येक कोण में छत हीन बुर्ज हैं। दीवारों में जो तिरछे रन्ध्र हैं वे कई स्तरों में हैं।

एक सीमावर्ती दुर्ग होने के कारण इस में जो कक्ष बने हैं, वे सैनिकों के आवास के लिए हैं। किले के भीतर अधिष्ठात्री महाकाली का जो भव्य मंदिर था, उसे अब वहाँ से हटा कर किले के बाहर स्थापित किया गया है। इस के गर्भगृह में प्रतिष्ठित देवी की विलक्षण मूर्ति आधा मीटर ऊँची है

और प्रस्तर शिला को उकेरकर बनाई गई है। इस मंदिर के निकट ही जीर्ण-शीर्ण अवस्था में खड़ा प्राचीन शिव मंदिर है।

इस किले का निर्माण महाराजा रणवीर सिंह (1856-85) ने अनुमानत: सन् 1856 में करवाया। एक जनश्रुति के अनुसार महाराजा रणवीर सिंह एक बार सीमावर्ती अवताल गाँव में स्थित सैनिक शिविर का निरीक्षण करने गए तो उन की भेंट इस स्थान पर महात्मा राम गिर से हुई। महाराजा महात्मा के दर्शन करने उन की कुटिया में गए तो महात्मा राम गिर ने भविष्यवाणी की कि महाराजा के घर एक वर्ष के अन्दर एक और राजकुमार जन्म लेगा। महात्मा की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। एक लम्बे अन्तराल के बाद महारानी सिवा ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया। महात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करके महाराजा ने नवजात शिशु का नाम रामसिंह रखा और उसके नाम पर रामगढ़ गाँव बसाया और इस स्थान के सामरिक महत्त्व को देखते हुए यह किला बनवाया।

महाराजा प्रतापसिंह (1886-1926) के शासन काल में इस किले को कारावास का रूप दिया गया। इस के द्वार बदले गए और काष्ठ द्वारों के स्थान पर लोहे के द्वार लगाए गए। किन्तु इस कारावास की दीवारों को फाँद कर जब कुख्यात डाकू अब्दुला फरार हो गया तो इस किले को कारावास के अनुपयुक्त समझ कर यहाँ पुलिस थाना स्थापित किया। सन् 1947 की लड़ाईयों में पाकिस्तानी सेना की गोलाबारी से इस किले को भारी क्षति पहुँची। परिणामस्वरूप ऐतिहासिक महत्व का यह स्मारक मलबे के ढेर में बदल गया।



---

1. रामगढ़ का पुराना नाम 'खिरड़ी' था।
2. अवताल गाँव रामगढ़ से चार किलोमीटर दूर है और यहाँ पर भी एक ऐतिहासिक ड्योढ़ी के अवशोष प्राप्त हैं। कहते हैं कि यहाँ भी सेना की छावनी या किला था।

सुचेतगढ़ का किला

सुचेतगढ़ का किला सुचेतगढ़ गाँव के मध्य में एक छोटे से टीले के ऊपर निर्मित है। सुचेतगढ़ गाँव रणवीरसिंहपुरा के दक्षिण में और पुरानी जम्मू-स्याल-कोट सड़क के पश्चिम में स्थित है। सड़क से यह किला एक किलोमीटर दूर है। इस किले से स्यालकोट अनुमानत: 18 किलोमीटर पश्चिम में है। किले के पूर्व में फलोरा और अवदात तथा कुशालपुर गाँव, पश्चिम में गुलाबगढ़, कुटटल, विधिपुर, जट्टां, कुट्टना-खुर्द गाँव, उत्तर में चक्क शेखां, सतो-आली आदि गाँव हैं। ये सभी गाँव भारत-पाक सीमा पर बसे हैं। सुचेतगढ़ गाँव का पुराना नाम बड़ी-पिण्ड था। इस गाँव के निकट लीला पीर की दरगाह थी, अत इसे 'लीले दी टाली' नाम से भी अभिहित किया जाता था। किन्तु गुलाबसिंह ने इस गाँव पर अधिकार करने के बाद इस का नाम अपने छोटे भाई के नाम पर सुचेतगढ़ रखा। उसने ऐतिहासिक महत्व का यह किला भी बनवाया और एक भव्य रघुनाथ मंदिर का निर्माण करवाया जो ऊँची प्राचीर से चारों ओर से आवेष्टित है। यह मंदिर किले के पूर्व में है। इस में कई भवनों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। ये भवन यात्रियों के विश्राम के लिए बनाए गए थे।

इस किले के नीचे बसा सुचेतगढ़ कस्बा सीमावर्ती गाँव होने के कारण भारत-पाक लड़ाईयों के कारण कई बार उजड़ा और बसा है। सुचेतगढ़ में अब यह किला एक मिट्टी का टीला दिखाई देता है। कहते हैं कि यह किला धूलि कोट शैली में था। इसकी दीवारें कच्ची थीं। किले के भीतर कई कक्ष थे जिनका उपयोग अन्न-भंडारण के लिए किया जाता था।



गुढ़ा सलाथिया का किला

डुग्गर प्रदेश में सामरिक महत्व की दृष्टि से जिन किलों का निर्माण हुआ उन में गुढ़ा सलाथिया का किला भी है। यह किला जम्मू के पूर्व में जम्मू-पठानकोट राष्ट्रीय मार्ग पर स्थित विजयपुर के उत्तर में सात किलो मीटर की दूरी पर गुढ़ा सलाथिया गाँव के एक पहाड़ी टीले पर अवस्थित है। जिस स्थान पर यह किला बना है उसे गढ़-मण्डी कहते हैं। अत: इस किले को 'गढ़-मण्डी की किला' भी कहा जाता है।

इस किले का अधिकांश भाग धराशायी है किन्तु प्रवेशद्वार सुरक्षित है। किले की भग्न और जर्जरित प्राचीर को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह एक सुदृढ़ किला रहा है। इस की दीवारों की मोटाई एक से डेढ़ मीटर तक है।

किले का प्रवेशद्वार जिसे ड्योढ़ी कहा जाता है, प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित है इस के साथ जुड़ी दीवार की चिनाई पत्थरों से चूना सुर्खी से की गई है। किले के भीतर बनी कोठरियाँ क्षतिग्रस्त हैं।

किले का अवलोकन किया जाए तो यह मुगल काल की रचना लगता है। वैसे भी इस की वास्तुकला मुगल स्थापत्य से प्रभावित है।

इस किले के निर्माता के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। कहा जाता है कि जम्मू नरेश महाराजा रण जीतदेव (1733-82 ई0) के शासन काल में अन्दाड़-सानी नामक गाँव के एक जमींदार कुननसिंह ने आखेट खेलते समय जंगल में इसे देखा। वह किले के भीतर गया तो वहाँ उसने चार तोपें भी देखीं। लावारिस पड़े इस किले पर उसने अधिकार किया और किले के कोषालय से

मिले धन से उसने इस को ठीक करवाया। उसने इसे अपना आवास बनाया और यहीं रहने लगा।

महाराजा गुलाबसिंह (1822-56) के शासन काल में इस किले का अधिपति मियां गुज्जर सिंह था। एक जनश्रुति के अनुसार खालसा सेना ने जब जम्मू पर हमला किया तो इस किले के अधिपति ने खालसा सेना पर तोप के गोले बरसाकर उसे आगे बढ़ने से रोका। इस किले पर अधिकार करने के लिए खालसा सेना के सेनानायक चन्दा सिंह ने प्रयास किया तो मियां गुज्जर सिंह ने उस के दल पर गोलियाँ बरसाईं जिस से चन्दासिंह वहीं ढेर हो गया। बाद में उत्तेजित खालसा सेना ने इस किले पर जोरदार हमला करके इसे चारों ओर से घेर लिया और तोपों के गोले बरसा कर इसे ध्वंस किया।

डॉ० सुखदेवसिंह चाड़क का मत है कि यह दुर्ग किसी मुस्लिम शासक की निर्मिति है क्योंकि शिवालिक पहाड़ियों में मुस्लिम शासकों द्वारा चार किले बनाये जाने का विवरण ऐतिहासिक ग्रंर्थों में मिलता है।

एक मत यह भी है कि अकबर नामा में साम्बा से चार कोस की दूरी पर मुगल सेना द्वारा निर्मित जिस किले का वर्णन हुआ है, वह यही किला हो सकता है। वैसे भी इस किले से साम्बा केवल दस किलो मीटर दूर है।

एक अन्य लोकश्रुति यह भी है कि पंजाब से आने वाले आक्रान्ताओं को जम्मू की ओर बढ़ने से रोकने के उद्देश्य से किसी डोगरा शासक द्वारा ही इस किले का निर्माण किया गया।

कुछ भी हो एक वन्य दुर्ग के रूप में इस किले का निर्माण जिस भी शासक या सामंत ने किया, वह दूरदर्शी और रणनीति में कुशल रहा होगा।

---

1. डोगरी लेखक पवित्र सिंह सलाथिया के अनुसार इस किले को लाहौर के मुगल हाकिम ने अपने परिवार की सुरक्षा के लिए बनवाया था। उनके अनुसार लाहौर का हाकिम लाहौर में गर्मियों की उमस से बचने के लिए कुछ दिन विश्राम करने के लिंए यहाँ आता था।

भग्नावस्था में यह किला आज भी गढ़-मण्डी में देखा जा सकता है। इस के अवशेष मण्डी के टीले पर स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं जो दर्शकों को इस की गौरव गाथा सुनाते प्रतीत होते हैं।

---

2. यह किला सुरक्षा की दृष्टि से भी बेजोड़ है। इस के पूर्व में गोरली खड्ड उत्तर में देविका नदी की ऊँची सीधी खड़ी पहाड़ी है जो शत्रुपक्ष की सेना को किले तक पहुंचने में बाधा पैदा करती है।
3. भाई चन्दासिंह रानी जिज्जा का भाई था। उसे गुज्जर सिंह के भाई दौलत सिंह ने इस किले के आस-पास लड़ाई में मार डाला था।
4. मियां गुज्जर सिंह महाराजा गुलाबसिंह का समकालीन था। उसके दो पुत्र प्रसिद्धसिंह और प्रदीपसिंह तथा एक कन्या थी जिस का विवाह उसने हिमाचल के किसी राजकुमार से किया था। कहते हैं इस कन्या को किले में गढ़ा धन मिला था।
5. गढ़ मण्डी के किले के भीतर जो तालाब था वह अब सूख गया है।
6. गढ़ मण्डी का टीला भूमितल से अनुमानतः एक सौ मीटर ऊँचा है।
7. स्थापत्य की दृष्टि से यह किला सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की कृति माना जा सकता है।



भरत गढ़ का किला

तहसील साम्बा के अन्तर्गत तलूर गाँव में पहाड़ी शैली में बना यह किला पत्थर की ईंटों से निर्मित है। बसन्तर नदी इस किले के निकट से प्रवाहमान है। नालों, छोटी-छोटी पहाड़ियों और वन से घिरा यह किला दुर्जेय माना जाता रहा है।

किले तक पहुंचने के लिए एक पगडंडी जक्क जलेड़ी गाँव से और दूसरी पगडंडी नड्ड गाँव से जाती है नड्ड, साम्बा मानसर सड़क के किनारे साम्बा से तेरह किलोमीटर दूर है। यहाँ से डेढ़ किलोमीटर दूर एक कुआं है। कुएं से एक पहाड़ी पगडंडी बदनाई गाँव की ओर जाती है। बदनाई गाँव से यह किला एक किलोमीटर दूरी पर पहाड़ी की ढलान में स्थित है।

यह किला अब भग्नावस्था में ही दृश्यमान है। किले की बाहरी दीवार का कुछ हिस्सा ही बचा है, शेष भूमिगत है। किले के निकट जो छोटा सा सरोवर है, कहते हैं कि वह पहले किले के भीतर था।

यह किला जनश्रुतियों के अनुसार राणा जनमेजे की निर्मिति है। राणा जनमेजे का नाम डुग्गर के किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता, लगता है कि वह जसरोटा अथवा मनकोट में से किसी राज्य के अधीनस्थ रहा होगा। वैसे लोकपरम्परा उसे राजपूतों की सुम्बड़िया शाखा से सम्बद्ध मानती है। यदि ऐसा है तो यह मानना पड़ेगा कि सुमरता राज्य की सीमाएँ इस क्षेत्र तक परिव्यास थीं।

भरतगढ़ किले के सामने पन्द्रह किलोमीटर की दूरी पर मौहर गढ़ का दुर्ग समूह है। कहते हैं कि जब मौहर गढ़ के किले का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ, तब से ही भरतगढ़ किले का ह्रास आरम्भ हुआ।

आज यह किला सब की दृष्टि से ओझल होते हुए भी हमारे उज्जवल अतीत का एक स्मृति-चिन्ह है।

1. किले के पुरावशेषों का निरीक्षण करने से लगता है कि यह किला पन्द्रहवीं शताब्दी की निर्मिति है।



जसरोटा का किला

डुग्गर के प्रसिद्ध और ऐतिहासिक दुर्गों में जसरोटा के किले की परिगणना की जाती है। कठुआ से अनुमानतः बीस किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में जम्मू-पठानकोट राष्ट्रीय राजपथ में स्थित राजपुरा से एक सड़क इस गिरि दुर्ग की ओर जाती है। उज्झ नदी के तट पर स्थित पहाड़ी ढलवान में निर्मित यह दुर्ग डुग्गर के उन बिरले किलों में एक है जिस ने मुगल सम्राट अकबर की सेना को अचम्भित किया था।

वास्तु विन्यास की दृष्टि से यह नगर दुर्ग योजना पर बना लगता है। इस में प्रवेश के लिए जो सिंहद्वार बना है, उसे दिल्ली दरवाजा के नाम से अभिहित किया जाता है। यह द्वार मेहवार आकार में है। दक्षिणोन्मुख यह द्वार पाषाण-शिलाओं से निर्मित है। इस की ऊँचाई अनुमानतः आठ मीटर और चौड़ाई 4.65 मीटर है। यह दरवाजा दायें-बायें दोनों ओर से प्रकार से जुड़ा हुआ है। चिनाई चूना सुर्खी से की गई है। दिल्ली दरवाजा के साथ ही पक्की कोठरियों के अवशेष हैं जिन की बाहरी दीवारों में दीप प्रज्वलित करने के लिए छोटे-छोटे ताक बने हैं। दिल्ली दरवाजा से भीतरी-भाग में प्रवेशार्थ जो सोपान पथ है उस की चौड़ाई आरभ्भ में चार-मीटर और पहाड़ी चढ़ाई में केवल अढ़ाई मीटर के लगभग रह गई है। सोपान-पथ के दोनों ओर पक्की और सुदृढ़ अट्टालिकाओं के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। बीच में कहीं-कहीं दुकानें भी हैं। इन की दीवारें तो खड़ी हैं किन्तु छत्त उखाड़ लिए गए हैं। इस मार्ग में तीन मंदिरों के अवशेष बायीं ओर मिलते हैं ये मंदिर शिखर शैली में हैं। इन में एक अष्टकोणीय शिखर युक्त मंदिर दिल्ली दरवाजा से अनुमानतः तीन सौ मीटर की दूरी पर है जिस का वर्गाकार चबूतरा 6 X 6 मीटर है। मंदिर का प्रवेशद्वार पल्लवाकर है। यह

मंदिर शक्ति को समर्पित लगता है। मंदिर के भीतरी और बाह्य दीवारों में जो भीत्ति चित्र बने हैं वे अब घिस गए हैं। ये भित्तिचित्र जसरोटा कलम के हैं जो इस स्थान की समुन्नत चित्र कला का बोध कराते हैं। इस मंदिर से आधा किलोमीटर ऊपर जो विशाल मंदिर है वह भगवान जगन्नाथ जी को समर्पित बताया जाता है। इस मंदिर से जगन्नाथ की मूर्ति उठवा कर अब नीचे गाँव में नव निर्मित जगन्नाथ मंदिर में स्थापित की गई है। इस मंदिर से एक किलोमीटर उतर में एक खुला मैदान है जिसे चौगान कहा जाता है। चौगान जसरोटा नगर दुर्ग का मध्य भाग है। इस भाग में एक विशाल सरोवर, एक भव्य शिवमंदिर और कई हवेलियों और अट्टालिकाओं के पुरावशेष मिलते हैं। शिवमंदिर अर्द्धमण्डप, प्रदक्षिणा पथ और गर्भगृह पर आधारित है। इस की स्तम्भिकाएँ कलात्मक एवं आकर्षक हैं। यह मंदिर परकोट से घिरा हुआ है। सरोवर की अट्टारिकाओं में जो शिलाखंड लगे हैं उन्हें बड़ी निपुणता से तराश कर लगाया गया है। यह तालाब अनुमानतः छः कनाल जमीन में फैला है इस की ग्यारह अट्टारिकाएँ दर्शनीय हैं।

चौगान के आगे किला का क्षेत्र आरम्भ होता है। किले में प्रवेशार्थ जो बड़ी ड्योढ़ी बनी है उस की ऊँचाई अनुमानतः 10 मीटर और चौड़ाई 3.90 मीटर है। मुख्य ड्योढ़ी के दायें-बायें जो सुदृढ़ प्राचीर बनी है, वह छोटी ईंटों से निर्मित है जिसे 'नानकी ईंट' भी कहा जाता है। किंतु किले के पूर्वी भाग में जो लम्बी दीवार है वह स्थानीय पत्थरों को तराश कर निर्मित है। मुख्य ड्योढ़ी के साथ एक विशाल कक्ष तथा कई कोठरियों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। कक्ष के छः द्वार हैं। इस कक्ष और कोठरियों का निर्माण प्रहरियों के आवास के लिए किया गया है।

ड्योढ़ी से थोड़ी दूर आगे दुर्ग-पथ की दायीं ओर राजा हीरासिंह का महल है। यह महल अंग्रेजी वर्ण एल के आकार में है। इस छोटे किन्तु आकर्षक महल के दो भाग हैं। पहले भाग में प्रवेशार्थ तीन बड़े-बड़े मेहराबी द्वार हैं जिन के साथ एक आयताकार विशाल कक्ष है। इस कक्ष के दायें-बायें

कोठरियाँ है। पश्चिमोन्मुख इस महल के मुख्य कक्ष के पार्श्व में भी एक बड़ा कक्ष है जिस के तीन पल्लावाकार द्वार हैं। यहाँ से उज्झ नदी का दृश्य देखा जा सकता है। पूर्वोन्मुख बड़े कक्ष के दायें-बायें तहखाने हैं। महल के दोहरे कलात्मक स्तम्भ, खुले वितान और बेल-बूटों से अंलकृत दीवारें इसके सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं। यह महल तिमंजिला था किन्तु धराशायी हो जाने के कारण अब इसकी केवल प्राचीरें ही खड़ी दिखाई देती हैं।

इस महल का दूसरा भाग दक्षिणोन्मुखी है। यह भी पहले महल की वास्तुकला की दृष्टि से अनुकृति लगता है। प्रवेशार्थ तीन मेहराबी द्वार, बड़ा कक्ष और इस के पीछे कोठरियाँ हैं। इसके दूसरे भाग में बने बरामदे के चार द्वार खड़े हैं शेष गिर गए हैं।

प्रत्येक द्वार पर तीन स्ताम्भिकाएँ बनी हैं जो अति आकर्षक हैं। महल का बड़ा कक्ष दीवानखाना बताया जाता है। महल के पूर्व में सुरक्षात्मक एक लम्बी दीवार है। महल के नीचे एक कक्ष है जिसे असलाखाना भी कहते हैं। इस का शिखर गोल है।

महल के सन्मुख खुला प्रांगण है जो आयताकार है। इस का मुख भाग अनुमानतः 25 मीटर हैं। प्रांगण के पश्चिम में एक छोटा-सा जलाशय है जिस की पूर्वोन्मुख अट्टारिकाएं कलात्मक हैं। इन के ऊपर गोलाकार दो बड़े-बड़े गमले हैं जिन का वास्तु-सौन्दर्य अनुपम है। इस महल के साथ ही एक रम्य वाटिका के अवशेष मिलते हैं।

जसरोटा के इस महल को नवां महल (नया महल) भी कहते हैं। इस का निर्माण राजा हीरासिंह ने सन् 1840 ई० में करवाया। राजा हीरासिंह पंजाब नरेश रंजीतसिंह के प्रधानमंत्री राजा ध्यानसिंह का पुत्र था। महाराजा रंजीतसिंह ने जसरोटिया वंश के अन्तिम राजा भूरिसिंह को राजगद्दी से उतार कर जसरोटा की जागीर राजा हीरासिंह को प्रदान कीं। राजा हीरा सिंह ने किलानुमां इस महल का निर्माण तो बड़े चाव से करवाया किन्तु उसे इस महल में रहने का

अवसर एक सप्ताह से अधिक न मिला। सन् 1845 ई० में लाहौर से भागते समय खालसा सेना के एक दल ने उस की हत्या की।

नये महल से अनुमानत: तीन सौ मीटर की दूरी पर जसरोटा का किला नुमां पुराना महल है। इस महल में प्रवेश के लिए जो विशाल प्रवेशद्वार है उसे दोहरी ड्योढ़ी कहा जाता है इस का आकार मेहराबी है और ऊँचाई अनुमानत: पाँच मीटर है। इस के दायें-बायें प्रहरियों की कोठरियाँ और उन के साथ बुर्ज बने हैं जिन की दीवारों में तिरछे रन्ध्र हैं। छत विहिन इन बुर्जों की दीवारें अति सुदृढ़ हैं। इस ड्योढ़ी के पश्चिम में कोठरियों की एक लम्बी पंक्ति है। लगता है इन कोठरियों का निर्माण सैनिकों के लिए किया गया है। किले के इस भाग में एक आयताकार तालाब है जिस में अट्टारिकाएं नहीं हैं। केवल उत्तर में नीचे ढलने के लिए सीढ़ियाँ हैं। किले के इस भाग में पुराने भवनों के अवशेष दुर्ग पथ के पूर्व में भी दृष्टिगत होते हैं। किले के इस भाग का निर्माण कहते हैं राजा कृपाल देव के काल में हुआ। जसरोटा के महलों का यह दूसरा भाग है।

महलों के इस भाग के बाद महलों के तीसरे भाग की श्रृंखला आरम्भ होती है। इस भाग में प्रवेशार्थ जो भव्य एवं ऊँचा सिंहद्वार बना है, वह दर्शनीय है। इस के दोनों ओर कलात्मक पीठासन बने हैं, जो आकर्षक लगते हैं। सिंहद्वार का शीर्ष-वास्तु कला की दृष्टि से कलात्मक है। इस के ऊपर श्वेत रंग के चूने का जो बज्रालेप हुआ है, वह पुख्ता है। यह द्वार अनुमानत: दस मीटर ऊँचा और तीन मीटर चौड़ा है। इस द्वार के दोनों ओर ऊंची प्राकार हैं। सिंहद्वार से एक खुला पथ राज महल की ओर जाता है।

जसरोटा के क़िला नुमां महलों का यह भाग स्थापत्य की दृष्टि से दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहले वर्ग में प्रस्तर शिलाओं से निर्मित महलों का वह भाग है जो पहाड़ी शैली में निर्मित है। महल का यह भाग चारों ओर से सुदृढ़ पाषाण-शिलाओं की प्राचीर से घिरा हुआ है। महल के इस भाग में

कई प्रभाग हैं और प्रत्येक प्रभाग में दर्जनों की संख्या में कक्ष और कोठरियाँ हैं। इन में तहखाने और बरामदे भी हैं। महल का यह भाग कहते हैं कि जसरोटा के राधा ध्रुवदेव द्वारा निर्मित है। राजा ध्रुवदेव बाहु के राजा कृपाल देव (1660-1875) का समकालीन था।

राज प्रसाद का दूसरा भाग छोटी ईंटों का बना है। इस महल के भी दो भाग हैं। एक भाग पुरुषों के लिए तथा दूसरा महिलाओं के लिए है। महिलाओं का 'रणवास' चारों ओर से लम्बे-लम्बे दालानों और उनके पार्श्व में बनी कोठरियों से युक्त है। इस के मध्य में एक खुला सहन है जिस के चारों ओर आवासीय कोठरियाँ हैं। महल का यह भाग स्थापत्य की दृष्टि से कलात्मक और दर्शनीय है। इस में बने दालानों के स्तम्भ रंगीन बेलबूटों से अलंकृत हैं और इन की दीवारों के ऊपरी भाग में सराहनीय पिचकारी का काम हुआ है। इस महल के भीतर एक पूजाघर भी है जिस का ताख चैत्याकार है। यह महल भी चारों ओर से सुदृढ़ प्राकार से परिसीमित है। यह महल कहते हैं कि जम्मू नरेश राजा रंजीतदेव (1830-1885) के समकालीन जसरोटा के राजा रत्नदेव द्वारा निर्मित है।

जसरोटा के पुराने महल भी अति जीर्ण-शीर्ष अवस्था में खड़े हैं। इन की छतें ढहा दी गई हैं और अब केवल दीवारें ही खड़ी हैं जो बिना वातान और द्वार के ढहती जा रही हैं।

पुराने महल के पार्श्व में उज्झ नदी की ओर प्रस्तर शिलाओं से बना एक विशाल बुर्ज है जिस का प्रयोग निरीक्षण केन्द्र के रूप में किया जाता था। कहते हैं कि इस नगर दुर्ग की चारों दिशाओं में चार बुर्ज थे, जो भूस्खलन आदि के कारण नष्ट हो गए। इन बुर्जों के अब केवल कहीं--कहीं अवशेष ही बचे हैं।

जसरोटा नगर दुर्ग की नींव उपलब्ध जानकारी के अनुसार राजा जसदेव (1020-1053) ने एक वन्य दुर्ग के रूप में इस सुनसान पहाड़ी में तब की

थी जब मुहम्मद गजनवी ने नगरकोट का दुर्ग जीतने के बाद रावी के पार जम्मू क्षेत्र को भी जीतने की योजना बनाई थी। किन्तु सौभाग्य से मुहम्मद गजनबी के पुत्र के नेतृत्व में जो सैनिक दल रावी को पार करके आया था, वह पराजित होकर लौट गया और डुग्गर का यह भू भाग आततायियों की लूटमार से बच गया। राजा जसदेव ने मुहम्मद गजनबी के लौट जाने के बाद अपनी राजधानी नहीं बदली और यह नव निर्मित दुर्ग अपने भाई कर्णदेव को जागीर के रूप में दे दिया। कर्णदेव ने रावी नदी से लेकर बसन्तर नदी के ऊपरी भाग तक अपने राज्य का विस्तार करके जसरोटा राज्य की स्थापना की। कर्णदेव के वंशज जसरोटा में रहने के कारण जसरोटिया कहलाए। कर्णदेव के बाद वीर देव, राय कालू, एमलदेव, बोलादेव, कैलाशदेव, प्रतापदेव, जगतरावदेव, अतरदेव, सुलतानदेव, संगतदेव और दौलतदेव जसरोटा के शासक बने। यह शासक कभी जम्मू नरेश के तो कभी दिल्ली के सुलतान की अधीनता में रहे। किन्तु दौलतदेव के उत्तराधिकारी राजा विभुदेव ने मुगल सम्राट अकबर के विरुद्ध अन्य आठ पहाड़ी राजाओं के साथ मिल कर विद्रोह किया। सन् 1599 ई० में डुग्गर के पहाड़ी राजाओं के विद्रोह का दमन करती हुई मुगल सेना शेख-फरीद तथा हुसैन बेग के नेतृत्व में जब जसरोटा की ओर बढ़ी तो जसरोटा के शासक विभुदेव ने पहाड़ी राजाओं से सैन्य सहायता प्राप्त करके मुगल सेना से टक्कर ली। मुगलसेना येन केन प्रकारेण जसरोटा तक पहुँचने में सफल हो गई। इस सेना ने जसरोटा के नगर दुर्ग पर ज़ोरदार आक्रमण किया किन्तु जसरोटा की सेना ने मुगल-सेना को आगे बढ़ने से रोका और उस पर प्रत्याक्रमण किया जिस से मुगल सेना को भी काफी क्षति पहुँची। मुगल-सेना के पास पर्याप्त साधन थे, उस ने हानि उठा कर भी जसरोटा के दुर्ग की खाई को भर किले की दीवार को बारूद की सहायता से उड़ा दिया। इस के बाद दोनों सेनाओं के मध्य घमासान लड़ाई हुई जिन में दोनों ओर से कई सैनिक हताहत हुए। मुगल सेना ने जसरोटा के भीतर प्रवेश करके इस नगर को अपूर्वक्षति पहुँचाई। 'अकबर नामा' के अनुसार जसरोटा के किले का मार्ग चौड़ा था। उस के मध्य से घोड़ा गुजर सकता था। दोनों ओर से तीरों तथा

गोलियों की वर्षा होती रही। किन्तु परिणाम कुछ न निकला। रात को मुगल सेना ने लड़ाई बन्द कर दी किन्तु जसरोटा के सैनिक सारी रात तीर और गोलियों की बारिश बरसाते रहे जिस से मुगल सेना को बहुत हानि पहुँची।

प्रातः मुगल सेना को और कुमुक पहुँच गई तथा वह जसरोटा पर अधिकार करने में सफल रही। जसरोटा के राजा ने पराजित होने के बाद मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। मुगलों ने जसरोटा का परगना मुहम्मद खान तुर्क-मान के अधीन कर दिया। इस से जसरोटा की स्वायतत्ता समाप्त हो गई।

राजा विभुदेव के बाद इस राज्य के शासक भोज देव, फतेह देव, शिवदेव, जगदेव, सुखदेव और ध्रुवदेव बने। ये शासन मुगलों के अधीन थे। मुगल दरबार ने फतेहदेव को फतहखान की उपाधि से सम्मानित किया। उसके वंशज भी इस उपाधि का प्रयोग करते रहे। राजा ध्रुवदेव बाहु के राजा कृपाल देव (1660-75) का समकालीन था। जसरोटा को नया रूप उसी ने दिया। वर्तमान जसरोटा नगर-दुर्ग का निर्माता उसे ही माना जाता है। उससे पूर्व जसरोटा नगर दुर्ग देवी मंदिर की पहाड़ी पर स्थित बताया जाता है।

ध्रुवदेव के बाद कीर्तिदेव और उसके पश्चात् रत्नदेव जसरोटा का शासक बना। रत्नदेव जम्मू नरेश महाराजा रंजीत देव (1730-80) का समकालीन था। वह एक वीर-योद्धा तथा रणबांकुरा था। उसने कई लड़ाईयाँ लड़ीं और विजय ध्वज फहराया।

रत्नदेव के बाद भागसिंह, अजायवदेव और लाल देव जसरोटा के शासक बने। इन के समय में पंजाब में सिक्ख मिसलों का प्रभाव बढ़ा। सन् 1808 ई० में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह खालसा सेना लेकर जसरोटा आया। उसने अजायवदेव के देहावसान के बाद उसके पुत्र लालदेव से एक लाख रुपये उपहार में लेकर उसे अपने अधीन जसरोटा का राजा मान लिया। सन् 1836 ई० में पंजाब के महाराजा ने राजा लालदेव के पुत्र राजा भूरीसिंह की गद्दी से उतार कर जसरोटा की जागीर हीरा सिंह को प्रदान की।

राजा हीरासिंह की मृत्यु के बाद 23 जनवरी 1845 को अनियंत्रित सिक्ख सेना ने जसरोटा के किले पर धावा बोला। महाराजा गुलाबसिंह के आदेश पर राजा हीरासिंह के भाई राजा जवाहर सिंह ने किले के दरवाज़े को खोल दिया। खालसा सेना ने जसरोटा के खज़ाने में अढ़ाई लाख रुपये की अल्प राशि पाई तो सेना निराश और हताश होकर निरीह नागरिकों के घरों में लूट-मार करने लगी। खालसा सेना ने कंई नागरिकों को हताहत किया और उनके घरों में आग लगा कर उन्हें फूंक डाला। आतंकित नागरिक नगर छोड़ कर भाग गए और इस प्रकार यह नगर दुर्ग वीरान हो गया।

जम्मू व कश्मीर नरेश रणवीर सिंह ने इस उजड़े नगर को पुनः बसाने के लिए इसे जिला केन्द्र बनाया और दुर्ग के महलों की मुरम्मत कर के उन में कई कार्यालय खोले किन्तु महाराजा प्रतापसिंह (1885-1926) के शासनकाल में जसरोटा के स्थान पर कठुआ को जिला केन्द्र बनाया गया। इसके बाद यह नगर उजड़ने लगा और 1947 के बाद यह पूर्ण रूपेण उजड़ गया। खंडहरों में परिवर्तित यह दुर्ग नगर अब वीरानगी के दृश्य प्रस्तुत करता है।



संदर्भ

1. डुग्गर का इतिहास पृष्ठ 163-169
2. अकबरनामा
3. तारीख डोगरा देश
4. ए शार्ट हिस्टरी आफ जम्मू किंगडम

जसमेर गढ़ का किला

डुग्गर के प्रतिरक्षात्मक दुर्गों में जसमेर गढ़ का दुर्ग शिल्पकला एवं सुदृढ़ता की दृष्टि से बेजोड़ समझा जाता है। यह दुर्ग चारों ओर से छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा है। इन पहाड़ियों पर उगी वनस्पति और ऊँचे-ऊँचे वृक्ष इसे अपनी ओट में इस प्रकार छुपा लेते हैं कि आक्रमक सेना को निकट आने पर ही इस की उपस्थिति का पता चलता है।

बारह कनाल भूमि में परिव्याप्त इस किले का सन्निवेश वास्तुविधा पर आधारित है। किले के इर्द-गिर्द छोटे-छोटे पहाड़ी टीले और इन पर उगी झाड़ियाँ एक प्रकार से प्राकृतिक वप्र हैं। यह वप्र विशाल हैं और इन की परिगणना उर्ध्वचय के अन्तर्गत की जा सकती है। किले के इर्द-गिर्द चतुर्दिक परिखा की बात तो कही जाती है किन्तु लगता है बाद में इस की भराई कर दी गई जिससे परिखा के निशान मिट गए। टीले के ऊपर यहाँ किला बना है एक मोटी प्राकार है जो सुदृढ़ता के कारण आज भी अपने मूलरूप में खड़ी है। प्राकार में अनाच्छदित बुर्ज हैं जो आकार में गोल हैं। प्राकार और बुर्जों की दीवारों में छिद्र और मारक निशान हैं।

दुर्ग का विशालकाय दरवाजा पूर्वोन्मुख है और उस की ऊँचाई अनुमानतः आठ मीटर है। इस के दायें बायें शिला खंडों की चिनाई इस लिए की गई है ताकि शत्रु प्रवेशद्वार की दीवार को तोड़ कर भीतर प्रवेश न कर सके।

दुर्ग के भीतर उत्तर और पश्चिम में कई निवास कोठरियों के पुरावशेष बिखरे हैं। इन पुरावेशों के अवलोकन से लगता है कि इन का निर्माण सैनिकों के आवास के लिए किया गया है।

किले के भीतर उत्तर पूर्वी कोण में महाकाली का शिखर मंदिर है जिस

के गर्भगृह में देवी की मूर्ति स्थापित है। यह मूर्ति काले पत्थर की है और अठारह उंगली ऊँची है। इस में देवी को चतुर्भुजी के रूप में अंकित किया है। महाकाली के मंदिर का समय-समय पर उद्धार किया गया लगता है।

जनश्रुतियों के अनुशीलन से पता चलता है कि मुगल शैली में बना यह किला जसरोटा के राजाओं की अठारहवीं शताब्दी की निर्मिति है। सन् 1812 ई० के बाद इस किले पर खालसा सेना ने इतने जोरदार हमले किए जिससे किले बन्दी टूट गई और सीमावर्ती यह किला लाहौर दरबार के अधिकार में आ गया। खालसा सैनिकों ने किले पर अधिकार करने के बाद जसमेर गढ़ बस्ती में भी लूट मार की जिस का परिणाम यह निकला कि इस बस्ती के लोग अपने घरों से भाग कर निकटस्थ जंगलों में घुस गए।

सन् 1836 ई० में जसरोटा की जागीर जब लाहौर दरबार की ओर से राजा ध्यानसिंह के बड़े पुत्र हीरासिंह को प्रदान की गई तो राजा हीरासिंह ने इस टूटे-फूटे किले का उद्धार करवाया और इस किले के पूर्व में दो किलो मीटर की दूरी पर अपने नाम पर हीरानगर गाँव (अनुमानतः सन् 1840 ई०) बसाया और जसमेर गढ़ से भाग गए लोगों को सुरक्षा का वचन देकर वापिस बुला कर इस नगर में आबाद किया।

सन् 1947 ई० से पूर्व तहसील हीरा नगर की कचहैरी और कोषागार इसी किले में थे। किन्तु बाद में ये कार्यालय हीरा नगर में स्थानान्तरित किए गए। इससे यह धराशायी होने लगे। अब इस किले के अन्दर सरकार द्वारा बनवाई गई नई जेल है।

इस किले के अवशेषों को देखकर इस के भव्य स्थापत्य का अनुमान लगाया जा सकता है।



---

1. डा. सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार इस किले का निर्माण जसरोटा के राजा लालदेव (सन् 1814-1830) ने करवाया।
2. गुरुदत्त शर्मा के अनुसार लोक परम्परा इस किले का निर्माता अलीखान नामक एक पठान सरदार को मानती है।
3. लोकश्रुति है कि जसरोटा के सामंत जसमेर देव ने यह किला बनवाया।

लखनपुर का किला

जम्मू से 85 किलोमीटर पूर्व में स्थित लखनपुर एक ऐतिहासिक स्थान है। रावी नदी के पश्चिमी तट पर बसा लखनपुर रियासत जम्मू कश्मीर का प्रवेश द्वार कहलाता है। जम्मू-पठानकोट राष्ट्रीय राजपथ का यह एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

गणेश दास बटैहड़ा लिखित 'राज दर्शनी' के अनुसार लखनपुर की नींव लक्ष्मण चन्द ने रखी। तारीख डोगरा देश के अनुसार जसरोटा के शासक कैलाश देव के देहावसान के बाद उस का ज्येष्ठ पुत्र प्रतापदेव जसरोटा का शासक बना तो उसने अपने छोटे भाई संग्राग देव को रावी से उज्झ नदी तक का क्षेत्र जागीर के रूप में प्रदान किया । राजा संग्राम देव ने लखनपुर को अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसने अपनी राजधानी की सुरक्षा के लिए दुर्ग और महल बनवाए। राजा संग्रामदेव के वंशज लखनपुरिये कहलाए।

लखनपुर का उल्लेख अकबर नामा में भी मिलता है। इस पुस्तक के अनुसार 1594 ई० में जिन आठ पहाड़ी राजाओं ने मुगल-सम्राट् अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया उन में लखनपुर का राजा भी एक था। मुगल सेना ने जब जसरोटा से लखनपुर की ओर प्रस्थान किया तो लखनपुर के राजा ने मुगल सेना का सामना करने की अपेक्षा आत्म समर्पण करके अपने राज्य को विनाश से बचा लिया।

लखनपुर दुर्ग पर रावी नदी के पार फैले नूरपुर के शासकों ने भी कई बार आक्रमण करके इसे अपने अधिकार में लिया सन् 1846 से पूर्व लखनपुर नूरपुर के अधिकार में था। सन् 1846 में अंग्रेज़ों और महाराजा गुलाबसिंह के

मध्य हुई अमृतसर संधि के अन्तर्गत गुलाबसिंह को चम्बा का क्षेत्र मिला। किन्तु बाद में अंग्रेज़ों ने चम्बा के बदले लखनपुर और पंजग्राई का इलाका गुलाबसिंह को सौंप कर उसे तुष्ट किया।

महाराजा गुलाबसिंह ने लखनपुर पर सन् 1846 ई० में अधिकार करने के ब़ाद रावी नदी के पश्चिमी तट पर शिलाखंडों से एक लघु दुर्ग बनवाया, जो ठीक अवस्था में आज भी अपने स्थान पर खड़ा है।

सीमावर्ती इस दुर्ग का निर्माण सीमा पर निरीक्षण रखने के लिए किया गया। पश्चिमोन्मुख यह दुर्ग चार लघु बुर्जों पर आधारित है ये बुर्ज सुदृढ़ प्राचीर के साथ एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

स्थापत्य की दृष्टि से सामान्य कोटि के इस किले के भीतर दो कोठरियाँ और एक छोटा सा बरामदा है। इस के प्रागंण के उत्तरी-भाग में लघु दक्षिणोन्मुख देवी मंदिर है। सन् 1970 ई० में महात्मा पूर्ण गिरि ने इस मंदिर को दत्ता स्वामी को समर्पित करके देवी का मंदिर किले के बाहर एक जलकुंड में बनवाया। यह मंदिर एक छोटे से चबूतरे पर बना है। इस मंदिर के सन्मुख एक गुम्बदाकार शिखर युक्त लघु शिव मंदिर है। इन दोनों मंदिरों के मध्य एक कुआं है जो अब आच्छादित है।

यह किला इस समय आश्रम क्षेत्र में है। अब इस किले का इतना सैन्य महत्त्व नहीं रहा जितना आध्यात्मिक है। इस किले के निकट ही लखनपुरियें राजाओं के पुरावशेष भी मिलते हैं किन्तु समुचित संरक्षण न मिलने के कारण इन के निशान मिटते जा रहे हैं।



थैन का किला

रावी नदी के पश्चिमी तट पर नदी से अनुमानत: एक किलोमीटर ऊँचाई पर थैंन नामक गाँव के पूर्वी टीले पर बना यह एक पत्थर का किला है जिस की दीवारें सुदृढ़ हैं और इन की ऊँचाई कहीं दस मीटर तो कहीं बारह से तेरह मीटर है।

यह किला लखनपुर के उत्तर में अनुमानत: 17 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। पश्चिमोन्मुख इस किले की ड्योढ़ी आकर्षक एवं भव्य है। किले का बहुत बड़ा भाग धराशायी है किन्तु दीवारें अब भी खड़ी हैं। किले के भीतर आवासीय कोठरियों के निशान हैं जिन से पता लगता है कि इस में सैनिक दल तैनात रहता था।

लघु आकार का यह किला सतारहवीं शताब्दी की निर्मिति बताया जाता है। यह एक सीमावर्ती किला है और इस का निर्माण सामरिक दृष्टि से किया गया लगता है।

कहते हैं कि लखनपुर राज्य की 'थैन गाँव' कभी राजधानी रहा, अत: लखनपुर के राजाओं ने सुरक्षा की दृष्टि से इस का निर्माण इस लिए करवाया क्योंकि इसे बार-बार नूरपुर की सेना का सामना करना पड़ता था। एक मत यह भी है कि यह किला बसोहली के राजाओं द्वारा निर्मित है।

तारीख डोगरा देश के अनुसार इस किले के तीन सुदृढ़ प्रवेश द्वार थे। इस के दो तरफ बुर्ज थे और किले के भीतर सैनिक दल रहता था। अब यह किला जीर्ण-शीर्ष अवस्था में खड़ा है।



बसन्तपुर का किला

डुग्गर के इतिहास में रावी नदी के पश्चिमी तट पर निर्मित जिन किलों का विवरण मिलता है उन में पत्थर का बना वसन्तपुर का किला भी है। यह किला लखनपुर-बसोहली सड़क पर बसन्त पुर गाँव में देवी मंदिर के निकट ही निर्मित था। कहते हैं कि इस किले का निर्माण सतारहवीं सदी में नूरपूर के राजाओं ने तब करवाया जब उन्होंने बसन्तपुर का क्षेत्र लखनपुर के राजाओं से लड़ाई में जीता। जनश्रुति है कि देवी का मंदिर भी किले के भीतर था। अब यह किला पुरी तरह नष्ट है और इस के अवशेष भी उपलब्ध नहीं हैं।

जनश्रुति है कि नूरपुर के शासक अधिक समय तक इस दुर्ग को अपने अधिकार में न रख सके। लखनपुरियों ने संगठित होकर नूरपुरियों से न केवल यह किला ही छीना अपितु इसके निशान भी मिटा दिये। किन्तु देवी का मंदिर आज भी इस किले की मौजूदगी की गवाही देता है। कहते हैं कि यह किला कच्चा था किन्तु इस की दीवारों में पत्थर का उपयोग हुआ था।

इतिहासकार नृसिंह दास नरगिस के अनुसार बसन्तपुर का किला लखनपुर से पाँच मील उत्तर में और बसोहली से 12 मील पूर्व में स्थित था। यह एक सीमावर्ती दुर्ग था और इसका निर्माण लखनपुरिया शासकों ने करवाया था। यह ऊंचे टीला पर निर्मित था किन्तु अब इसके पुरावशेष दृष्टव्य नहीं हैं।



कुमरी कठेरा का किला

कठुआ जनपद में लगेट से 13 किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी शिखर पर बना यह किला लघु आकार में है। पत्थर और ईंटों से बने इस किले का स्थापत्य पहाड़ी स्थापत्य का नमूना लगता है। यह एक ऐसा किला है जो बुर्ज हीन है।

इस किले का निर्माण मरोली के जागीरदार मेहताबसिंह ने उन्नीसवीं सदी के पहले चरण में करवाया। राजा मेहताबसिंह पंजाब के महाराजा रंजीतसिंह का समकालीन था। राजा हीरासिंह के सलाहकार जल्लापंत ने मेहताबसिंह के विद्रोह का दमन करने के बाद उस की जागीर का विलय जसरोटा से किया।

कुमरी कठेरा स्थान में बना यह किला मेहताबसिंह के देहावसान के बाद जीर्ण-शीर्ण अवस्था में कई दशकों तक खड़ा रहा किन्तु अन्ततः यह ढह गया और अब इस के अवशेष भी दृष्टव्य नहीं हैं।

मेहताबसिंह द्वारा निर्मित एक अन्य महलनुमां किले के अवशेष कठुआ से अनुमानतः सात किलोमीटर दूरी पर स्थित मेहताबपुर गाँव में बिखरे पड़े हैं। जनश्रुति है कि मेहताबसिंह ने इस किले की नींव रखते समय बालक थोलू की बलि दी थी। इस किले की भग्न और जर्जरित दीवारें आज भी मेहताबसिंह की क्रूरता और निर्दयता की कहानी सुनाती हैं।



---

1. डोगरी कवि रोमालसिंह भडवाल के अनुसार कुमरी कठेरा का यह किला कठुआ के जमलोटिया वंश का है।
2. डोगरी लेखक हरदेवसिंह बन्दराल के मतानुसार राजा मेहतावसिंह मियां डीडो का मुसेरा भाई था।

बसोहली का किला

डुग्गर की कला नगरी बसोहली में निर्मित शिला-खण्डों से बना यह लघु किला बसोहली के ऐतिहासिक और पहाड़ों का अजूबा कहे जाने वाले राज महलों के निकट अवस्थित है। इस किले को स्थानीय लोग पुराना किला या पुराना महल भी कहते हैं। कहा जाता है कि बसोहली के राजा अमृतपाल (1775-1776) से पहले बसोहली के राजा इसी किला नुमां महल में रहते थे। राजा अमृत पाल और उसके भतीजे महेन्द्रपाल (1806-1816) के शासन काल में बसोहली के भव्य और कलात्मक महल बन कर तैयार हो गए तो बसोहली के राजा इस किले को खाली करके नए महलों में चले गए जो तीन भागों यथा दरबार-हाल, शीश महल और रंग महल पर आधारित थे।

पत्थर की ईंटों की प्राचीर से परिवेष्टित यह किला कस्बा के निकट एक रेतीले टीले पर बना था। भूविन्यास की दृष्टि से यह वर्गाकार था और अनुमानत: बीस कनाल में परिव्याप्त था। इस के प्रत्येक कोण में ऊँचे-ऊँचे बुर्ज थे जिन से शत्रु सेना पर दृष्टि रखी जा सकती थी।

'ए गजट आफ कश्मीर' के संकलन कर्ता विट्स ने सन् 1870 के लगभग जब इस किले को देखा तब यह किला जीर्णावस्था में खड़ा था। इस किले की दीवारें अनुमानत: 24 मीटर (75 फुट के करीब) ऊँची थी। उस समय इस किले में न तो कोई सैनिक दल तैनात था और न ही इस के भीतर कोई शस्त्रागार था।

राजा भूपिन्द्र पाल के शासनकाल (1813-1834) में जब खालसा सेना ने बसोहली पर बार-बार आक्रमण किए जो यह जीर्ण-शीर्ण किला उन हमलों

का शिकार बना। राजा कल्याण पाल (1834-1857) के समय में जब यह किला जम्मू के राजा गुलाबसिंह और उसके भाई राजा सुचेतसिंह के अधिकार में आया, तो यह जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था।

महाराजा रणवीर सिंह (1856-1885) के शासनकाल में इस किले के भीतर कोषालय स्थापित किया गया। महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल (1885-1925) में इस की जर्जरित दीवारें खड़ी थीं किन्तु महाराजा हरि सिंह के शासन काल (1926-48) में इस की दीवारें ढह गईं और यह किला खंडहरों में बदल गया।

जनश्रुतियों के अनुसार इस लघु किले की नींव बसोहली के राजा भूपतपाल (1598-1623) ने रखी और उसके वंशज राजा संग्रामपाल (1634-1673 ई०) और राजा हिन्द पाल ने इस का विकास किया। राजा कृपाल पाल (1678-1793) के शासनकाल में यह किला आवासीय दुर्ग था।

इस किले ने बसोहली के इतिहास में कई उतार और चढ़ाव देखे। आज भी यह किला बसोहली के राजाओं की स्वर्णिम स्मृतियों को अपने वक्ष में संजोये कभी भी न टूटने वाली नींद में सोया हुआ है।



टिप्पणियां– 'तारीख डोगरा देश' में उल्लिखित है कि इस किला को 'किला गढ़ी' कहा जाता था। यह बसोहली के ठीक मध्य में बनाया गया था। किसी समय वहां एक झील भी थी जो शायद इस किले को प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करती था। ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णित है कि इस किले के अन्दर कई तहखाने थे जिनमें विद्रोहियों को कैद रखा जाता था।

देवी कीला का किला

डुग्गर के सुदृढ़ किलों में एक किला देवी कीला का किला भी है जो डुग्गर के ऐतिहासिक स्मारकों में परिगणित किया जा सकता है। यह किला बसोहली से एक किलोमीटर की दूरी पर पूर्वोतर में अवस्थित है। किले तक जाने के लिए बसोहली गेस्ट हाऊस से एक पगडंडी जाती है जो उतराई और चढ़ाई के कारण चलने में सहज नहीं है।

लघु-आकार में बना यह किला एक ऐसे स्थान पर स्थित है जिस के पूर्व में रावी नदी प्रवाहित है और इस के उत्तर में ऊँचा-खड़ा पहाड़ है जिसे फांद कर किले तक पहुँचना सरल नहीं।

उत्तरोन्मुख इस किले की ड्योढ़ी प्रस्तर-खडों की है और उस की शिलाओं पर हल्का तक्षण कार्य हुआ है। अनुमानतः बारह मीटर ऊँची पत्थरों की दीवार से घिरा यह किला स्थापत्य की दृष्टि से पहाड़ी और मुगल शैली का मिश्रित रूप लगता है।

किले में निवास-कक्षों के अतिरिक्त बसोहली राजवंश की कुलदेवी का एक मंदिर है जिस का उद्धार और विकास समय-समय पर किया जाता रहा है।

सन् 1870 ई० के लगभग महाराणा रणवीर सिंह के शासनकाल में यह किला जीवंत था और इस में पच्चास सैनिक रहते थे। बसोहली कस्बा की सुरक्षा के लिए इस किले में तीन तोपें ऊँचे स्थान पर रखी गई थीं।

महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल (1885-26) तक यह किला पूर्व स्थिति में रहा किन्तु महाराजा हरिसिंह (1926-48) के शासनकाल में उनके

मंत्री बैक फिल्ड ने डुग्गर के किलों को जब तुड़वाना आरम्भ किया तो यह किला भी उपेक्षा का शिकार हुआ और धीरे-धीरे गिरता गया। आज यह नष्ट प्राय: स्थिति में जर्जरित दीवारों के कारण ढह रहा है।

अब इस किले का महत्त्व केवल इसलिए बचा है क्योंकि इस के भीतर स्थानीय लोगों की आस्था का प्रतीक देवी चैंचलों का मंदिर है।

कहते हैं कि इस किले का निर्माण बसोहली के राजाओं ने चम्बा तथा नूरपुर के राजाओं के नित नए आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए करवाया।

लोकश्रुति के अनुसार बसोहली के राजा संग्राम पाल (1635-1673) के शासन काल में चम्बा और नूरपुर के राजाओं के साथ युद्ध ही छिड़ा रहा और बसोहली की सेना ने बाईस लड़ाइयों में भाग लिया। ऐसी विकट स्थिति में राजा संग्राम पाल ने वनों के घिरे देवी कीला के स्थान पर इस किले का निर्माण करवाया।

वास्तुकला की दृष्टि से पहाड़ी और मुगल शैली के मिश्रित रूप में बना यह दुर्ग अब आखरी साँसें लेता प्रतीत होता है। डुग्गर की विरासत का बचा खुचा यह निशान मिटता दिखाई देता है।



---

1. नृसिंहदास नरगिस ने अपनी पुस्तक तारीख डोगरा देश में इस किले को 'किला चैंचलो' नाम से शायद इस लिए अभिहित किया कि यह किला बसोहली के राजाओं ने अपनी कुलदेवी चैंचलो को समर्पित किया था।

बिलावर का किला

बिलावर के इतिहास और पुरावशेषों का अनुशीलन करने से यह सुस्पष्ट होता है कि इस ऐतिहासिक नगर की संरचना दुर्ग नगर के रूप में की गई है। इस नगर के पश्चिम और दक्षिण में प्रवाहित 'नाज' नदी एक प्रकार से इस की प्राकृतिक परिखा है जो इसे सामरिक दृष्टि से सुरक्षा प्रदान करती है। इस के पूर्व और उत्तर में खड़े गगन चुम्बी पहाड़ इस के प्रहरी जैसे दिखाई देते हैं।

इस दुर्ग नगर में प्रवेशार्थ जो मुख्य द्वार है वह दक्षिणोन्मुख है और इसे 'सी-परोल' नाम से अभिहित किया जाता है। परोल राजस्थानी शब्द है जिस का अर्थ किले का प्रवेशद्वार है। डोगरी में ड्योढ़ी को परोल कहा जाता है। अत: सी परोल विलावर के किले का सिंहद्वार है। यह द्वार प्रस्तर शिलाओं से निर्मित है। इस की ऊँचाई अनुमानत: 5 मीटर और चौड़ाई 2.62 मीटर है। इस की दायीं और बायीं दीवारों में बने तिरछे रन्ध्र इस का प्रमाण है कि यह द्वार किले का ही एक भाग था। इस द्वार के साथ शिलाखंडों से निर्मित एक लम्बी प्राकार थी जिस में थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद बुर्ज थे। इन बुर्जों में एक वर्तमान गेस्ट-हाऊस के निकट और दूसरा पुलिस कार्यालय के पास था। इन भवनों के निर्माण के समय इन बुर्जों को गिराया गया जिस से इस किले के महत्त्व पूर्ण अंग मिट गए। किले का एक चिन्ह बुर्ज के रूप में हस्पताल के निकट भी था जिसे बहुत बाद में गिराया गया।

इस नगर दुर्ग के मध्य में भगवान् हरिहर को समर्पित शिलाखंडों से निर्मित एक भव्य मंदिर है जो एक ऊँची वेदिका पर बना है। पश्चिमोन्मुख

इस मंदिर के आधार की लम्बाई लगभग 19 मीटर और चौड़ाई 13 मीटर है इस का प्रवेशद्वार पश्चिमोन्मुख है जिस की ऊँचाई 3.25 मीटर है। मण्डप चार स्तम्भों पर खड़ा है।

गर्भगृह के मध्य में विशाल शिवलिंग स्थापित है और इस की दीवारों में पौराणिक देवी--देवताओं की दस मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं जो शिल्पकला की दृष्टि से अनुपम हैं। पंचमुख लिंग और चामर धारिणी मूर्तियों में जिस सुधराई से काम किया गया है, वह स्तुत्य है। इन मूर्तियों में सब से आकर्षित मूर्ति हरिहर की है जो तक्षण कला का अनुपम नमूना है।

यह मंदिर अनुमानतः 21 मीटर ऊँचा है और इस का शिखर उभरवां उकेरी अलंकरणों की भव्य सजावट से युक्त है। दसवीं शताब्दी में निर्मित इस मंदिर की परिगणना विश्व दाय स्मारकों में की जाती है।

इस मंदिर के नीचे और ऊपर बिलावर का बाजार है जिस के पार्श्व में कई गलियों और मुहल्लों में बिलावर का नगर बसा है। इस नगर में जो विशाल सरोवर है वह भी प्राचीन लगता है। इस में लगा नागरी का शिलालेख अब लुप्त है।

दुर्ग नगर बिलावर के उत्तर में एक विशाल चौगान है और इस के ऊपर पहाड़ी ढलवान में राज महल है जो 4 कनाल 13 मरले भूमि में परिव्याप्त है। ये महल तीन भागों में विभाजित हैं पहले भाग में ड्योढ़ी प्रस्तर शिलाओं की बनी है। यह ऊपर से गोलाकार है और इस की ऊँचाई 2.15 मीटर है। महल के भीतरी भाग में कई निवास कक्ष, बरामदे और प्रहरियाँ तथा कर्मचारियों के लिए कक्ष बने हैं। इस दुमंजिले महल का वास्तु शिल्प अनुपम है। इस के वितान विस्तृत हैं और कक्षों के भीतर ताख भी बने हैं। इस महल के साथ ही दूसरा महल है जो बड़े महल से आकार में छोटा है। महल में पत्थर की ईंटों के अतिरिक्त मिट्टी की छोटी ईंटों का प्रयोग भी हुआ है। इस का भीतरी रूप राजस्थानी शैली में और बाह्य भाग मुगल शैली से प्रभावित

लगता है। इन महलों तथा सी परोल का निर्माण कहते हैं कि बिलावर के राजा कृष्णपाल ने सन् 1622 ई० में राजगद्दी पर बैठने के बाद करवाया।

नगरदुर्ग के अवशेष के रूप में अब केवल सी परोल, बिलावर के राजाओं के महलों के खंडहर और जीर्ण-शीर्ण हरि मंदिर ही दृष्टव्य है। शेष सब कुछ धीरे-धीरे तब मिटा जब बिलावर के राजाओं ने बिलावर के स्थान पर बसोहली को अपनी राजधानी बनाया।



---

1. जम्मू के पूर्वोत्तर में 120 कि.मी. की दूरी पर बसा बिलावर डुग्गर का प्राचीनतम नगर है। यह नगर कठुआ के उत्तर में 80 कि. मी. और बसोहली के पश्चिम में 60 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

   कहते हैं कि छठी सदी में 'बिल्लू' नामक किसी राणा ने इस नगर की स्थापना की। राजतरंगिणी मे बिलावर को 'बल्लपुर' नाम से वर्णित किया गया है। इस ग्रंथ में इस नगर का उल्लेख कश्मीर के राजा अनन्त (1028-63) के सन्दर्भ में हुआ है। राजा अनन्त के समय में बल्लपुर का शासक कलश था। सुस्सल (1112-1120) के समय में पदमक नामक राजा यहाँ राज्य करता था। इसी ग्रंथ में बल्लपुर की राजकुमारी (जज्जला) राजकुमार अनन्त कुमार तथा ब्रह्मजल का उल्लेख भी हुआ है। इतिहासकार अल्बरूनी (1017-1031 ई०) ने भी अपने यात्रावृत्त में इस नगर का उल्लेख किया है और लिखा है कि कन्नौज से कश्मीर को एक मार्ग बलौर से भी जाता है। सन् 1630 ई० में जब बसोहली बसा तो बिलावर के राजा बसोहली चले गये जिससे इस नगर की भव्यता को क्षति पहुँची।

   बिलावर में की गई खुदाई से लगता है कि वर्तमान बिलावर पुराने बल्लपुर के ढेर के ऊपर बसा है। इस नगर की जब भी खुदाई की जाएगी इसके नीचे से पुरातात्विक महत्त्व की वस्तुएँ मिलने की आशा है।

   बल्लपुर ने कई आक्रान्ताओं के प्रहार भी सहे हैं। जिससे यह नगर दुर्ग और मंदिर क्षतिग्रस्त हुआ।

भड्डू का किला

विलावर से आठ किलोमीटर दक्षिण में स्थित भड्डू का किला एक किला नुमा महल था जो एक पहाड़ी पर भड्डू गाँव के पूर्वोत्तर में स्थित था।

इस किलानुमां महल तक जाने के लिए फैंतर से सीढ़ी नुमां पगडंडी जाती है जो प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित है। सीधी खड़ी और बीच-बीच में टेढ़ी-टेढ़ी इस पगडंडी की लम्बाई अनुमानतः तीन किलो मीटर है। पहाड़ी से कुछ नीचे जहाँ भड्डू किले का क्षेत्र आरम्भ होता है, पूर्वोन्मुख एक डयोढ़ी थी जो शिला खंडों से बनी थी। आज इस ड्योढ़ी की नीवें ही शेष है, पूरी ड्योढ़ी ढह गई है।

मुख्य ड्योढ़ी से दो-सौ मीटर ऊपर एक समतल मैदान में किला-आकार में एक महल था जिसकी सुदृढ़ प्राकार शिला खंडों से बनी थी। दक्षिणोन्मुख इस किले की ड्योढ़ी धनुषाकार थी और देखने में भव्य थी।

ड्योढ़ी के अन्दर एक और ड्योढ़ी थी जिस से गुज़र कर इस किले के महल में प्रवेश पाना पड़ता था। महल के मध्य में एक खुला प्रांगण था और उसके चारों ओर कोठरियाँ, निवास कक्ष आदि थे स्थापत्य की दृष्टि से ये पहाड़ी और मुगल शैली का मिश्रित रूप लगते थे।

इस किला नुमा महल का निर्माण सामरिक दृष्टि से किया गया था। महल के पूर्वी भाग में गहरी घाटी बनाती भीनी नदी प्रवाह मान है और दक्षिण में कालीधार की ऊँची पहाड़ी है जो इसे सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम थी। इस के पश्चिम और उत्तर में जिस तरह की ढलवां पहाड़ी थी उससे शत्रु का इस किले तक पहुँचना सरल नहीं था।

सन् 1825 ई० तक यह किला नुमां महल सही अवस्था में था। किन्तु पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह की सेना भड्डू के किले पर अधिकार करने के लिए जैसे ही इस किले की ओर बढ़ी राजा अवतार सिंह अपने मुट्ठी भर सैनिकों को अपने साथ लेकर खालसा सेना पर टूट पड़ा। उसने रण भूमि में शौर्य और वीरता का प्रदर्शन किया किन्तु अन्ततः विशाल खालसा सेना का वह सामना न कर सका और पराजित हुआ। गुलाबसिंह ने अवतार सिंह को भड्डू से निष्कासित करके इस किला पर अधिकार कर लिया।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपने शासन काल में भड्डू के इस उजड़े हुए किले में जिला कार्यालय खुलवाया किन्तु बाद में एक दूसरे आदेश में उन्होंने इस कार्यालय को जसरोटा के महलों में स्थानान्तरित किया। इसके बाद यहाँ तहसील कार्यालय खुला जो बाद में बन्द कर दिया गया।

महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में इस किले में सरकारी स्कूल खुला। बाद में शिक्षा-विभाग ने विद्यार्थियों के पठन-पाठन की आवश्यकता को दृष्टि में रख कर इस महल में तोड़-फोड़ की और कई नए कक्षों का निर्माण करवाया।

सन् 1980 के बाद भड्डू में भूचाल आया जिस की लपेट में यह किला भी आ गया और इस की दीवारों में दरारें आईं जिस से यह ढह गया।

डुग्गर की सदियों पुरानी इस विरासत का अन्त जिस ढंग से हुआ, वह सचमुच वेदनाजन्य था।

---

1. भड्डू राज्य की स्थापना ग्यारहवीं शताब्दी में बिलावर के राजा तुंगपाल के भाई तोषपाल ने की। यह राज्य 36 गाँवों पर आधारित था। इस राज्यवंश के लोग भड्डू में रहने के कारण भडवाल कहलाये। भडवाल राजाओं ने सन् 1041 ई० से लेकर 1825 ई० तक राज्य किया। अकबर के शासनकाल में डुग्गर के जिन राजाओं ने विद्रोह किया उनमें भड्डू का राजा रायकृष्ण भी शामिल था। अकबर नामा में इस राजा का नाम रायकृष्ण भड्डूर वालिया वर्णित है। इस वंश का राजा पृथ्वीपाल (1756) जम्मू नरेश रणजीत देव का दामाद था। कवि देवदत्त जिसे 'दतु' भी कहते हैं उस का दरबारी कवि था। दतु को

डोगरी का आदि कवि माना जाता है।

भड्डू के राजाओं के समय के जो स्मारक इस गांव में दृष्टव्य हैं उनमें कुलदेवी नागरू का मंदिर, शिवमंदिर तथा सरोवर आदि उल्लेखनीय हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. हिस्टरी एंड कल्चर आफ हिमालियन स्टेट भाग-6
2. अकबर नामा
3. फोर्ट एंड पैलेसिज़ आफ दी वेस्टर्न हिमालिया।
4. डुग्गर का इतिहास



सुन्दरी कोट का किला

जिला कठुआ के अन्तर्गत तहसील विलावर के कालीधार पहाड़ के शिखर के नीचे पहाड़ी ढलवान में निर्मित इस किले की परिगणना चट्टानी किले के अन्तर्गत की जा सकती है। यह दुर्जेय किला विलावर के दक्षिण में भीनी नदी के पश्चिम में हाथी की सूंड जैसी पहाड़ी पर स्थित है। किले तक पहुँचने के लिए भड्डु गाँव से भी एक मार्ग जाता है। भड्डु से यह शैल दुर्ग आठ किलो-मीटर दूर है। कालीधार पहाड़ी पर किले तक जाने के लिए सर्पिल आकार का जो मार्ग बना है उसके दोनों ओर छायादार चीड़ के वृक्ष और काँटेदार झाड़ियाँ हैं। पहाड़ी शिखर के दक्षिण में जो ढलान है, वहीं सुन्दरी कोट गाँव बसा है। इसी गाँव में प्राकृतिक झरने से लगभग दो-सौ मीटर की दूरी पर एक ऊँची और गोलाकार चट्टान पर यह किला स्थित है।

किले तक जाने के लिए चट्टान को काट-काट कर केवल पाँव धरने के लिए संकीर्ण-रास्ता बना था जो अनुमानतः आठ मीटर लम्बा था। चट्टान के ऊपर पहाड़ी शैली में यह किला निर्मित है।

शिखर पर चट्टान की परिधि लगभग तीन सौ मीटर है। इस परिधि को घेरे में लेने के लिए शिला-खंडों की एक सुदृढ़ प्राचीर बनी है जिस की ऊँचाई कहीं डेढ़ मीटर तो कहीं दो मीटर या उससे भी अधिक है। शिलाखंडों की चिनाई में चूना-सुर्खी का प्रयोग हुआ है।

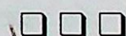
किले के भीतर चट्टान को काट कर एक छोटा सा जलाशय बना है जिस में वर्षा का पानी संकलित रहता है। इसी जलाशय की अट्टारिका के एक सिरे पर एक आवासीय कोठरी है जो स्थापत्य की दृष्टि से महत्त्वहीन है।

जलाशय के उत्तर में किले की अधिष्ठात्री देवी बाला सुन्दरी का वास्तुकला की दृष्टि से उत्कृष्ट मंदिर है जिस की निचली दीवारों में उच्चकोटि का तक्षण-कार्य हुआ है। मन्दिर के गर्भगृह में देवी एक पिण्डी के रूप में विराजमान है। देवी की पिण्डी के ऊपर चढ़े छत्र में शारदा में लिखित एक अभिलेख था, किन्तु अब वह छत्र मंदिर से हटा लिया गया है। इस से सम्बंधित साक्ष्य अब उपलब्ध नहीं, अतः यह बताना कठिन है कि यह शैलदुर्ग किस की निर्मिति है। वैसे लोकपरम्परा इसे भडवाल राजाओं की रचना मानती है। जनश्रुतियों के अनुसार भडवाल राजाओं ने इस का निर्माण आपदकाल में शरण स्थली के रूप में किया।

इस किले से सम्बन्धित एक अन्य मत यह है कि इस का निर्माण सीमावर्ती किले के रूप में किया गया। भड्डु राज्य की सीमाएँ लखनपुर और जसरोटा राज्य की सीमाओं से दुर्ग के निकट मिलती थी, अतः सीमा पर चौकसी बढ़ाने के उद्देश्य से इसे बनाया गया।

इस किले की दीवारों की चिनाई से लगता है कि यह किला चार सौ वर्ष के करीब पुराना है।

अब इस किले का महत्व देवी बाला सुन्दरी मंदिर के कारण ही बचा है। नवरात्रों में हजारों की संख्या में श्रद्धालु देवी के दर्शन करने जब सुन्दरी कोट जाते हैं तो इस भग्न-किले का अवलोकन भी करते हैं।



किले के ऊपर जाने के लिए अब जो नया पथ बना है वह सुविधाजन्य और सुरक्षित है। मंदिर के विकास के साथ-साथ दुर्ग परिसर का विकास भी हो रहा है जिससे इसके अवशेष सुरक्षित हैं।

कोह्ग (मांडली का किला)

शिवालिक की भीतरी पहाड़ियों में उज्झ नदी के पूर्वी तट पर कोह्ग गाँव में एक ऊँचें टीले पर शिलाखंडों से निर्मित यह लघु दुर्ग बन्दरालता के राजाओं की निर्मिति है। यह दुर्ग विलावर के पश्चिम में बीस किलोमीटर दूरी पर स्थित है। किले तक पहुँचने के लिए धार–उधमपुर राष्ट्रीय राजपथ में स्थित मांडली से सड़क जाती है। मांडली के उत्तर में यह ऐतिहासिक गाँव केवल सात किलोमीटर दूर है।

चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा, प्राकृतिक सम्पदा से समृद्ध यह गाँव प्राचीन काल में राणा शासन प्रणाली का एक केन्द्र था। मुगल काल में डुग्गर में जब बन्दरालता राज्य की स्थापना हुई तो बन्दरालता के शासकों ने अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए इस पहाड़ी क्षेत्र के राणाओं को पराजित करके उनके अधीनस्थ क्षेत्रों पर अधिकार किया। कोह्ग के राणा 'कऊ' को लड़ाई में पछाड़ कर बन्दराल इस क्षेत्र में भी आ घुसे। अपने राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने इस दुर्ग का निर्माण किया।

यह दुर्ग जिस टीले पर बना है, वह गाँव के उत्तर में है और उस की गाँव से ऊँचाई डेढ़ सौ मीटर के लगभग है। दुर्ग तक जाने के लिए शिलाखंडों से निर्मित सोपान पथ है जिस की चौड़ाई सबा मीटर है।

इस दुर्ग के पूर्व में विलावर और सुकराला की पहाड़ियाँ हैं। पश्चिम में गहरी घाटी बनाती हुई उज्झ नदी प्रवाह मान है। उत्तर में मछेड़ी और लाड़ी की पहाड़ियाँ तथा दक्षिण में मांडली है। कऊ नाला इस के उत्तर पूर्व में पहाड़ियों के नीचे प्रवाहित है। प्राकृतिक दृष्टि से अति सुरक्षित इस दुर्ग का

एक सीमावर्ती दुर्ग के रूप में ही विशेष महत्त्व है। इस के साथ विलावर, भड्डू सुमरता और जसरोटा की सीमाएँ जुड़ती थीं, अतः बन्दराल राजाओं ने सीमाओं पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से इस का निर्माण करवाया।

पूर्वोन्मुख इस दुर्ग की मुख्य ड्योढ़ी की नीवों के निशान ही अब बचे हैं। किले की उत्तरी दीवारों के अवशेष और एक छोटे से जलकुंड के शिलाखंड भी देखे जा सकते हैं। शेष अवशेष सन् 1974 में तब मिटा दिए गए जब दुर्ग की कोठरियों और दीवारों को तोड़ कर महात्मा पूर्ण गिर ने यहाँ दुर्गा मंदिर का निर्माण किया।

स्थानीय लोगों के अनुसार मंदिर बनने से पूर्व यह किला भग्नावस्था में चार बुर्जों पर आधारित था। चारों बुर्ज एक सुदृढ़ और ऊँची दीवार के साथ जुड़े थे। मंदिर निर्माण के समय इन्हें गिराया गया और इन के शिलाखंडों का उपयोग मन्दिर निर्माण में किया गया।

अब इस स्थान पर एक नवनिर्मित दुर्गा और शिव मंदिर है। इन मंदिरों के ऊपरी भाग में प्राचीन गणेश प्रतिमा स्थापित है जो तक्षण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कृति है। कोहग गाँव के जिस टीले पर यह किला निर्मित था उस की परिधि पाँच सौ मीटर के लगभग है। टीला एक ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ से दूर-दूर तक फैले इलाके पर दृष्टि रखी जा सकती है।

इस किले के दक्षिण में पहाड़ी ढलान में ऐतिहासिक नृसिंह मंदिर स्थित है जिस के भग्नावशेष वहीं बिखरे पड़े हैं। कहते हैं कि इस मंदिर और दुर्ग का निर्माण साथ-साथ हुआ था।

इस किले के नीचे प्याला आकार में कोह्ग गाँव की घाटी है। इस घाटी में साढ़े तीन सौ के लगभग घर हैं और जनसंख्या दो हज़ार है। सन् 1822 ई० से पूर्व कोह्ग डुग्गर की एक प्रसिद्ध पहाड़ी मंडी थी। राजा सुचेत सिंह (1822-1845 ई०) के बन्दरालता का राजा बनने के बाद कोह्ग के दुर्ग और मंडी की उपेक्षा की गई, परिणामस्वरूप दुर्ग ध्वस्त हुआ और मंडी उजड़ गई।

आज इस गाँव में स्थित ऐतिहासिक स्मारक अतीत की परछाई मात्र रह गए हैं। उजड़ा और उखड़ा कोह्ग इस उजड़े किले की छाया तले परम्परित जीवन जी रहा है।

टिप्पणियाँ

1. एक जनश्रुति के अनुसार इस घाटी में कौओं के समूह उड़ा करते थे। कौओं के समूह को 'कोह्ग' कहा जाता है। अत: इस गाँव का नाम कोह्ग और किला का नाम 'कोह्ग का किला' प्रसिद्ध हुआ।
2. कोह्ग के उत्तर में एक पहाड़ी पर मालतीगढ़ नामक किला था। चौदहवीं सदी में बन्दराल राजाओं ने मालतीगढ़ के राजा को पराजित कर मालतीगढ़ दुर्ग को नष्ट करके कोह्ग में नया दुर्ग निर्मित किया।
3. कोह्ग दुर्ग के नीचे जो कलात्मक बावलियाँ मिलती हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे बन्दराल राजाओं की निर्मिति हैं। इन बावलियों को बन्दराल राजा की बावलियां कहा जाता है।
4. कोह्ग गाँव में स्थित नृसिंह मंदिर के पुजारी मेग (हरिजन) हैं। उनके हाथ का चरणामृत स्वर्ण जातियों के लोग श्रद्धा से स्वीकार करते हैं।
5. जनश्रुति है कि किले का निर्माण करते समय इस की नींव पर एक ब्राह्मण की बलि दी गई थी। उस ब्राह्मण की अशांत आत्मा की मुक्ति के लिए महात्मा पूर्णागिरि ने किला तुड़वा कर मंदिर बनवाया।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. डुग्गरं का इतिहास-पृष्ठ संख्या-143
2. फोर्ट एंड पैलेसेज आफ वेस्टरन हिमालया-पृष्ठ-71



थड़ा कुलवाल का किला (सुमरता का किला)

यह किला तहसील विलावर के अन्तर्गत सुमरता क्षेत्र के थड़ा कुलवाल गाँव के पूर्व में एक ऐसे स्थान पर निर्मित है जो सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह किला रामकोट के पूर्व में 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वास्तु-कला के नियमों के अनुसार बने इस दुर्ग के चारों ओर गहरी परिखा है। जिस की चौड़ाई अनुमानत: साढ़े छह मीटर और गहराई छह मीटर है। दुर्ग संरचना की दृष्टि से इस की परिगणना नृदुर्ग के अन्तर्गत इस लिए की जा सकती है क्योंकि इस का निर्माण भडवाल राजाओं ने एक सहायक दुर्ग के रूप में किया है। सहायक दुर्ग को सैन्य दुर्ग भी कहा जाता है। इस कोटि के दुर्गों में राजा नहीं अपितु राज्य की सीमाओं की रक्षार्थ सैन्यदल तैनात रहता है। प्रस्तर शिलाओं से निर्मित इस किले का प्रवेशद्वार पूर्वोन्मुख है। प्रवेशद्वार ड्योढ़ी आकार में है और इस तक पहुँचने के लिए परिखा के ऊपर काष्ठ का एक उठवां पुल था, जो अब क्षतिग्रस्त है। किले की ड्योढ़ी में जो मेहराव बनी है उसके ललाट में गणेश प्रतिमा तथा दायीं ओर हनुमान और बायीं ओर भैरव की मूर्ति स्थापित है। ये दोनों मूर्तियाँ लोक-कला की दृष्टि से अनुपम हैं।

ड्योढ़ी के द्वार की ऊँचाई 2.50 मीटर और चौड़ाई डेढ़ मीटर है। इस डयोढ़ी के साथ जो आयताकार कक्ष है वह प्रहरियों के लिए निर्मित लगता है।

इस किले के चारों कोणों में शिलाखंडों से बने लगभग आठ-आठ मीटर ऊँचे बुर्ज हैं जिनके छत अनाच्छादित हैं। किले के बुर्जों और दीवार में पंक्ति बद्ध तिरछे रन्ध्र हैं जो तीर या गोली बरसाने के लिए बने हैं।

आयताकार इस किले की बाहरी दीवारों की लम्बाई अनुमानत: 48 मीटर और चौड़ाई 42 मीटर है। किले की दीवारों की ऊँचाई लगभग छ: मीटर है।

किले के भीतर उत्तरी भाग में कई कक्षों पर आधारित एक लम्बी इमारत के अवशेष उपलब्ध हैं। इस इमारत का उपयोग सैनिक आवास के लिए करते थे।

किले के पश्चिमी भाग में एक लघु जलाशय है जो वर्गाकार है। इस की प्रत्येक भुजा 5.30 मीटर है। जलाशय की गहराई अनुमानत: छ: मीटर है। इस में वर्षा का जल संकलित होता है।

किले की अधिष्ठात्री देवी रिंगड़ी का मंदिर मुख्य ड्योढ़ी के निकट दक्षिणी भाग में है। गर्भगृह में जिस सिंहासन पर देवी की मूर्ति प्रतिष्ठित है वह तीन सोपानों पर आधारित है। देवी रिंगड़ी की मूर्ति श्वेत पत्थर की है। मूर्ति में देवी के एक हाथ में ढाल और दूसरे में तलवार है। इस देवी मूर्ति के साथ ही काले रंग के पत्थर की एक अन्य देवी मूर्ति है जिस के तीन सिर और छ: पतली टाँगें हैं। कला की दृष्टि से यह मूर्ति विलक्षण है।

यह किला अठारहवीं शताब्दी में बना बताया जाता है। इस का निर्माण कहते हैं भडवाल राजाओं ने सीमा-दुर्ग के रूप में करवाया। सन् 1825 ई० में राजा गुलाबसिंह के निर्देश पर उसकी सेना ने इस दुर्ग पर हमला बोला तो अन्तिम भडवाल राजा ने इस किले की रक्षार्थ बड़ा यत्न किया। उसने पड़ोसी राजाओं से भी सैन्य सहायता माँगी। किन्तु जब उसे कहीं से भी सहायता न मिली तो भी उसने गुलाबसिंह का डट कर सामना किया। अन्तत: गुलाबसिंह इसे विजय करने में सफल रहा।

भडवाल राज्य के पतन के साथ ही इस किले का भी ह्रास होने लगा। इस के बुर्ज क्षतिग्रस्त होने के कारण ढह गए और किले के भीतर बने कक्ष भूमिसात हो गए।

सन् 1978 ई० में महात्मा पूर्ण गिरि ने दुर्ग के शिला खंडों को कठेर

कर देवी रिंगड़ी का नागर शैली में नया मंदिर निर्माण करवाया। इस के बुर्जों की मुरम्मत करवाई और इन में एक बुर्ज को आवास योग्य भी बनवाया।

---

1. सुमरता, सौमन्तक का विकृत रूप है। सौमन्तकों का उल्लेख चम्बा के ताम्र--पत्रों में हुआ है। इन पत्रों के अनुसार दसवीं शताब्दी में कीरों और सौमन्तकों को साथ लेकर दुर्गर जाति के लोगों ने चम्बा पर आक्रमण किया था, जिसे चम्बा के राजा ने असफल कर दिया। सौमंतकों के विषय में कहा जाता है कि इनके एक पूर्वज सोमपाल ने थड़ा कुलवान क्षेत्र में दसवीं सदी में अपना एक अलग राज्य स्थापित किया जिस की राजधानी नलिन पहाड़ी पर थी। कहते हैं कि सौमन्तकों का पुराना किला भी वहीं था। इस किले के निकट घनी बस्ती भी थी। किन्तु सोलहवीं या सतहरवीं शताब्दी में भडवाल राजाओं ने जब इस किले पर अधिकार किया तो किला टूट गया और बस्ती उजड़ गई।

   नलिन गाँव की पहाड़ी के शिखर पर आज भी कोट शैली में बने किले के पुरावशेष शिलाखंडों के रूप में बिखरे पड़े हैं। इसी किले के नीचे सौमन्तकों द्वारा निर्मित भगवान् नलिनेश्वर का मंदिर है।

   सौमन्तकों को ही अब सुम्बड़ियें कहा जाता है।

   इस शाखा के लोग इस पूरे क्षेत्र में फैले हुए हैं।

2. थड़ा कुलवाल के किले को सुमरता का किला भी कहते हैं।
3. काहन सिंह बलौरिया के अनुसार गुलाबसिंह ने इस किले के जीतने के लिए एक नई रणनीति अपनाई। उसने अपनी सेना को दो भागों में बांटा। एक भाग का नेतृत्व उसने स्वयं किया और दूसरे का नेतृत्व विशना ने किया। लम्बे-लम्बे वृक्षों से उन्होंने खाई को पार कर मार्ग बनाया, तब उन्हें सफलता मिली।
4. हिस्टरी आफ जे एंड के राइफिलज के लेखक एम. के. ब्रह्मा सिंह के अनुसार राजा गुलाब सिंह ने दलपतिया और वीर पुरिया मियों के अतिरिक्त दो-सौ सैनिकों का एक दल साथ लिया और सरूईंसर में पड़ाव डाला। एक हज़ार अन्य योद्धा भी उसके साथ आ मिले। किले के निकट पहुँच कर उसने अपनी सेना को तीन भागों में बांटा। उस की सहायता के लिए मियां लाभ सिंह कुमेदान, मियां दीवान सिंह, सज्जाद राय और सोहन सिंह सम्याल थे। सेना में वृक्षों से खाई पार की और तब जाकर दुर्ग पर विजय प्राप्त की।



मस्तगढ़ का किला

कठुआ जनपद के अन्तर्गत तहसील विलावर की अगली-धार नामक पहाड़ी के शिखर पर बना यह किला डुग्गर के दुर्जेय किलों में परिगणित होता है। उज्झ नदी इस किले के नीचे प्रवाह मान है। ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरा यह किला सघन वन में एक ऐसे सुनसान स्थान पर स्थित है जहाँ अपरिचित व्यक्ति का पहुँच पाना सम्भव ही नहीं।

इस किले को एक मार्ग उधमपुर धार सड़क पर स्थित थड़ा कुलवाल से और दूसरा मार्ग जसरोटा से जाता है। थड़ा कुलवाल से यह किला लगभग 12 किलोमीटर पश्चिम में है। इस मार्ग में स्यालना कलौंटा चरौटा तथा रूझालता गाँव आबाद है जो घने जंगल के बीच बसे हैं। रूझालता से पहाड़ी शिखर की चढ़ाई आरम्भ होती है। डेढ़ किलोमीटर चढ़ाई चढ़ने के बाद यह किला दृष्टिगत होता है।

प्रस्तर शिलाओं से निर्मित इस किले की मुख्य ड्योढ़ी दक्षिणोन्मुख है। यह किला चारों ओर से पत्थर से बनी प्राकार से घिरा है। प्राकार के प्रत्येक कोण में रन्ध्र हैं जिन से गोलियों की बौछार की जा सकती है।

किले के भीतर और बाहर समतल मैदान है। भीतरी मैदान आयताकार है जिस के एक सिरे में निवास-कक्षों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। इन कक्षों की दीवारें पत्थर की हैं किन्तु छत पर लकड़ी के शहतीर हैं।

स्थापत्य की दृष्टि से यह किला थड़ा कुलवाल किले की ही अनुकृति लगता है। यह किला पर्वत-शिखर पर है, अतः इस के इर्द-गिर्द खाई नहीं है।

यह किला उपलब्ध जानकारी के अनुसार जसरोटिया राजाओं की निर्मिति है। इस किले का निर्माण कुछ विद्वानों के अनुसार सन् 1594 ई० के बाद तब किया गया जब जसरोटा के किले को मुगल सेना ने तोड़ डाला। जसरोटा के शासकों ने इस पराजय के बाद सुरक्षा की दृष्टि से इस किले का निर्माण करवाया। किन्तु कुछ विद्वानों का मत यह भी है कि यंह किला इतना पुराना नहीं है। स्थापत्य की दृष्टि से यह उन्नीसवीं सदी के पहले चरण की रचना लगता हे। स्थानीय दन्त-कथाओं के अनुसार यह किला जसरोटा के राजाओं का एक गुप्त किला था और इसमें जसरोटा का राजकोष रखा जाता था।

सन् 1812 में जसरोटा के अध : पतन के बाद यह किला टूट-फूट गया।

इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल यह किला आज पशुचारकों के लिए विश्राम स्थल बना है।

---

1. एक मत है कि मुस्लिम शासकों ने जिन चार किलों का निर्माण शिवालिक पहाड़ियों में आपद काल में छुपने के लिए करवाया था, उनमें एक किला मस्तगढ़ भी था।
2. दूसरा मत यह है कि इस किले का निर्माण जसरोटा के राजा लालदेव ने जसमेरगढ़ किले के साथ-साथ करवाया।
3. कहते हैं कि खालसा सैनिकों के आक्रमणों के समय जसरोटा के राजाओं ने अपना खज़ाना इसी किले में स्थानान्तरित किया।
4. इस किले पर अधिकार करने के लिए कभी कोई लड़ाई हुई हो, ऐसा उल्लेख किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता।
5. 'तारीख डोगरा देश' के अनुसार यह किला भड्डू और जसरोटा राज्य के मध्य एक सीमावर्ती दुर्ग था। इसका निर्माण भड्डू के शासकों ने 17 वीं सदी में करवाया।



मनकोट का किला

डुग्गर प्रदेश में बने गिरि दुर्गों में इतिहास की पुस्तकों में जिन की चर्चा है, उन में पहाड़ी और मुगल शैली के मिश्रित रूप से बने दुर्गों में एक दुर्ग कठुआ जनपद के अन्तर्गत तहसील विलावर के इतिहास प्रसिद्ध नगर मनकोट के टीले पर अवस्थित है। मनकोट जम्मू के पूर्वोत्तर में सड़क से 87 किलोमीटर, कठुआ के उत्तर में कठुआ से 52 किलोमीटर, उधमपुर के पूर्व में उधमपुर से 60 किलोमीटर और मानसर झील से केवल 31 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

शिलाखंडों और मिट्टी की कच्ची-पक्की ईंटों से निर्मित इस किले की बाह्य दीवारों की ऊँचाई लगभग पन्द्रह मीटर है। यह किला अब पूर्ण रूपेण धराशायी है। इसकी भग्नावस्था में खड़ी एक मीटर के लगभग मोटी दीवार इस की गौरव गाथा सुनाती है, शेष सब कुछ एक ढेर में परिवर्तित है।

कहते हैं क़ि यह किला चारों ओर से प्राचीर से घिरा हुआ था और इस में प्रवेशार्थ जो मेहरावी सिंहद्वार था उसके सिरदल पर एक शिलालेख जड़ा था। सिंहद्वार तो बाद में टूट गया किन्तु शिला लेख सुरक्षित है। इस शिलालेख की लिपि टाकरी है। इसकी लिखावट से लगता है कि यह सोलहवीं शताब्दी का है। दुर्ग-स्थल से ही दो अन्य शिलालेख और भी उपलब्ध हुए हैं जिन की लिपि टाकरी से मिलती जुलती है। लगता है कि ये शिलालेख इस दुर्ग में बने महलों से सम्बन्धित हैं और इन में सम्भवत: महल निर्माता का नाम और संवत अंकित है। इन में एक शिला-लेख खंडित ह तथा दूसरा सही अवस्था में है।

राजदर्शनी के लेखक गणेश दास बटेहड़ा के अनुसार मनकोट की नींव राजा मानकदेव ने रखी। राजा मानक देव के विषय में कहा जाता है कि वह राजा आहलदेव का पुत्र राजा कावुदेव का पौत्र राजा वीर देव का प्रपोत्र था। सन् 1399 ई० में अमीर तैमूर जब मानसर के मार्ग से जम्मू की ओर बढ़ा तो बब्वापुर के राजाओं ने बब्वापुर से अपनी राजधानी हटा ली और अपनी सुरक्षा के लिए मनकोट की पहाड़ी पर यह दुर्ग निर्मित किया और अपने आवास के लिए दुर्ग के भीतर महल बनवाये।

राजा मानकदेव की वंशावली में सतरह राजाओं के नाम मिलते हैं। इन राजाओं में महिपत देव कला प्रेमी था। उसके विषय में कहा जाता है कि उसने मनकोट के किले को नया रूप दिया और इस के अन्दर रहने के लिए तिमंजिले महल बनवाए जो वास्तु शिल्प की दृष्टि से अनुपम और विलक्षण थे। इन की छत की बनावट अनूठी थी और इन की दीवारों में मोहक भीत्ति चित्र अंकित थे। छज्जों, मेहराबों, दीवारों, बारादरियों और चौकियों से सुसज्जित ये महल बसोहली के महलों की अनुकृति लगते थे।

महिपत देव के पोते राजा प्रतापदेव का उल्लेख भी ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। राजदर्शनी के अनुसार हिमायु का भाई मिर्जा कामरान हुमायूं से परास्त होने के बाद आश्रय की तलाश में जब जम्मू के राजा कपूरदेव (1530-1570) की शरण आया तो उसने उसे मनकोट के राजा प्रतापदेव के दरबार में इस आशय से भेजा कि वहाँ वह सुरक्षित रह सकेगा। मिर्जा कामरान मनकोट दुर्ग में कितने अरसे तक रहा, इस का विवरण तो नहीं मिलता किन्तु लगता है कि उन दिनों मनकोट का दुर्ग अजेय माना जाता रहा होगा। अकबर नामा में भी राजा प्रताप का नाम उल्लिखित है। मनकोट का राजा रायप्रताप भी डुग्गर के उन राजाओं में एक था, जिसने मुगल सम्राट अकबर के विरुद्ध सन् 1594 ई० में विद्रोह किया। इतिहास के इन तथ्यों से लगता है कि केवल मनकोट के राजा ही नहीं अपितु मनकोट का दुर्ग भी मुगल काल में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

सन् 1822 ई० में मियां गुलाबसिंह पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह के अधीन जम्मू का राजा बना तो उसने डुग्गर प्रदेश के सभी छोटे-बढ़े राज्यों को जम्मू राज्य में विलीन करने के लिए सैन्यबल का प्रयोग किया। उसने अपने छोटे भाई तथा बन्दरालता के राजा सुचेतसिंह को सन् 1825 ई० में मनकोट पर आक्रमण करने का आदेश दिया। राजा सुचेतसिंह ने राय केसरी सिंह को मनकोट दुर्ग पर अधिकार करने के लिए भेजा। राय केसरी सेना के साथ जब मनकोट पहुँचा तो मनकोट के अन्तिम राजा छतरसिंह ने बिना लड़े मनकोट का किला केसरीसिंह को सौंपा। इस प्रकार यह किला और इस में निर्मित महल क्षतिग्रस्त होने से बच गए।

राय केसरीसिंह ने मनकोट दुर्ग पर तो अधिकार कर लिया किन्तु मनकोट के राजा छतरसिंह को मनकोट दुर्ग खाली करके मनकोट से चले जाने के लिए विवश किया। अन्ततः राजा छतरसिंह अपने परिवार को साथ लेकर अपने पूर्वजों की इस विरासत को महाराजा गुलाबसिंह के अधिकारियों को सौंप कर रावी नदी पार करके हिमाचल प्रदेश चला गया।

राजा छतरसिंह के चले जाने के बाद डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला वीरानगी और सूनेपन के कारण धीरे-धीरे भूमिसात होता गया। आज इस किले के अवशेष देख कर दर्शक के मन में वेदना पैदा होती है।

इस किले की विशिष्ट स्थिति, सामरिक महत्त्व और सुदृढ़ता को देख कर लगता है कि यह किला डुग्गर का गौरव था।

---

1. मनकोट दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी का नाम मनुकुटा है। एक मत यह भी है कि इस किले का नाम देवी मनकुटा के नाम पर मनकुटा दुर्ग और बाद में बिगड़ते-बिगड़ते मनकोट प्रसिद्ध हुआ।
2. दूसरा मत यह है कि मनकोट का पुराना नाम मणिकोट था। मणिकोट का ही विकसित रूप मनकोट है।
3. महाराजा रणवीर सिंह (1856-1885 ई०) ने मनकोट की जागीर अपने दामाद रघुनाथ सिंह को दहेज में प्रदान की तो राजा रघुनाथ सिंह मनकोट में ही रहने लगा। उसी

के समय में मनकोट का नाम बदल कर रामकोट किया गया। आज मनकोट के किले को रामकोट के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

4. मनकोट के राजाओं के शासनकाल में किले की सुरक्षा के लिए कहते हैं कि कई बुर्ज. बनाए गए थे। किन्तु अब गाँव के पश्चिम में शिलाखंडों से निर्मित एक ही बुर्ज दृष्टिगत है जो भग्नावस्था में है।
5. मनकोट के राजा महिपतदेव के शासनकाल में मनकोट में जिस चित्रकला का विकास हुआ था उसके कुछ चित्र बोस्टन में चित्रकला प्रदर्शनी में रखे गये थे।
6. मनकोट राजाओं के अधिकार में केवल सोलह गाँव थे अतः यह एक छोटा सा राज्य था।
7. मनकोट की पहाड़ी पर एक चट्टानी दुर्ग के अवशेष भी मिलते हैं। इस स्थान को 'रणकुट्टा का टीला' या किला कहा जाता है। यहाँ एक बहुत बड़ी और ऊँची चट्टान है। जनश्रुति है कि आक्रमण के समय मनकोट का राजा रणकुट्टा के किले में चला जाता था। जहाँ उसको पकड़ पाना सम्भव नहीं था।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. डुग्गर का इतिहास -पृष्ठ 151-154
2. राजदर्शनी
3. तारीख डोगरा देश



थियाल का किला

डुग्गर के अन्तर्गत शिवालिक पहाड़ियों में सुरक्षा की दृष्टि से निर्मित गिरि दुर्गों में एक दुर्ग थियाल गाँव में भी है। थियाल तहसील रामनगर के अन्तर्गत पहाड़ी पर बसा अति रमणीक गाँव है। यह गाँव उधमपुर धार सड़क के निकट उधमपुर के पूर्व में 55 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जम्मू के पूर्वोतर में बसा यह गाँव मानसर झील से केवल 12 किलोमीटर दूर है। धार-उधमपुर सड़क पर स्थित धम्मां गाँव से एक पक्की सड़क इस गाँव में जाती है। धम्मां से इस की दूरी केवल सात किलोमीटर है।

गाँव के पश्चिम में एक छोटे से पहाड़ी टीले पर बना यह किला अब खंडहर का ढेर बन चुका है किन्तु इस का सिंहद्वार आज भी अपने मूलरूप में खड़ा है। यह द्वार धनुषाकार है और इस के दायें-बायें शिलाखंडों के जो पीठ बने हैं, वे कलात्मक हैं। दायें पीठ के ऊपर भीमसेन की मूर्ति प्रदर्शित है। जिस में भीमसेन को आकाश में हाथी फैंकते अंकित किया गया है। मूर्ति में दो हाथियों को हवा में लड़खड़ाते हुए दिखाया गया है जब कि तीसरे हाथी को एक गेंद के समान भीमसेन ने अपने हाथ में पकड़ रखा है। मूर्ति-कला की दृष्टि से यह डुग्गर में उपलब्ध उत्कृष्ट मूर्तियों में एक है। बायें पीठ के ऊपर भैरव की मूर्ति है।

किले के सिंहद्वार तक पहुँचने के लिए जो सोपान पथ बना है वह शिला खंड़ों से निर्मित है। सिंह द्वार भी प्रस्तर शिलाओं से निर्मित है। इस की चौड़ाई 2.60 मीटर और ऊँचाई अनुमानत: 8 मीटर है। सिंह द्वार के दायें-बायें एक-एक बुर्ज के अवशेष ढेर के रूप में दृष्टव्य है। ये भी शिलाखंडों से बने हैं।

किला के भीतर प्रहरियों के लिए जो कोठरियाँ बनी थीं वे अब पूर्ण-रूपेण धराशायी हैं। अब उन की नींवों के निशान ही बचे हैं। दुर्ग के दक्षिणी-भाग में महलों के अवशेष हैं। ये महल पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं और इन के भीतर बने पक्के जलाशय की कलात्मक अट्टारिकाएँ अभी बची हुईं हैं। यह किला अपने मूल रूप में पक्की और ऊँची प्राकार से घिरा हुआ था जिस के चारों कोणों में एक-एक बुर्ज था। बुर्ज के साथ ही प्रवेशद्वार भी बने थे। किन्तु अब उन के निशान कहीं-कहीं ही मिलते हैं। दस कनाल के लगभग भूमि में फैले इस दुर्ग के बाहर एक पक्का कुँआ है जिस की दीवार में लगा एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख पुरानी टाकरी में है और इस पर संवत 1541, मास श्रावण तिथि ग्यारह अंकित है। इस शिलालेख से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि थियाल गाँव का यह किला सोलहवीं शताब्दी के मध्यम चरण की निर्मिति है। किले के बाहर कुएँ के निकट थियाल सामंतों की दो पुरानी समाधियाँ हैं और इन के निकट गाँव का सरोवर है जिस के विषय में कहा जाता है कि उस की खुदाई किले के निर्माण के समय की गई थी।

किले के निचले भाग में थियाल गाँव बसा है जो अनुमानत: डेढ़ सौ घरों पर आधारित है। गाँव के दक्षिण में पंजाक और पूर्व-पश्चिम में विलासपुर में प्रदर्शित कलात्मक मूर्तियाँ उन वास्तुकारों की कृतियाँ बताई जाती हैं जिन्होंने थियाल के किले का निर्माण किया था।

एक जनश्रुति के अनुसार थियाल के इस किले का निर्माण सोलहवीं सदी के मध्यम चरण में बन्दरालता राजवंश के एक सामंत थियाल सिंह ने उस समय करवाया जब बन्दरालता नरेश ने उसे पमासता की जागीर प्रदान की। राजा थियालसिंह ने हट्ट गाँव को अपनी जागीर की राजधानी बनाया किन्तु बाद में उसने सुरक्षा की दृष्टि से यह गाँव छोड़ दिया और एक पहाड़ी के ऊपर नया नगर बसाया जिस का नाम उसने अपने नाम पर थियाल रखा। राजा थियाल सिंह के वंशजों ने थियाल गाँव का पर्याप्त विकास किया। उन्होंने इस गाँव को एक पहाड़ी माल की मंडी बनाया। उन के समय में जंडेयाल, भिड्डु,

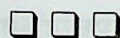
रिगड़े, पावे शाखा के महाजन इस गाँव में आबाद हुए और उन्होंने यहाँ कई व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित किए। गाँव में कौशल, करोल, बोटी शाखा के ब्राह्मणों ने साहित्य ज्योतिष और आयुर्वेद का विकास किया। राजपूतों ने अपने रक्त से इस की स्वायत्तता की रक्षा की।

खालसा सेना ने जसरोटा के वैभव को लूटने के लिए उन्नीसवीं सदी के पहले चरण में जब बार-बार आक्रमण किए तो थियाल के जागीरदार ने सुरक्षा के लिए थियाल गाँव से तीन किलोमीटर उत्तर में स्थित पहाड़ी पर एक और छोटा-सा किला बनवाया जिसे लंका नाम दिया गया।

थियाल के सांमतों ने खालसा सेना से तो अपना बचाव कर लिया किन्तु राजा गुलाबसिंह की कूटनीति का वे अन्ततः शिकार हो ही गए। सन् 1822 ई० में गुलाबसिंह के छोटे भाई राजा सुचेतसिंह ने बन्दरालता का जागीरदार बनने के बाद थियाल के जागीरदार को थियाल का किला और महल खाली करने के लिए दबाव डाला तो थियाल का जागीरदार अपने परिवार को लेकर टिहरी गढ़वाल चला गया। उसके चले जाने के बाद यह किला वीरान हो गया।

सन् 1947 के बाद सरकार ने खाली पड़े इस किले को शिक्षा-विभाग को सौंप दिया। शिक्षा-विभाग ने विद्यालय के लिए इमारतें बनवाईं। डुग्गर के इस ऐतिहासिक दुर्ग के स्मृति-चिन्ह मिटते जा रहे हैं।

अब इस किले का शेष मात्र बचा सिंहद्वार ही अपनी गौरव गाथा सुनाता है।



टिप्पणियाँ

1. एक अन्य जनश्रुति के अनुसार थियाल क्षेत्र का पुराना हस्ति-स्थल था। यहाँ बन्दरालता के राजा के हाथी विचरते थे। बाद में हस्ति-स्थल बिगड़ कर 'थियाल' शब्द बना।
2. थियाल के जागीरदारों की वंशावली उपलब्ध नहीं हुई, अतः उनका विवरण नहीं दिया जा सका।
3. मझालता नियाबत का अधिकांश भाग पामासता कहलाता है।

जगानु का किला

डुग्गर की पौराणिक नदी तौषी के तटवर्ती क्षेत्रों में जो नगर बसे उन में एक नगर जगनपुर भी था जिस का विकृत नाम जगानु है। यह नगर उधमपुर के पूर्व में बारह किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। नगर एक समतल मैदान में बसा है और अनुमानतः डेढ़ किलोमीटर वर्ग क्षेत्र में फैला है। इस के पश्चिम में वेगवती तौषी नदी प्रवाह मान है। नदी तक पहुँचने के लिए जो पहाड़ी ढलवान है वह भारी-भरकम चट्टानों और वन्य वनस्पतियों से भरी पड़ी है अत: नदी को पार करके इस नगर तक पहुँचना सहज नहीं। इस के पूर्व और उत्तर में घने वन से आच्छादित पहाड़ियाँ हैं। दक्षिण में चम्पक नाला है जिस की जल धाराएं पर्वतीय चट्टानों से टकराती हुई तौपी नदी में विलीन हो जाती हैं।

जनश्रुतियों में कहा गया है कि बन्दरालता के राजा कृष्णदेव ने यह क्षेत्र अपने कुल पुरोहित 'जग्गो को जागीर के रूप में प्रदान किया और उसी ने अपने नाम पर जगनपुर नगर बसाया। किन्तु एक अन्य जन श्रुति के अनुसार इस नगर की स्थापना दसवीं शताब्दी में राजा जगत देव ने की। एक लोकश्रुति यह भी है कि राजा मदन देव ने इस नगर को बसाया और उसने अपने नाम पर इस का नाम मदनपुरी रखा। जगानु गाँव की वन्यस्थली में एक नगर के अवशेष आज भी मिलते हैं जिन्हें मदनपुर के नाम से अभिहित किया जाता है। कुछ भी हो, इतना प्रमाणित है कि जगानु एक प्राचीन नगर है और इस की संस्थापना शताब्दियों पूर्व हो चुकी थी। स्थानीय इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में राजा कर्णदेव इस क्षेत्र का राजा था। कर्णदेव का समय 1510 ई० से लेकर 1545 ई० तक अनुमानित

किया जाता है। कर्णदेव ने जगानु राज्य का विस्तार किया और उसके शासनकाल में यह राज्य तौषी नदी से लेकर चनुनता तक भरमीन से लेकर घोलडी तक तथा लडड्न से लेकर थनोआ तक फैला हुआ था। राजा कर्ण देव बन्दराल राजवंश से था, अतः जगानु के राजा बन्दरालता के राजाओं के कर दाता रहे। कर्णदेव के बाद शिवदेव जगानु का राजा बना और उसने अनुमानतः सन् 1545 से लेकर 1560 तक राज्य किया। उस का उत्तराधिकारी राजा मदन देव था जिस ने मदन पुर नाम का एक नया गाँव बसाया जिसके पुरावशेष जगानु की रक्ख (वन्यस्थली) में आज भी मिलते हैं।

राजा मदन देव (अनुमानतः 1560-1580 ई०) के उत्तराधिकारियों के नाम नहीं मिलते। दन्त कथाओं के अध्ययन से पता चलता है कि सतारहवीं शताब्दी में सलारिया कबीले ने जगानु राज्य पर अधिकार किया। इस वंश का अन्तिम राजा रत्न देव था। उसके शासनकाल में रसियाल कबीले और सलारिया कबीले में कई बार लड़ाईयाँ हुईं और अन्ततः राजा रत्नदेव अपने परिवार के सात जगानु छोड़ कर पहाड़ों की ओर भाग गया। राजा रत्न देव के चले जाने के बाद बन्दरालता के राजाओं ने जगानु की जागीर अपने पास रखी।

सन् 1760 ई० में जम्मू के राजा रंजीत देव (1730-1780 ई०) ने बन्दराल राजाओं से यह जागीर छीन ली। उसनें अपने विद्रोही पुत्र मियां दिलेलदेव और उस की माता को जम्मू से निष्कासित करके जगानु भेज दिया। मियां दिलेलदेव ने जगानु में अपने रहने के लिए जो किला नुमा महल बनवाया उसे आज पक्की मंडी कहते हैं। जम्मू के राजा वृजराजदेव (वि. संवत 1839-1843 तदानुसार सन् 1783-1787 ई०) ने मियां दिलेलदेव और उसके पुत्र भगवान् देव की उस समय चरणापादुका के निकट हत्या करवाई जब वे त्रिकूटा देवी के दर्शन करके वापिस लौट रहे थे। घृणित कांड के बाद मियां दिलेल देव की रानी अपने इकलौते पुत्र मिंया जीत देव को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से जगानु छोड़कर पुरमंडल चली गई। इस राजवंश के चले जाने के बाद वैभव और समृद्धि में डूबा यह नगर पुनः वीरान हो गया। राजमहल ढह गया और

इस की सुरक्षा के लिए बनाई गई सुदृढ़ प्राचीर ढेर में बदल गई।

राजा वृजराजदेव भी जम्मू के राजमहलों में सुख से न रह सका। एक लड़ाई में वह भी मारा गया और उस का अल्पव्यस्क पुत्र राजा संपूर्णदेव भी ग्यारह वर्ष तक जम्मू की राजगद्दी पर बैठा। मियां जीत देव (वि. संवत 1855-1869 तदानुसार सन् 1799 से 1812) और उस की रानी बन्दराली में जब टकराव हुआ तो वह अपने राजकुमारों को लेकर जगानु आई। उसने महलों की मुरम्मत करवाई और नए महल भी बनवाए। अपने राजकुमारों के मुंडन संस्कार भी उसने यही सम्पन्न करवाए। रानी के जगानु वापिस लौट आने के बाद इस नगर का वैभव पुनः लौट आया, ऋद्धि और सिद्धि इस की गलियों में विचरण करने लगीं।

सन् 1812 ई० में डुग्गर के इतिहास में एक नया मोड़ आया। पंजाब केसरी महाराजा रंजीत सिंह ने जम्मू के राजा जीतदेव को राजगद्दी से उतार कर जम्मू परगना की जागीर राजकुमार खड्गसिंह को प्रदान की। शाहजादा खड्ग सिंह आठ वर्ष तक इस क्षेत्र का जागीरदार तो रहा किन्तु उसके शासनकाल में डुग्गर प्रदेश अशांत रहा। अन्ततः सन् 1822 ई० में महाराजा रंजीतसिंह ने जम्मू परगना का राज्य मियां गुलाबसिंह को और बन्दरालता का राज्य उसके छोटे भाई सुचेतसिंह को सौंपा।

जगानु की जागीर राजा सुचेत सिंह को बन्दरालता राज्य के एक हिस्से के रूप में मिली। राजा सुचेतसिंह ने जगानु के भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व को समझा। उसने इस नगर को एक नया स्वरूप देने के लिए यहाँ बाहर के कई लोगों को बसाया। राजा सुचेतसिंह के शासनकाल में इस नगर की जनसंख्या 3078 थी और यह नगर 513 घरों पर आधारित था जिन में 360 घर ब्राह्मणों के, 52 घर महाजनों के, 21 घर क्षत्रियों के, 40 घर स्वर्णकारों के तथा इक्कीस घर धीवरों, लुहारों, कुम्हारों और धोबियों के थे। नगर के तालाब के नीचे ब्राह्मणों की बस्ती थी, तालाब के आस पास

महाजन और क्षत्रिय बसते थे और ऊपरी भाग में हरिजन और मुसलमान आबाद थे। राजा सुचेतसिंह ने जगानु में पहाड़ी मंडी का विकास भी किया।

सन् 1828 ई० में राजा सुचेतसिंह ने जगानु क्षेत्र की सुरक्षा के लिए तौषी नदी के पूर्वीय तट पर स्थित पहाड़ी पर मुगल शैली में एक नया किला भी बनवाया जो अपनी सुदृढ़ता, अजेयता और गरिमा के कारण पूरे डुग्गर प्रदेश में प्रसिद्ध है।

दुर्ग सन्निवेश की दृष्टि से यह परिखा, प्राकार, द्वार, अट्टालक तथा तोरण आदि तत्वों से परिपूर्ण है। यह किला नगर के पश्चिम में जिस पहाड़ी टीले पर बना है उसके सन्मुख आयताकार एक खुला मैदान है जिसे मण्डी या चौगान कहते हैं। इस चौगान के पश्चिम में जो परिखा बनी है वह अनुमानतः सात मीटर चौड़ी और पाँच मीटर गहरी है। परिखा के उत्तर में पहाड़ी ढलवान है तथा दक्षिण में टीला का वह भाग है जो घनी झाड़ियों से भरा पड़ा है।

किले में प्रवेश के लिए जो ड्योढ़ी बनी है वह पूर्वोन्मुख है। पल्लवाकार इस ड्योढ़ी के किवाड़ की लम्बाई 2.50 मीटर और चौड़ाई 1.35 मीटर है। इस के साथ प्रहरियों के लिए निर्मित कोठरी है। इस में बाहर झांकने के लिए दस झरोखे हैं।

मुख्य ड्योढ़ी पार करने के बाद खुला स्थान है। इस भाग में परिखा के पश्चिमी भाग में निर्मित प्राचीर के अवशेष भी देखे जा सकते हैं। किले के इस भाग को पार करने के बाद किले की दूसरी डयोढ़ी आती है जिस के द्वार की ऊँचाई अढ़ाई मीटर और चौड़ाई केवल 1.32 मीटर है।

इस ड्योढ़ी से गुज़रने के बाद किले के भीतर प्रवेश करने के लिए बड़ी डयोढ़ी बनी है। पल्लवाकार इस ड्योढ़ी की दायीं ओर हनुमान की और बायीं ओर सिंह वाहिनी दुर्गा की मूर्ति प्रतिष्ठित है। हनुमान की मूर्ति की लम्बाई 55 से.मी. है। यह मूर्ति बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण है और मूर्तिकला की दृष्टि

से सामान्य कोटि की है। अष्ठभुजा सिंह वाहिनी की मूर्ति की लम्बाई 67 से. मी और चौड़ाई 42 से.मी. है। ड्योढ़ी की ऊँचाई अनुमानतः आठ मीटर और चौड़ाई छः मीटर है। इसका किवाड़ 2.50 ऊँचा और 1.50 मीटर चौड़ा है। ड्योढ़ी के दोनों ओर बने पीठासनों के ऊपर दीवारों में जो घुमावदार लता अलंकरण बने हैं, वे सुन्दर एवं आकर्षक हैं। इस के दोनों कोणों में उभरवां स्तम्भ है। इन की प्रस्तर शिलाओं पर हल्का तक्षण कार्य हुआ है। ड्योढ़ी के आगे थोड़ा खुला स्थान है। इस के साथ बनी दीवार में चौथी ड्योढ़ी है जिस की चौखट 3.50 मीटर ऊँची और 1.75 मीटर चौड़ी है। चौड़ी ड्योढ़ी को पार करने के बाद खुला सहन है। इसी सहन के पश्चिमी कोण के बायीं ओर जलाशय है जो वर्गाकार है। इस की लम्बाई अनुमानतः साढ़े नौ मीटर और चौड़ाई 7 मीटर है। इस की अट्टारिकाएँ शिलाखंडों की बनी हैं। जलाशय तक पहुँचने के लिए जो सोपानपथ है वह पश्चिमोन्मुख है। जलाशय से लगभग बीस मीटर की दूरी पर असलाखाना है जो शिलाखंडों का बना है। इस की छत चूना-सुर्खी और प्रस्तर पट्टिकाओं से निर्मित है। असलाखाना का कक्ष वर्गाकार है और इस की भुजा 3.92 × 3.92 है। इस का प्रवेशद्वार 1.75 मी ऊँचा और 97 से.मी. चौड़ा है। असलाखाना के साथ ही उत्तरी कोण में दुमंजली बारादरी है। इस के बड़े कक्ष की लम्बाई 7.75 मीटर और चौड़ाई 5.25 मीटर के लगभग है। इस की दूसरी मंजिल तक जाने के लिए ग्यारह सोपान हैं। बारादरी का बड़ा कक्ष अति आकर्षक है। इसका प्रवेशद्वार दक्षिणोन्मुख है और इस की दीवारों में जड़े वितान काष्ठ निर्मित हैं। बारादरी के साथ बनी कोठरियाँ धराशायी हैं। इस किले की ऊँची दीवारों में सात अट्टालक (बुर्ज) हैं जिन के शिखर दूर-दूर से दिखाई देते हैं। शिलाखंडों से निर्मित्त इस किले की परिगणना डुग्गर के सुदृढ़ किलों में की जाती है। किले की अधिष्ठात्री देवी महाकाली का मंदिर किले के बाहर पक्की मंडी के सामने बना है। यह मंदिर मण्डप, प्रदक्षिणापथ और गर्भगृह योजना पर आधारित है। इस के सिंहासन पर आधा मीटर ऊँची पत्थर की बनी महाकाली की मूर्ति प्रतिष्ठित है जिस की आँखों में चाँदी मढ़ी गई है। इस मंदिर का उद्धार कई बार हुआ

है। किले के निकट ही एक अन्य नव निर्मित गणेश मंदिर है।

जगानु का किला दुर्ग त्रास्तुकला के नियमों के अनुसार बना है। इस के चार घुमावदार प्रवेशद्वार हैं, ऊँची तथा सुदृढ़ प्राचीर है। सात बुर्ज हैं और भीतर जलाशय है। बाहर जाने का संकट कालीन पथ भी है और आवासीय इमारतें भी हैं। सामरिक दृष्टि से यह किला महत्त्वपूर्ण है।

यह किला उपलब्ध जानकारी के अनुसार राजा सुचेतसिंह के एक सामंत बजीर बदना की देख-रेख में बना। अब यह किला शिक्षा-विभाग के अधिकार में है।



टिप्पणियां

1. जगानु का किला जिस पहाड़ी पर बना है। उसे कओआ नाम से अभिहित किया जाता है। कहते हैं कि पहले वहां एक छोटी सी बस्ती थी। बस्ती के लोगों को हटा कर इस किले का निर्माण हुआ।
2. किले के निकट पक्की मंडी में राजा रंजीतदेव के महल थे। कहते हैं कि उन्हीं महलों के पुरावशेषों से इस किले का निर्माण हुआ।
3. जगानु की रक्ख में एक स्थान 'महल' है। कहते हैं कि यहाँ भी एक पुराना किला था जिस का निर्माण बन्दरालता के किसी कृष्णदेव नामक राजा ने करवाया था।
4. गाँव में दुर्योधन का पाला नामक का एक तालाब है। यहाँ भी प्राचीन पुरावशेषों के निशान मिलते हैं।
5. मदनपुर अब सीमा सुरक्षा बल के अधिकार में है। यहाँ पुराने महलों की नींवें मिलती हैं। कहते हैं कि यहाँ भी पुराना किला था।

कोटली दा किला

जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजपथ पर लड्डन गाँव के निकट नवनिर्मित जल-विद्युत गृह के ऊपर स्थित पहाड़ी पर शिला खंडों से निर्मित इस गिरि-दुर्ग का अवलोकन उधमपुर से पाँच किलोमीटर दूरी पर राजपथ से किया जा सकता है। इस दुर्ग के नीचे तौपी नदी पहाड़ी चट्टानों से टकराती और नाद करती प्रवाहमान है। उधमपुर-बरमीन सड़क पर बसे कोटली गांव की पहाड़ी ढलवान के एक सिरे पर यह दुंर्ग निर्मित है। इस दुर्ग तक पहुंचने के लिए सड़क के उत्तर में एक पगडंडी बनी है। आधा किलोमीटर टेढ़ी-मेढ़ी और कहीं-कहीं सीधी खड़ी इस पगडंडी को चढ़ने के बाद इस दुर्ग के दर्शन होते हैं।

यह दुर्ग स्थापत्य की दृष्टि से पहाड़ी और मुगल कला का मिश्रित रूप लगता है। दुर्ग सन्निवेश के सभी तत्त्व प्राय: इसमें समाहित हैं। इस के पूर्व में बनी परिखा (खाई) अनुमानत: 50 मीटर लम्बी, छ: मीटर चौड़ी और पाँच मीटर गहरी है। परिखा के ऊपर उठवां पुल के अवशेप हैं। लगता है कि यह पुल काष्ठ निर्मित रहा होगा जिसे आपद्काल में उठाने की व्यवस्था रही होगी।

परिखा से दस मीटर की दूरी पर दुर्ग का सिंह द्वार है जो पूर्वोन्मुख है। सिंह द्वार अब धराशायी है, अत: इस की ऊँचाई का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सिंह द्वार ऊँची और सीधी प्राचीर के साथ जुड़ा हुआ है। इस प्राचीर के चारों कोणों में एक-एक छत हीन बुर्ज बना है। इन बुर्जो में पश्चिम में स्थित बुर्ज सब से ऊँचा है। इस का व्यास अनुमानत: दस मीटर और ऊँचाई तेरह मीटर है। शेष बुर्ज छोटे हैं और उन की ऊँचाई सात-सात मीटर के लगभग है। बुर्जों में प्रवेशार्थ बने द्वार संकीर्ण हैं। इन की दीवारों में तिरछे रन्ध्र

हैं। उनसे शत्रु सेना पर आसानी से गोली चलाई जा सकती है।

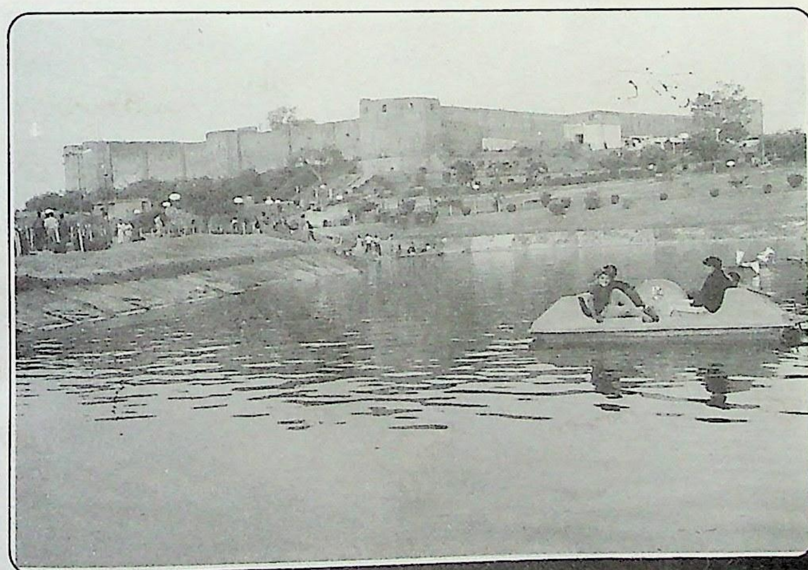
दुर्ग का भीतरी भाग तीन हिस्सों में विभाजित है। पहले भाग में प्रवेशार्थ ड्योढ़िया हैं उनके साथ प्रहरियों के लिए कोठंरियां हैं। किले के इस भाग में सैनिक सुरक्षा के लिए तैनात रहते थे। किले के इस भाग के आगे एक चौड़ी दीवार है। यह दीवार किले के भीतरी भाग को सुरक्षा प्रदान करने के लिए बनाई गई थी। अब यह दीवार गिर चुकी है, अत: यह अनुमान लगाना सरल नहीं कि किले के भीतरी भाग में प्रवेश के लिंए इसमें कितने द्वार थे। किले के अन्दर वर्गाकार प्रांगण के चारों ओर बनी कोठरियों के अवशेष हैं। इन कोठरियों की दीवारों का बज्रलेपन उखड़ चुका है किन्तु इन की बनावट से लगता है कि किले के इस भाग का निर्माण राजा और उसके परिवार जनों के आवास के लिए किया गया होगा। किले के तीसरे भाग में भी कुछ कोठरियां हैं। इन कोठरियों की संरचना से लगता है कि किले के इस भाग में पाकशाला रही होगी। इन कोठरियों के नीचे की ओर जो सोपानपथ है वह किले के जलाशय की ओर जाता है। जलाशय छोटा है और इस में संकलित जल प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त है।

छ: कनाल भूमि में परिव्याप्त यह किला पत्थर और मिट्टी से बना है। पत्थरों की चिनाई में गारे का प्रयोग किया गया है और उसके ऊपर चूना सुर्खी का हल्का पलस्तर है। इस किले की बाहरी दीवारें आज भी खड़ी हैं। किन्तु भीतरी दीवारों को बहुत क्षति पहुँची है।

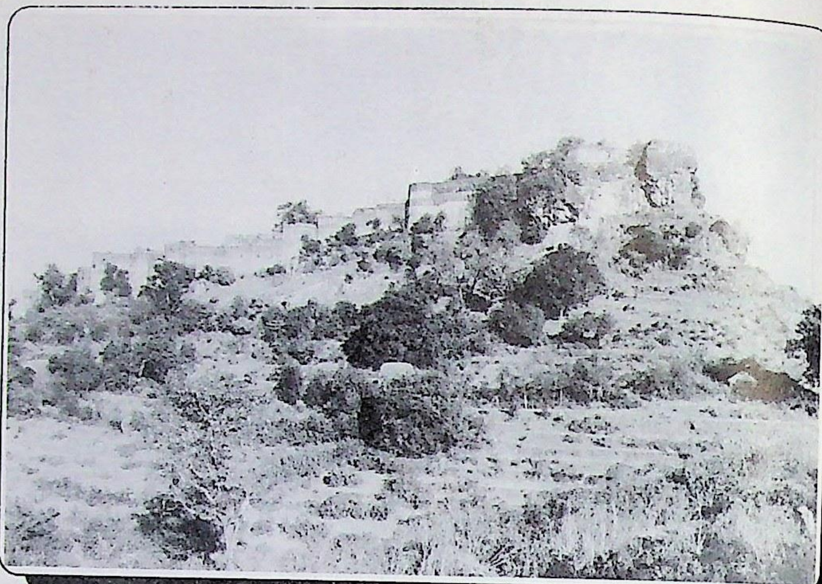
यह किला अति सुरक्षित स्थान पर बनाया गया है। किले के पूर्व में रक्ख कोटली की पहाड़ी है जिस की ढलान में चन्देल राजाओं द्वारा निर्मित पुराने किले के अवशेप बिखरे पड़े हैं। इस के पश्चिम में शारदा पहाड़ी है जिस के शिखर के ऊपर प्रस्तर-खण्डों के ढेर से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ भी किसी समय कोट शैली का किला रहा होगा। उत्तर में कैरा और ओस गांवों के घने वन हैं जो इस किले को दुर्जय बनाते हैं। दक्षिण में थनोवा



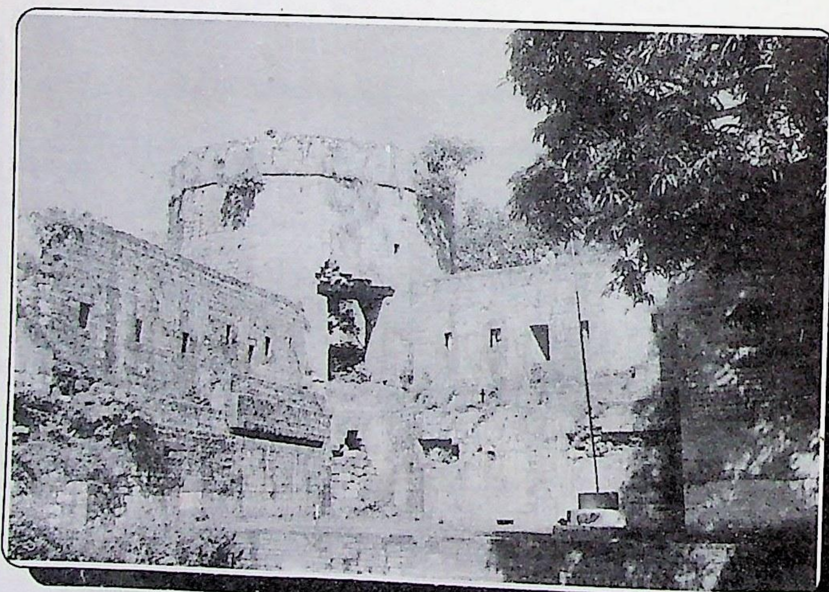
पुंछ का किला



बाहू का किला



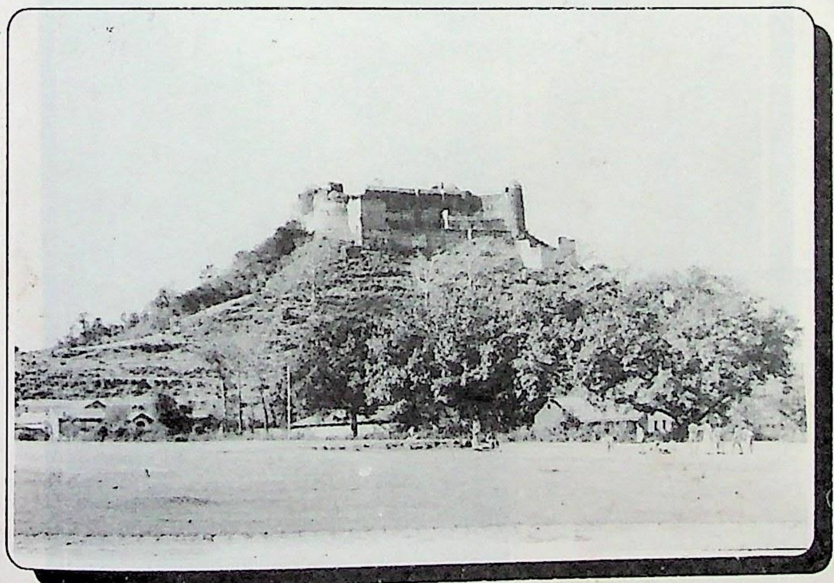
मंगला देवी का किला



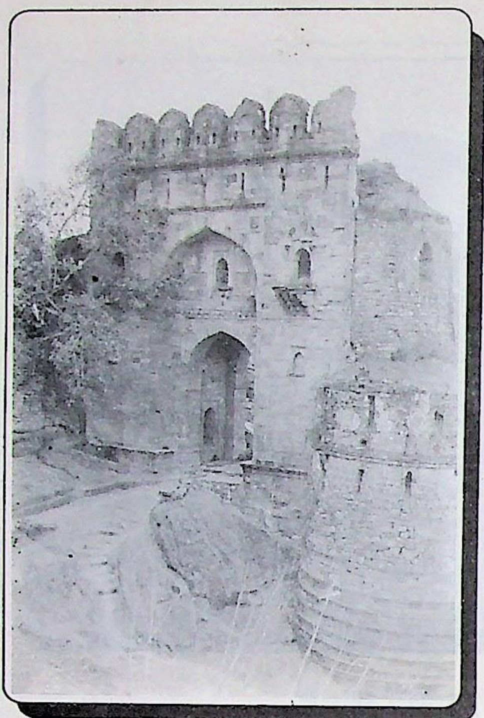
जगानू का दुर्ग



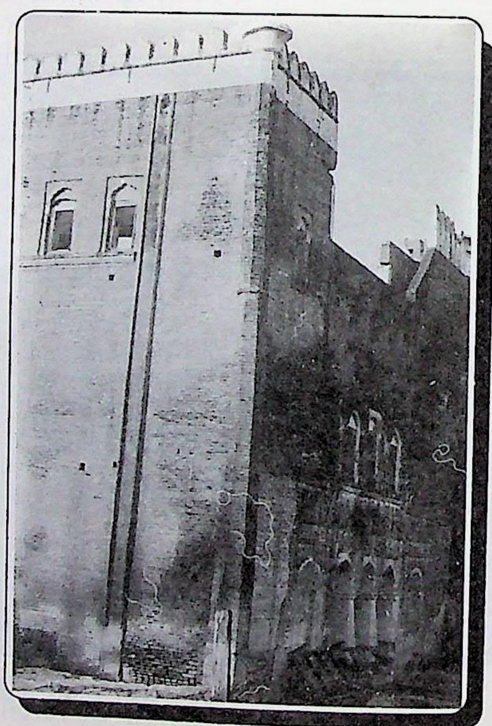
ववनेरगढ़ का किला



रियासी का किला



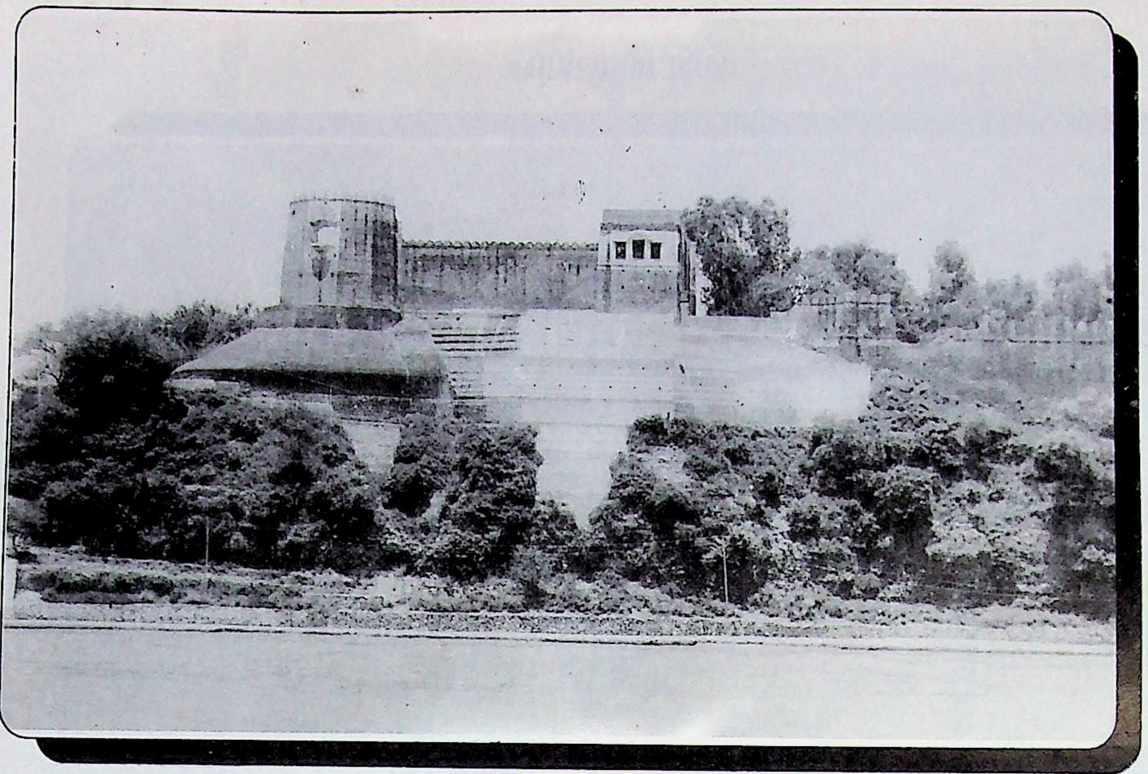
ढेरगढ़ का किला



विजयपुर का महलनुमा किला



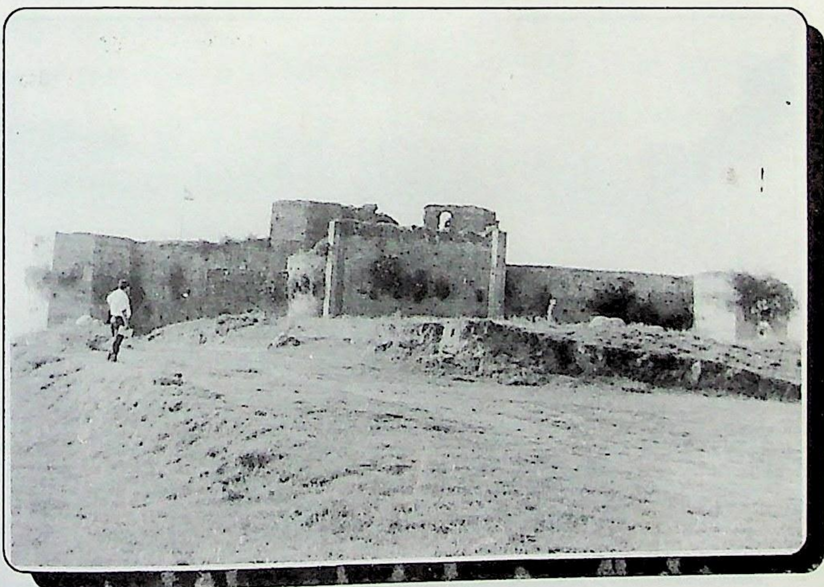
बसोह्ली का किला



अखनूर का किला



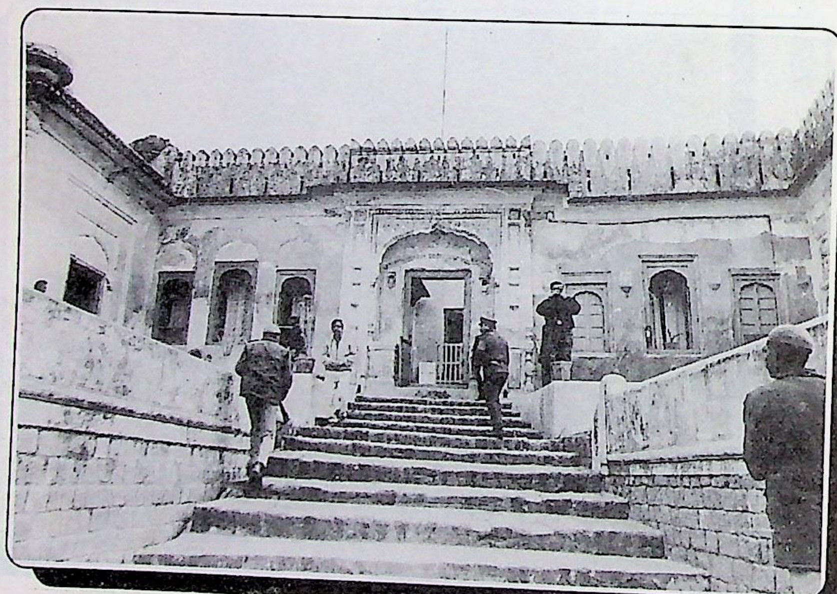
जसरोटा का किला



राजौरी का किला



महौरगढ़ का किला



रामनगर का किला

गाँव है जो एक पहाड़ी पर बसा है। यहाँ से दुर्ग तक पहुँचना इसलिए आसान नहीं क्योंकि मार्ग में बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं।

किले के उत्तर में पच्चास मीटर की दूरी पर एक अति भव्य देवी मंदिर है जो जालन्धरा देवी की समर्पित है। ऊँची पीठ पर बने इस मंदिर का वास्तुशिल्प विलक्षण एवं चामत्कारिक है। इस की बाहरी दीवारों में जो तक्षण कार्य हुआ है वह डुग्गर की समुन्नत वास्तुकला का दिग्दर्शक है। अन्तराल और गर्भगृह योजना पर आधारित यह दिव्य मंदिर प्रस्तर-खंडों से निर्मित है। इस का वास्तु विन्यास अद्‌भुत एवं दर्शनीय है। डुग्गर क्षेत्र में यह पहला मंदिर है जिस की बाह्‌य दीवारों में पौराणिक देवी देवताओं के अतिरिक्त कामसूत्र से सम्बन्धित आसन भी अंकित हैं। जनश्रुति है कि यह देवी मंदिर प्राचीन है किन्तु किले का निर्माण करते समय इस का उद्धार किया गया। जालन्धरा देवी को इस किले की आधिष्ठात्री माना जाता है।

देवी मंदिर से आधा किलोमीटर उत्तर में एक विशाल स्नान गृह है जिस की ड्योढ़ी में द्वारपालों की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। यह मूर्तियाँ अनुमानतः डेढ़ मीटर ऊँची हैं और कला की दृष्टि से अनुपम हैं। किले के निकट एक चट्टान पर सिपाही और दूसरी चट्टान पर पाँव के निशान अंकित हैं। इस के अतिरिक्त पूरे गाँव में वास्तु विधा से सम्बन्धित कई पुरावशेष बिखरे पड़े हैं जिन के अवलोकन से यह अनुमान लगाना सहज है कि कोटली न केवल ऐतिहासिक गाँव है अपितु यह डुग्गर का एक सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा है।

चनैनी के इतिहास का अध्ययन करने से विदित होता है कि कोटली-गाँव 1822 ई० के पूर्व चनैनी राज्य का ही एक अंग था। शुद्ध महादेव तीर्थ की यात्रा करने वाले यात्रियों के लिए यह चनैनी राज्य का पहला पड़ाव था। यहाँ कई मंदिर, विश्रामालय, स्नान घाट एवं धर्म-स्थल थे। सन् 1823 ई० में बन्दरालता का राजा बनने के बाद राजा सुचेत सिंह ने चनैनी पर हमला किया और चनैनी के राजा के महल को आग लगा कर जला डाला। चनैनी के राजा

दयाल चन्द ने अपना परिवार शिवगढ़ दुर्ग में भेजा और स्वयं वह पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह से भेंट करने लाहौर चला गया। लाहौर में उसने महाराजा रंजीत सिंह से गुलाबसिंह के नाम आज्ञा पत्र जारी करवाया जिस में गुलाब सिंह को चनैनी की जागीर राजा दयाल चंद को लौटाने का आदेश दिया। गुलाब सिंह ने इस जागीर से कोटली, उधमपुर और बटोत का क्षेत्र छीन लिया। उधमपुर और बटोत पर गुलाबसिंह ने अधिकार किया और कोटली का इलाका उसने अपने छोटे भाई राजा सुचेत सिंह को सौंपा। राजा सुचेतसिंह ने 1823 ई० में कोटली पर अधिकार करने के बाद इस किले का निर्माण एक सीमावर्ती दुर्ग के रूप में किया। उसने अपने जीवन काल में इस किले का उपयोग भी किया। राजा सुचेत सिंह के देहावसान के बाद महाराजा गुलाबसिंह ने इस किले पर अधिकार किया। उस के शासनकाल में यह किला कारावास के रूप में प्रयुक्त होता रहा। महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में इसे खाली छोड़ दिया गया जिसके कारण यह ढह गया। अब यह केवल खंडहर के रूप में विद्यमान है।

❑❑❑

बल बालता का किला
(गढ़ी का किला)

लघु आकार का यह किला बल-बालता क्षेत्र के गढ़ी गाँव के निकट एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर बना है। इस किले में छोटा-सा सैनिक दल रहता था, अतः इसे गढ़ी या गढ़ी का किला भी कहते थे। यह किला जम्मू उधमपुर सड़क के पास उधमपुर के पश्चिम में अनुमानतः सात किलो मीटर दूरी पर है। यह किला मिट्टी की ईंटों का बना था। सन् 1870 ई० में बेट्स ने जब इसे देखा तो इस में दो बुर्ज ही शेष बचे थे।

जनश्रुतियों के अनुसार इस किले का निर्माण महाराजा रणजीत देव (1733-82) के शासन काल में उस के छोटे भाई घनसार देव द्वारा किया गया। घनसार देव बल-बालता का जागीरदार था। उसके शासनकाल में बलबालता के अड़ओतरों ने क्रिमची के राजकुमार जय सिंह के उकसाने पर विद्रोह किया। घनसार देव ने विद्रोह का दमन किया तथा अपनी सुरक्षा के लिए इस छोटे से किले का निर्माण करवाया।

एक मत यह भी है कि महाराजा रणजीत देव ने दोरानियों की सेना को कश्मीर विजय में सुरक्षा प्रदान करने हेतु इस किले को बनवाया।

महाराजा गुलाबसिंह के शासनकाल में इस किले का सुधार किया गया और जम्मू से श्रीनगर जाने वाले यात्रियों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु इसमें छोटा सा सैनिक दल भी नियुक्त किया गया। किन्तु महाराजा प्रताप सिंह (1885-26) के शासन काल में जब जम्मू श्रीनगर सड़क बन गई तो इस किले को अनुपयोगी समझ कर खाली किया गया। परिणामस्वरूप यह टूट गया।

सन् 1948 में जब इस किले के निकट भारतीय सेना की छावनी बनी तो इस किले को क्षति पहुँची और इस के चिन्ह मिट गये। ❑ ❑ ❑

गोपालपुर का किला

कोट शैली में बना डुग्गर के प्राचीन कोटों का प्रतिनिधित्व सा करता यह बल बालता क्षेत्र का उल्लेखनीय किला है। यह किला उधमपुर के पश्चिम में अनुमानतः 16 किलोमीटर की दूरी पर सुनाड़ी गाँव के निकट स्थित एक टीले पर बना है। जिस की भूमितल से ऊँचाई लगभग दो-सौ मीटर है।

यह एक सुरक्षात्मक किला है। इस के पूर्व में नड्डल नाला पश्चिम में कावलडंगा तथा बड़ौला, उत्तर में पूरी नाला तथा दक्षिण में पलाडंगा है। यह किला चारों ओर से पहाड़ियों और नालों से घिरा हुआ है, अतः सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सूरी नाला इस किले के नीचे प्रवाहमान है।

यह एक कच्चा किला है और इस की दीवारें पत्थर की हैं। दीवारों की चिनाई में चूना-सुर्खी अथवा किसी दूसरे मसाले का प्रयोग नहीं हुआ है। पत्थर के ऊपर पत्थर रख कर चिनाई की गई है। किले के पूर्व-पश्चिम और दक्षिण में पहाड़ी ढलान है अतः इस की ड्योढ़ी तक पहुँचना सरल नहीं।

किले के अन्दर कच्ची कोठरियों के निशान हैं। इनके निकट ही महाकाली की शिला है जो स्थानीय लोगों की श्रद्धा का केन्द्र है।

किले के पचास मीटर नीचे अनेक बाबलियों के अवशेष हैं। जिनकी अट्टारिकाओं में तक्षित प्रस्तर शिलाएं जड़ी गई हैं।

इस किले को 'गोपालपुर का ढेरा' भी कहते हैं। कहते हैं कि कभी यहाँ एक घनी बस्ती थी जिसका अज्ञात कारणों से नाश हुआ। बीस एकड़ भूमि में परिव्याप्त पहाड़ी शैली में बने इस किले का निर्माता 'गोपालदेव' नामक सामंत बताया जाता है। इस किले को 'जम्बालों का किला' नाम से भी अभिहित किया जाता है। गोपालदेव जम्मू की जम्बालशाखा से था।

वह बल बालता के जागीरदार मियां धनसार देव का बेटा था।

इस किले के पश्चिम में बड़ौला की पहाड़ी पर भी एक किला था जिसे 'धारीवाल का किला' कहते थे किन्तु अब इस किले के चिन्ह मिट चुके हैं।

❑❑❑

बाड़ीगढ़ का किला

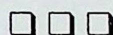
डुग्गर में स्थित शिवालिक पहाड़ियों पर सुरक्षा की दृष्टि से जो दुर्ग बने हैं उनमें बाड़ीगढ़ का किला भी एक है।

स्थापत्य की दृष्टि से यह किला साधारण कोटि का है। यह किला उधमपुर के पूर्व-पश्चिम में उधमपुर धार सड़क पर स्थित बाड़ीगढ़ गाँव के उत्तर में एक पहाड़ी टीले पर बना हुआ है। किले तक पहुँचने के लिए इस गाँव से एक छोटी सी पगडंडी जाती है जो डेढ़ किलोमीटर लम्बी है। जिस पहाड़ी पर यह किला है उसे बाड़ीगढ़ की पहाड़ी कहा जाता है। किले तक पहुँचने के लिए मानसर झील से भी एक सड़क निकाली गई है जो 7 किलोमीटर लम्बी है। यह सड़क चान्नी और पाटी गाँवों से गुज़रती बाड़ीगढ़ पहुँचती है। दूसरी पगडंडी पंगारा से जाती है जो तीन कि.मी. लम्बी है। शैल खंडों से बने इस किले के पूर्व में सैटल गाँव, पश्चिम में चान्नी, उत्तर में थियाल मजालता, पंगारा, दक्षिण में नड्ड कली आदि गाँव हैं।

महामाया मंदिर के पूर्व में घनी झाड़ियों में से जो पगडंडी किले तक जाती है, वह टूट-फूट गई है, अतः बिना मार्ग-दर्शक के किले तक पहुँचना अति कठिन है।

महामाया मंदिर से एक किलोमीटर सीधी चढ़ाई चढ़ने के बाद दो छोटे-छोटे तालाब दृष्टिगत होते हैं, जिन की अट्टारिकाएँ शिलाखंडों से बनी हैं। इन तालाबों में पानी भरा रहता है। एक सौ मीटर चलने के बाद एक पुराना पीपल का वृक्ष दृष्टव्य है और किला उस के सामने खड़ा है।

किले की मुख्य ड्योढ़ी पश्चिमोन्मुख है। इस का प्रवेश द्वार संकीर्ण है और लगभग डेढ़ मीटर चौड़ा है। ड्योढ़ी की ऊँचाई पाँच मीटर के करीब है। ड्योढ़ी के अन्दर कोठरियों के अवशेष बिखरे हैं। कुछ दूरी पर वर्गाकार एक पक्का जलाशय है जो छः मीटर के करीब गहरा लगता है। यह पत्थर की ईंटों का बना है और इस के भीतरी भाग में बज्रलेपन हुआ है। तालाब के पूर्व-उत्तर में एक टूटा अट्टालक खड़ा है। यह किला बीस मीटर वर्गाकार में बना लगता है। इसका बाह्य रूप निरीक्षण केन्द्र जैसा है, अतः सम्भव है कि यह दुर्ग मनकोटिया राजाओं ने मझालता-साम्बा सड़क पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से निर्मित किया हो। अब यह किला ध्वस्त-अवस्था में है।



टिप्पणी :

1. लोक-परम्परा इस किले को राजा मानकदेव की निर्मिति मानती है किन्तु स्थापत्य की दृष्टि से यह किला 17वीं शताब्दी की निर्मिति लगता है। स्थानीय लोगों के अनुसार 1947 में इस किले का चौकीदार लक्खू था। उस के चले जाने के बाद यह किला वीरान हुआ।

   सन्दर्भ ग्रंथ-

   डुग्गर का इतिहास-'शिव निर्मोही'

शिवगढ़ का किला

डुग्गर में निर्मित गिरि दुर्गों में एक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय दुर्ग शिवगढ़ का किला है जो चनैनी के पूर्व में स्थित गौरी कुंड की ऊँची पहाड़ी पर पहाड़ी शैली में बना है। इस किले तक पहुँचने के लिए कई मार्ग हैं। मुख्य पगडंडी गौरीकुंड से जाती है जो अनुमानतः दस किलोमीटर है।

यह क़िला पहाड़ी के शिखर के ऊपर लकड़ी और शिलाखंडों से बना है। किले में महल भी है जो कला की दृष्टि से सामान्य कोटि का है। इस में जल का समुचित प्रावधान है।

इस किले का निर्माण चनैनी के राजाओं ने आपाद्काल में अपने परिवार की सुरक्षा के लिए करवाया था। इस किले को दुर्जय माना जाता रहा है। शत्रु सेना इसे हस्तगत करने में कभी भी सफल नहीं हो सकी।

सन् 1822 ई० में बन्दरालता का राजा नियुक्त होने के बाद राजा सुचेतसिंह ने चनैनी पर हमला किया तो चनैनी के राजा दयालचन्द ने अपना परिवार इस किले में रखा। राजा सुचेतसिंह ने चनैनी के राजमहल को आग की भेंट करके उसे तो जला कर राख कर दिया किन्तु शिवगढ़ पर अपना आधिपत्य स्थापित न कर सका।

अन्ततः चनैनी के राजा दय़ालचन्द ने लाहौर दरबार में पेश होकर चनैनी की जागीर को तो बचा लिया किन्तु उसे अपनी जागीर का एक बहुत बड़ा भू-भाग राजा गुलाबसिंह और राजा सुचेतसिंह को सौंपना पड़ा। नई संधि के बाद राजा दयालचन्द ने शिवगढ़ का किला खाली किया और वह अपना

परिवार लेकर चनैनी आ गया। राजा दयालचन्द के शासनकाल के बाद यह ऐतिहासिक किला कई दशकों तक उपेक्षित रहा। अन्तत: चनैनी के अन्तिम राजा रामचन्द ने इस किले के स्वरूप को बदला और इसे महल का रूप दिया। इस महल को 'राजा दा बौंगलू' नाम से अभिहित किया जाता रहा।

सन् 1948 ई० में चनैनी जागीर का जब रियासत जम्मू कश्मीर में विलय हुआ तो किसी ने भी न तो इसका विकास किया और न ही इस की ओर कोई विशेष ध्यान दिया। परिणामस्वरूप यह किला ढह जाने के कारण खंडहर में बदल गया।

आज भी इस किले के पुरावशेष शिवगढ़ की पहाड़ियों में बिखरे पड़े हैं।



सन्दर्भ

1. हिस्टरी आफ पंजाब हिल स्टेट्स
2. डुग्गर का इतिहास
3. तारीख डोगरा देश

लद्धा का किला

डुग्गर में निर्मित पहाड़ी शैली में बने दुर्गों में एक किला लद्धा में उस स्थान पर स्थित है यहाँ दो पहाड़ियों के मध्य में दर्रा है। इस दर्रे से चनैनी से श्रीनगर को मार्ग जाता था। दर्रे के दोनों ओर सघन वन हैं। पूर्वकाल में जब यात्री इस दर्रे से गुज़रते तो चोरों के समूह उन पर टूट पड़ते और उन्हें लूट कर वन्य क्षेत्र में छुप जाते। इस स्थान पर चोरी की घटनाएं प्रायः होती ही रहतीं अतः इस दर्रे का नाम चोर गल्ला और इस के निकट बना किला 'चोर गल्ला का किला' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चोर गल्ला का किला उपलब्ध जानकारी के अनुसार दुरानियों के शासनकाल में चनैनी के राजा शमशेर चन्द (1760-80ई० अनुमानित) के शासन काल में कश्मीर जाने वाले यात्रियों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से बनाया गया। यह किला मादा गाँव के निकट पहाड़ी पर स्थित है।

स्थापत्य की दृष्टि से पहाड़ी वास्तुकला के अन्तर्गत बना यह दुर्ग शिलाखण्डों और लकड़ी से निर्मित था। इस का भूविन्यास वर्गाकार था और किले के भीतर आवासीयकक्ष थे और जल का भी प्रावधान था।

यह किला चनैनी और भूतिराज्यों की सीमा पर स्थित था, अतः इस का जितना राजनैतिक महत्त्व था उससे भी अधिक सामरिक महत्त्व था। इस किले को अपने अधिकार में रखने के लिए चनैनी और भूतिराजाओं की सेना में टकराव होता रहता था।

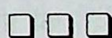
राजा शमशेर चन्द की नूरपुर के राजा ने सन् 1750 ई० में जब हत्या की तो उस का बड़ा बेटा किशोरचन्द चनैनी का राजा बना। उसके काल में

इस किले पर अधिकार करने के लिए भूति के सैनिकों ने कई हमले किए। किन्तु चनैनी के सैनिकों ने इसे असफल बना दिया। किशोरचन्द के बाद उसका इकलौता बेटा तेगचन्द अनुमानतः 1810 ई० में चनैनी की गद्दी पर बैठा। 1850 ई० में झगड़चन्द के पुत्र दयालचन्द ने लड़ झगड़ कर चनैनी की राजगद्दी पर अधिकार किया तो भूति के राजा ने इस किले पर अधिकार करने के लिए अपनी सेना भेजी। भूति की सेना ने इस किले को जब अपने घेरे में लिया तो किले के भीतर केवल तीस सैनिक थे। उन सैनिकों ने भूति के सैनिकों को किले पर अधिकार नहीं करने दिया।

भूति के राजा ने चनैनी के सैनिकों को हतोत्साहित करने के लिए उनका राशन-पानी रोक दिया। अन्ततः चनैनी के सैनिक विवश होकर किले के बाहर आये और उन्होंने भूति के सैनिकों पर हमला बोल दिया। भूति के सैकड़ों सैनिक चनैनी के तीस सैनिकों के सन्मुख टिक न सके। अतः वे लड़ाई के मैदान से भाग गये। इस लड़ाई के बाद एक लोकोक्ति बन गई-एक हिन्ताल (चनैनी का रहने वाला) सात भूतियाल।

महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में जब जम्मू श्रीनगर सड़क बनी तो चोरगल्ला किले का महत्त्व घट गया। कई दशकों तक उपेक्षित रहने के कारण यह किला धराशायी हुआ।

आज इस किले का मुख्य भाग गिर चुका है और केवल कुछेक अवशेष ही बचे हैं जो इस किले के स्थापत्य का दिग्दर्शन कराते हैं।



सन्दर्भ 1-डुग्गर का इतिहास

रामनगर का किला

जम्मू से अनुमानतः एक सौ किलोमीटर पूर्वोत्तर में स्थित रामनगर का किला ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मन्सादेवी नाले की ओर अभिमुख इस किले का स्थापत्य अनुपम एवं विलक्षण है। रामनगर चौगान के उत्तर में स्थित इस किले के चारों ओर परिखा (खाई) है जिसकी गहराई लगभग पाँच मीटर है। इस परिखा का क्षेत्रफल 4 कनाल 10 मरले है। किले में प्रवेश के लिए परिखा पार करने के लिए काष्ठानिर्मित एक संकीर्ण पुल है। जिस की लम्बाई अनुमानतः छह मीटर है।

इस किले का मुख्य प्रवेशद्वार मेहराब युक्त है। प्रवेशद्वार के ललाट बिन्दु में गणेश प्रतिमा तथा दायीं और बायीं दीवारों में दुर्गा और हनुमान की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। ये मूर्तियाँ शिलापट्टों को उकेरकर स्थानीय मूर्तिकारों द्वारा निर्मित लगती है। प्रवेशद्वार का किवाड़ सुदृढ़ और कठोर लकड़ी से निर्मित है।

किले का भूविन्यास वर्गाकार है तथा इस के चार कोणों पर तीन तलों में बने बहुभुजीय अट्टालक (बुर्ज) हैं जो देखने में आकर्षक लगते हैं। दुर्ग की दीवार शिलाखंडों से निर्मित है और इसके ऊपरी भाग में कंगूरे बने हैं। दुर्ग की प्राचीर पर चारों ओर से तीन स्तरों में छिद्र बने हैं जिन से किले के भीतर से शत्रु पर गोली चलाई जा सकती है। किले की ऊँची दीवार इस में बने बुर्जों के साथ जुड़ी हुई है।

भीतर से यह किला 5 कनाल और ग्यारह मरले भूमि में परिव्याप्त है। इस के अन्दर एक खुला सहन है और उसके चारों ओर छोटे-छोटे कक्ष और शस्त्रागार हैं। ये कक्ष दुमंजिले हैं और इन की दीवारों में बने वितान और ताक बेमिसाल हैं।

रामनगर में स्थित शिलाखंडों से निर्मित इस दुर्ग का निर्माण राजा सुचेतसिंह (1801-44 ई०) ने सन् 1822ई० में रामनगर का राजा बनने के बाद करवाया।

आकार में लघु होते हुए भी यह दुर्ग शिल्पांकन की दृष्टि से दर्शनीय है। इस में बने निवास कक्ष सैनिकों के लिए थे। संरचना की दृष्टि से गिरि और स्थल के मिश्रण का यह दुर्ग विलक्षण उदाहरण है।

सन् 1844 ई० में राजा सुचेत सिंह का वध हो जाने के बाद यह दुर्ग उपेक्षित रहा। अन्ततः महाराजा रणवीर सिंह (1856-85 ई०) ने अपने मंझले पुत्र राजा रामसिंह को जब रामनगर का जागीरदार बनाया तो उसने इस दुर्ग को सुरक्षित रखने का प्रयास किया, किन्तु 1899 ई० में राजा राम सिंह की मृत्यु के बाद पुनः यह दुर्ग वीरान हो गया। महाराजा हरि सिंह (1926-48 ई०)के शासनकाल में इसकी मुरम्मत की गई और इसमें राजनैतिक कैदियों को रखा गया।

सन् 1947 ई० के बाद इसे राजतंत्र की निशानी समझ कर वीरान छोड़ा गया। परिणामस्वरूप इस की जर्जरित दीवारें धीरे-धीरे गिरने लगीं और डुग्गर के इतिहास की यह अमूल्य धरोहर मिटने लगी।

अन्ततः रियासत जम्मू व कश्मीर के राज्यपाल जगमोहन ने इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासत को सन् 1974 में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण को सौंप दिया।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने डुग्गर के इस ऐतिहासिक स्मारक का उद्धार करके इस का समुचित संरक्षण किया है।

यह किला एक पर्यटन स्थल के रूप में भी प्रसिद्ध प्राप्त कर रहा है।

टिप्पणी-

राजा सुचेत सिंह से पूर्व रामनगर का नाम बन्दरालता था। बन्दरालता राज्य का संस्थापक राजा ब्रहतरदेव था। उसके वंशज बन्दराल कहलाये। बन्दरालों ने इस क्षेत्र

में अनुमानतः 1550 से लेकर 1822 ई० तक राज्य किया। इन राजाओं की वंशावली में उन्नीस राजाओं के नाम मिलते हैं। जिनमें अन्तिम राजा का नाम चक्रधरदेव था। राजगद्दी खोने के बाद वह हरियाणा प्रान्त के ज़िला अम्बाला के अंतर्गत शहज़ादपुर में जा बसा।

बन्दराल राजाओं के शासनकाल में निर्मित एक किलानुमा महल के अवशेष नगर के पश्चिम में झिगड़ी चौकी मुहल्ले में मिलते हैं। इन पुरावशेषों में शिलाखंडों से निर्मित एक दीवार भी है। जिस की लम्बाई तेरह मीटर है। इस द्वार में स्तम्भों से युक्त एक प्रवेशद्वार है। जिस की ऊँचाई दो मीटर के लगभग है।

बन्दरालों से पूर्व रामनगर क्षेत्र में राणाओं का शासन था। उनके भी पहाड़ी शैली में बने कोट शैली के किले थे। इन किलों के निशान सत्यां, नग्गर, गंध, लाटी, झनुनता, सिया मैहरी आदि गाँवों में मिलते हैं।

रामनगर का किला वर्गाकार है और इस की प्रत्येक भुजा 42-65× 42-65 मीटर है। इस की दीवारों की लम्बाई दो सौ फुट प्रत्येक दिशा में है। मुख्य ड्योढ़ी 10.44 मीटर है।

जनश्रुति है कि इस दुर्ग की एक दीवार में राजा सुचेतसिंह ने भागी चनोतरों को चुनवाया था।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामनगर दा इतिहास-'ओम शर्मा जन्द्ररड़ी'
2. डुग्गर का इतिहास- पृष्ठ 172-76
3. फोर्ट एंड पैलेसेज़ ऑफ वेस्टन हिमालयपृष्ठ 86-88



बसन्तगढ़ का किला

डुग्गर के अगम्य वन्य तथा दूरस्थ पर्वतीय भूखंड में जिन किलों का निर्माण हुआ, उनमें एक किला तहसील रामनगर के अन्तर्गत बसन्तगढ़ गाँव की ढलवां पहाड़ी के शिखर पर बना है।

इस लघु किले के पूर्व में लोहार पनारा गाँव पश्चिम में शिवगली तथा बलोहता, उत्तर में सिर ऊँचा उठाये स्योज धार तथा दक्षिण में पहाड़ियों पर बसे सिया मैहरी पलेई तथा बलेरा आदि गाँव हैं। इस किले की पहाड़ी के नीचे पहाड़ी बर्फीला नाला मडर है जो इस किले को दुर्जेय बनाने में सहायक लगता है। नाले और पहाड़ी के मध्य घना जंगल कोहस्तानी है।

रामनगर के पूर्वोत्तर में अनुमानत: पैंसठ किलोमीटर की दूरी पर बसा बसन्तगढ़, भद्रवाह, बन्दरालता तथा बिलावर को जाने वाले मार्गों को जोड़ता है। मध्यकाल में भी बसन्तगढ़ डुग्गर की राजनीति में चर्चित रहा है। बल्लपुर के राजाओं ने सोलहवीं सदी में इस क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने के बाद इस गांव की पहाड़ी पर एक गिरि दुर्ग निर्मित किया था। किन्तु बन्दराल राजाओं से टकराव हो जाने केबाद वे पीछे हट गये किन्तु अपने पीछे इस किले को अपनी यादगार के रूप में छोड़ गये। बाद में शिलाखंडों से बना बलौरिया राजाओं का यह किला ढह गया और एक ढेर के रूप में बदल गया। सन् 1822 ई० में इस क्षेत्र का शासक सुचेत सिंह बना। उसने बसन्तगढ़ क्षेत्र के महत्त्व को समझा और सन् 1837 ई० में पुराने किले से थोड़ा हटकर पहाड़ी के दूसरे शिखर पर नए किले का निर्माण करवाया। राजा सुचेतसिंह ने किले की ड्योढ़ी पर एक शिलालेख भी लगवाया जिसमें लिखा है, 'संवत् 1894

श्री राजा श्री महाराजा श्री सुचेतसिंह जी दे काले' च बसन्तगढ़ नरैनसिंह हुन्दे हत्थें बनेआ।''

अब यह किला भी धाराशायी है और इस के केवल दो ही बुर्ज बचे हैं, जो चूना सुर्खी से स्थानीय शिला-खंडों से निर्मित हैं और इन की ऊँचाई अनुमानतः आठ मीटर है। बुर्ज की दीवारों में तिरछे रन्ध्र पंक्तियों में बने हैं। कहते हैं कि किले के भीतर कक्ष भी थे किन्तु अब वे ढेर के नीचे दबे पड़े हैं।

बसन्तगढ़ के किले के चारों ओर घाटियाँ, पहाड़ियां और टेकरियाँ हैं, अतः लगता है इस का निर्माण सुरक्षा की दृष्टि से किया गया है।

इस किले को 'गढ़ी' नाम से भी अभिहित किया जाता था जो इस बात का बोधक है कि यह किला छावनी रहा है।

टिप्पणियाँः-

1. 'राम नगर दा इतिहास' के लेखक ओम शर्मा जिन्द्रयाड़ी के अनुसार बसन्तगढ़ का प्राचीन नाम बसार था। सुचेतसिंह ने नया दुर्ग बनाने के बाद इस का नया नाम बसन्तगढ़ रखा।
2. ओम शर्मा जिन्द्रयाड़ी के अनुसार राजा सुचेतसिंह ने मघोट ठाकुर के वंशज शहज़ादा की दो सुन्दर बेटियां मक्खो और मंजो से विवाह किया और शहज़ादा को बसन्तगढ़ का जागीरदार बनाया। अतः यह किला शहज़ादा के संरक्षण में भी रहा।
3. बसन्तगढ़ै दे किले लेख के लेखक स्वर्णसिंह कोहस्तानी के अनुसार बसन्तगढ़ का नया और पुराना किला एक ही पहाड़ी पर बने हैं।

सन्दर्भः-

साढ़ा साहित्य वर्ष 1980 पृष्ठ-31



गढ़ सामना बंज का किला

डुग्गर में जिन किलों का निर्माण पर्वतीय शिखरों के ऊपर हुआ है उन में सब से अधिक चर्चित गढ़ सामना बंज का किला है। यह किला तहसील रामनगर के अन्तर्गत पड़ा सता और सुमरता के मध्य शिवालिक की सब से ऊँची चोटी पर बना है। समुद्र तल से इस ऊँचाई लगभग बाईस सौ मीटर है।

यह किला जिस गाँव में है उसे सामना बंज और जिस स्थान पर बना है उसे 'गढ़' नाम से अभिहित किया जाता है। गढ़ के निकट ही एक बहुत लम्बा चौड़ा मैदान है जिसे 'सुराड़ा' कहा जाता है। इसी मैदान के मध्य में शिला खंडों से बना एक पुराना बुर्ज जर्जरित-अवस्था में खड़ा है। इस बुर्ज के शिखर से भद्रवाह, रामकोट, बिलावर, रियासी तथा जम्मू क्षेत्र का बहुत बड़ा भाग दृष्टिगत होता है। इस बुर्ज के निकट किसी किले के पुरावशेष तो उपलब्ध नहीं किन्तु गढ़ में भवनों के जो अवशेष मिलते हैं उन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ कभी कोई किलानुमा महल अवश्य रहा होगा। किले के अवशेष रूप में केवल ड्योढ़ियाँ ही बची हैं जिन के स्तम्भों में की गई नक्कासी देखने योग्य है। गढ़ में बना सरोवर, सोपान-पथ और कलात्मक बावलियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि यह स्थान ऐतिहासिक महत्त्व का रहा है।

दन्त कथाओं में कहा जाता है गढ़ सामना बंज का किला मनकोट और बन्दरालता के राजाओं के मध्य लड़ाईयों का केन्द्र था। कभी इस किले पर मनकोट के राजा का अधिकार हो जाता तो कभी बन्दरालता के राजा का अधिकार हो जाता। इन दोनों राज्यों के शासकों के टकराव से जनसाधारण को

अपूर्व क्षति पहुँची। इस स्थान के सम्बन्ध में आज भी एक लोकगीत प्रचलित है जिस की प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं:-

सामना बंज बंधरालें दा बन्ना,
मारे मन कोटिये, रोंदियां रन्ना,
दे मेरा गुड्डनु तरड़ पुट्टी खन्ना,

इस गीत से यही ध्वनित होता है कि यह किला सामरिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण था। इस पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए सीमावर्ती राज्यों में कड़ा संघर्ष होता था।

सन् 1822 ई० में जब बन्दरालता और सन् 1823 ई० में मनकोट पर राजा सुचेतसिंह ने अधिकार किया तो यह संघर्ष टल गया। सुचेतसिंह के बाद यह किला उपेक्षित रहा। परिणामस्वरूप यह अपने निशान छोड़ कर मिट गया।

---

1. जनश्रुतियों के अनुसार बन्दरालों के शासन से पूर्व यहाँ किसी राणा का शासन था।
2. मनकोट के पुरुषोत्तम खजूरिया के अनुसार मनकोट के छ: किलों में एक किला सामना बंज भी था जिस का निर्माण मनकोट के राजाओं द्वारा किया गया।
3. सामना बंज पंजाब और भद्रवाह के पुराने मार्ग में स्थित है अत: इस का व्यापारिक दृष्टि से भी महत्त्व रहा है।
4. गढ़ में पुराने महलों के जो पुरावशेष मिलते हैं स्थापत्य की दृष्टि से वे पहाड़ी शैली के हैं।

सन्दर्भ

1. साढ़ा साहित्य-वर्ष-1980
   पृष्ठ संख्या -16



क्रिमची का किला

डुग्गर प्रदेश में सामरिक महत्त्व के जो किले दृष्टव्य हैं उनमें क्रिमची का किला भी एक है। यह किला उधमपुर के पश्चिमोत्तर में 12 किलोमीटर की दूरी पर क्रिमची गांव के पश्चिम में स्थित एक टीले पर बना है। भूतल से इस की ऊँचाई डेढ़ सौ मीटर के लगभग है। टीले की ढलान पूर्व और उत्तर में वीरू नदी की ओर है, अत: इन दिशाओं से किले के ऊपर चढ़ना दुष्कर है। यह किला चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे पर्वतीय शिखरों से घिरा है। अत: सुरक्षा की दृष्टि से अजेय समझा जाता रहा है।

किले में प्रवेश के लिए जो सिंहद्वार बना है, उसे ड्योढ़ी कहते हैं। पश्चिमोन्मुख इस ड्योढ़ी का निर्माण प्रस्तर शिलाओं से किया गया है। जिसके कारण यह सुदृढ़ लगती है। ड्योढ़ी के सिर दल पर महाकाली की भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी जो बाद में खंडित हो जाने के कारण वहाँ से हटा ली गई। ड्योढ़ी में स्थापित गणेश मूर्ति ललाट बिम्ब में विराजमान है। इस ड्योढ़ी की ऊँचाई 3 मीटर के करीब है और यह सवा दो मीटर चौड़ी है। इस के ऊपरी भाग में तेरह सिंह मुख बने हैं। पहाड़ी शैली में बने इस किले की प्राचीर शिलाखंडों से बनी है। प्राचीर में स्थान-स्थान पर दरारें आ जाने के कारण यह कई स्थानों पर टूट गई है और कई स्थानों में अब भी अपने मूल रूप में खड़ी है।

यह किला अनुमानत: छ: कनाल भूमि में फैला है। किले के भीतर एक आयातकार जलाशय है जो बहुत गहरा है। किले में महाकाली का मंदिर दर्शनीय है। इस मंदिर के गर्भ गृह में प्रतिष्ठित महाकाली की मूर्ति लोक तक्षण कला का अत्युत्तम उदाहरण है। मंदिर के निकट आवासीय कक्षों के अवशेष

हैं। इन के अनुशीलन से लगता है इन का निर्माण सामंत और इसके सैनिकों के निवास के लिए किया गया है। अब ये सभी भवन भग्नावस्था में इसी किले में बिखरे पड़े हैं।

कहते हैं कि इस किले का निर्माण भूति के राजा छतरसिंह के शासनकाल (1750-1770 ई० अनुमानत:) में तब किया गया जब दोरानियों ने कश्मीर विजय के लिए क्रिमची लांदर मार्ग का चयन किया। वैसे भी जम्मू और कश्मीर मार्ग पर स्थित होने के कारण इस किले का केवल सामरिक ही नहीं अपितु राजनैतिक महत्त्व भी रहा है।

पहाड़ी शैली में बने इस किले का महत्त्व तब और भी बढ़ गया जब भूति के राजाओं ने भूति के स्थान पर क्रिमची को अपनी राजधानी बनाया और अपने आवास के लिए कई कक्षों का निर्माण करवाया। क्रिमची के राजाओं का सचिवालय भी इसी किले के अन्दर था। इसे स्थानीय लोग 'तहसील' नाम से अभिहित करते थे।

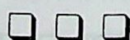
सन् 1834 ई० में जम्मू के राजा गुलाबसिंह ने पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के आदेश पर जब इस किले पर हमला किया तो भूति का राजा हिम्मत सिंह बड़ी वीरता से लड़ा। उसके पास पुराने अस्त्र-शस्त्र थे अत: वह गुलाबसिंह के सामने अधिक समय तक न टिक सका अत: उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा।

गुलाबसिंह ने किले पर अधिकार करने कि बाद भूति के राजाओं का खजाना न मिलने पर इसे क्षतिग्रस्त किया जिस के कारण यह किला टूट-फूट गया।

आज यह किला खंडहर के रूप में पहाड़ी के शिखर के ऊपर देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1-डुग्गर का इतिहास पृष्ठ 183-84



लांदर का किला

डुग्गर के जो ऐतिहासिक स्मारक आज खंडहरों के रूप में अपने गौरवमय और उज्जवल अतीत को वक्ष में छुपाए देखे जा सकते हैं उन में एक लांदर का किला भी है। यह किला उधमपुर जनपद में पंचारी के पूर्वोत्तर में 17 किलोमीटर की दूरी पर दुर्गम पर्वतमाला के बीच में अवस्थित है। इस किले के पूर्व में कट्टी नाला तथा पश्चिम में पनेयारी खड्ड है। किला लांदर गाँव में एक ऊँचे टीले पर बना है। इस में जाने के लिए लांदर से एक पगडंडी जाती है। यह पगडंडी अनुमानत: आधा किलोमीटर लम्बी है।

पहाड़ी शैली में निर्मित इस किले की भूतल से ऊँचाई अनुमानत: चालीस मीटर है। यह किला चारों ओर से शिला खंडों की ऊँची दीवार से घिरा है। इस की टेढ़ी-मेढ़ी दीवारें दोनों नालों की ओर फैली हुई हैं और इन की ऊँचाई भी भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न है। किले के भीतर निवास कक्षों के जो अवशेष उपलब्ध हैं उन्हें देख कर लगता है कि किले के भीतर महल भी रहा होगा।

लांदर के इस किले को 'भूतियालों का किला' भी कहते हैं। इस किले का निर्माण अनुमानत: सत्तरहवीं शताब्दी में हुआ लगता है। दुर्ग स्थापंत्य की दृष्टि से यह पहाड़ी शैली में पत्थरों का बना किला है।

सामरिक दृष्टि से इस किले का महत्त्व रहा है। इस का निर्माण एक ऐसे स्थान पर हुआ है यहाँ शत्रु पक्ष की सेना का पहुँचना अति कठिन है।

यह किला जम्मू-श्रीनगर पगडंडी पर बना था, अत: कश्मीर जाने के लिए राज परिवार के लोग इस का उपयोग पड़ाव के रूप में भी करते थे।

भूतियाल राजाओं ने जब अपनी राजधानी भूति से क्रिमची में बदली तो इस किले का उपयोग वे गर्मियों में आवास के लिए भी करते रहे।

सन् 1834 ई० में गुलाबसिंह ने भूति के अन्तिम राजा हिम्मत सिंह को लड़ाई में पराजित किया तो यह किला भी उस के अधिकार में आया।

महाराजा गुलाबसिंह के शासन काल में शाही दरबार जम्मू से श्रीनगर जाते समय इसी किले में ठहरता था। जम्मू से श्रीनगर जाते हुए उधमपुर के आगे यह अकेला ऐसा आवासीय किला था जिस में राज परिवार के सदस्यों के ठहराने की समुचित व्यवस्था थी। महाराजा प्रतापसिंह (1885-1925) के शासनकाल के पूर्ववर्ती भाग में इस किले का उपयोग होता रहा। किन्तु जब जम्मू बनिहाल कोर्ट-रोड चालू हुई तो पुराना मार्ग प्राय: बन्द ही हो गया। परिणामस्वरूप उपेक्षित रहने से यह किला ढह गया। भूस्खलन से भी इस किले को अपूर्व क्षति पहुँची। अब इस की केवल नाले की ओर जीर्ण दीवार ही बची है, शेष सब कुछ नष्ट हो चुका है।



भीमगढ़ का किला

यह किला जम्मू से लगभग चौंसठ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम दिशा में रियासी में अवस्थित है। किले के उत्तर में अंजी नदी, पश्चिम में चन्द्रभागा उत्तर में सलालकोट की पहाड़ियाँ और दक्षिण में पहाड़ी घाटी के मध्य में प्रवाह मान अंजी नदी है। यह किला एक टीले के शिखर पर बना है। यह मैदान से लगभग डेढ़ सौ मीटर ऊँचा है।

भीमगढ़ का किला डुग्गर के सुदृढ़ और आकर्षक किलों में से एक है। इस की स्थापना सब से पहले एक स्थानीय सामंत भीम ने की थी और उसी के नाम पर इस का नाम भीमगढ़ प्रसिद्ध हुआ। आरम्भ में यह कच्चा किला था। बाद में रियासी राज्य के संस्थापक ऋषिपाल राणा के किसी वंशज ने इस के शिखर पर पत्थरों की एक कच्ची दीवार बनवाई। आपद्काल में रसियाल राजवंश के लोग इसी में शरण लेते थे। 1672 ई० में गजैसिंह जब जम्मू का राजा बना तो उसने अपने छोटे भाई जसबन्त देव को रियासी और अखनूर का क्षेत्र एक जागीर के रूप में प्रदान किया। जसबन्तदेव जम्मू से सेना लेकर आया और उसने रसियाल राणा पर आक्रमण किया। लड़ाई में उसे पराजित करके भीमगढ़ पर अधिकार कर लिया।

जसबन्त देव के दो पुत्र चन्दन देव और रत्नदेव हुए। जसबन्तदेव ने रियासी का क्षेत्र रत्नदेव को और अखनूर का क्षेत्र चन्दन देव को प्रदान किया। रत्नदेव के पुत्र मानसिंह ने भीमगढ़ दुर्ग की दीवार की मुरम्मत करवाई थी। मान सिंह का उत्तराधिकारी जंग बहादुर सिंह था। उसने भी इस दुर्ग का विकास किया उसके बाद मियां दीवान सिंह रियासी का जागीरदार बना।

मियां दीवानसिंह ने जम्मू के राजा जीतसिंह के मंत्री मियां मोटा की हत्या करवाई। पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह ने मियां दीवांन सिंह को इस अपराध के लिए दंडित किया। उसने दीवानसिंह को लाहौर के बन्दी गृह में बन्द किया और उस की रियासी जागीर छीन ली और गुलाब सिंह को उस जागीर का जागीरदार नियुक्त किया।

मियां गुलाबसिंह ने 1815 ई० में दीवान अमीरचन्द को भीमगढ़ में सुदृढ़ दुर्ग बनाने का आदेश दिया। दीवान अमीर चन्द ने 1817 ई० में इस दुर्ग के निर्माण के लिए हिमाचल प्रदेश और पंजाब से राजगिर बुलाए और स्थानीय मज़दूरों की सहायता से किले का निर्माण कार्य आरम्भ किया।

अभी इस किले का निर्माण कार्य चल रहा था कि भूपसिंह ने लाहौर के दरबारियों को सन्तुष्ट करके अपने पिता मियां दीवानसिंह को बन्दीगृह से मुक्त करवा लिया। दोनों बाप-बेटा रियासी आ गए। उन्होंने सलालकोट के ज़मींदारों की सहायता और समर्थन से भीमगढ़ दुर्ग पर धावा बोल दिया। उस समय दुर्ग के भीतर जोरावर सिंह कल्हुरिया और उसके साथ कुछ सैनिक थे। उन्होंने बड़ी वीरता से इस हमले का सामना किया और मियां दीवानसिंह के समर्थकों को किले के भीतर नहीं घुसने दिया।

हमले के समय दीवान अमीरचन्द जम्मू में था। उसने अपने साथ कुछ सैनिक लिए और किले का घेरा तोड़ने के लिए रियासी की ओर बढ़ा। डन्साल के बदनां चिब्ब, चनास के मियां हसना और कुछ सौ सैनिकों का दल लेकर वह जब रियासी पहुँचा तो मियां दीवान सिंह अपने समर्थकों के साथ किले की घेराबन्दी उठाकर पहाड़ की ओर भाग गया। इस प्रकार नव निर्मित यह किला क्षतिग्रस्त होने से बच गया।

इस हमले के बाद मियां गुलाबसिंह स्वयं रियासी आया। उसने दीवान को इस किले को अधिक दृढ़ और सुरक्षित बनाने का आदेश दिया। मियां गुलाबसिंह के आदेश पर इस किले के लिए एक नया प्रवेशद्वार बना और उसके साथ पच्चास

मीटर लम्बी और एक मीटर चौड़ी पत्थरों की दीवार चूना और सुर्खी से बनाई गई। इसके बाद किसी ने भी इस दुर्ग पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

दुर्ग का स्थापत्य

महाराजा हरिसिंह के ए. डी. सी. नवाब खुसरो जंग के अनुसार भीमगढ़ का दुर्ग चित्तौड़ के चौबीस दुर्गों का एक नमूना है। निःसन्देह स्थापत्य की दृष्टि से यह किला राजस्थानी और मुगल वास्तुकला का अद्‌भुत मिश्रित रूप कहा जा सकता है। इस किले के भीतर प्रवेश करने कि लिए सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियों के दायें और बायें सुन्दर वाटिकाएँ विकसित की गई हैं। डेढ़ सौ मीटर की चढ़ाई चढ़ने के बाद पहला प्रवेश द्वार आता है जो बालुका शिलाओं से निर्मित है। इस की ऊँचाई अनुमानतः अढ़ाई मीटर और चौढ़ाई डेढ़ मीटर है। द्वार की शिलाओं पर राजस्थानी शैली का तक्षण कार्य हुआ है। इस के साथ ही एक लम्बी दीवार है जिस की लम्बाई पच्चास मीटर और चौड़ाई एक मीटर से भी अधिक है। इसमें शत्रु पर प्रहार करने के लिए झरोखे बने हैं।

प्रथम प्रवेश द्वार के आगे थोड़ा सा खुला स्थान है। इस स्थान की लम्बाई अनुमानतः 7 मीटर और चौड़ाई पाँच मीटर है। इस के आगे दूसरा प्रवेशद्वार है जो अनुमानतः चार मीटर ऊँचा और अढ़ाई मीटर चौड़ा है। इस के साथ 30 मीटर लम्बा और 5 मीटर चौड़ा खुला प्रांगण है। इसे लांघने के बाद तीसरा प्रवेश द्वार दृष्टिगत होता है। यह पाषाण शिलाओं से निर्मित है। इस की ऊँचाई अनुमानतः पाँच मीटर और चौड़ाई अढ़ाई मीटर है। इस के दायें बायें दीवार है। दायीं दीवार में चतुर्भुजी महाकाली की मूर्ति स्थापित है। महाकाली को सिंह पर आरूढ़ दिखाया गया है। दीवार की बायीं ओर हनुमान की मूर्ति है।

प्रवेशद्वार के साथ ही एक विशाल बुर्ज है जिस की ऊँचाई अनुमानतः सोलह मीटर है। यह बुर्ज इस दुर्ग का सब से बड़ा बुर्ज है। इसके भीतर प्रवेश के लिए प्रवेशद्वार बना है जो पश्चिमोन्मुख है। बुर्ज के तीनों ओर तिरछे झरोखे हैं। तीसरे प्रवेशद्वार के सन्मुख थोड़ा सा खुला स्थान है जो अनुमानतः दस

मीटर लम्बा और तीन मीटर चौड़ा है। इस मैदान के दक्षिणी कोण में दस सीढ़ियां हैं। इन सीढ़ियों को चढ़ने के बाद किले का भीतरी भाग आरम्भ हो जाता है। भीतर से किला गोरखधन्धा सा दिखाई देता है। इस में स्थान-स्थान पर अनेकों सीढ़ियाँ और छोटी-छोटी विथिकाएँ हैं जो दर्शक को कभी एक ओर तो कभी दूसरी ओर घुमाती हैं। पहली सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद जो मुख्य विथि आती है वह इस किले को दो भागों में विभाजित करती है। इसे हम किले का दायां और बायां भाग भी कह सकते हैं। दायें भाग में दूसरा बुर्ज स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए सात सीढ़ियां हैं। ऊपर खुला स्थान है उसी के निकट दूसरा बुर्ज है। इस बुर्ज के ऊपरी भाग में पहले बुर्ज की भाँति शिखर पर छतरी बनी है। शत्रु पर प्रहार करने के लिए तिरछे झरोखे हैं। इस का प्रवेश द्वार छोटा है जो अनुमानतः डेढ़ मीटर ऊँचा और एक मीटर चौड़ा है। किले के इस भाग में अनेक स्थानों पर सीढ़ियाँ बनी हैं जिन्हें चढ़कर किले के अन्दर निर्मित कमरों का अवलोकन किया जा सकता है। इन कमरों की लम्बाई चौड़ाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। इन कमरों के भीतर जो ताक बने हुये हैं उनका उपयोग शस्त्र रखने के लिए किया जाता है। किले के दक्षिणी कोण में बारादरी है। इस पर पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं। बारादरी का छत पक्का है। इस में कई वितान हैं जिन से उत्तर और दक्षिण में स्थित इलाके का अवलोकन किया जा सकता है। बारादरी के वितानों से चन्द्र भागा नदी का दृश्य भी देखा जा सकता है।

बारादरी से कुछ नीचे एक खुले स्थान में भीम देवता का मन्दिर है। यह मन्दिर छोटा किन्तु आकर्षक है। मन्दिर के भीतर लोक देवता भीम और अर्जुन की पाषाण प्रतिमाएँ हैं। ये प्रतिमाएँ मन्दिर के प्रवेश द्वार के सामने वाली दीवार के साथ रखी गई हैं। इन मूर्तियों की ऊँचाई लगभग सवा मीटर है। पहली मूर्ति भीम की है। भीम देवता को अंगोछा पहने दिखाया गया है। उसके हाथ में त्रिशूल और गले में माला है। उस का पेट नंगा है। मूर्ति में भीम का मुँह गोल, आँखें चौड़ी और कमर सामान्य अंकित है। उसके सिर पर मुकुट

है जिस के तीन श्रृंग हैं। भीम की मूर्ति के साथ ही अर्जुन की मूर्ति है। अर्जुन का मुँह लम्बा दिखाया गया है। वह झग्गा पहने हुए है जो घुटनों तक लम्बा है। इस मन्दिर के ऊपर एक खिला हुआ कमल बना है जो बल्लपुर में स्थित हरिहर मन्दिर की याद दिलाता है। मन्दिर का प्रवेश द्वार लगभग डेढ़ मीटर ऊँचा और एक मीटर चौड़ा है। प्रवेश द्वार के मध्य में गणेश की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर में प्रवेश के लिए एक मण्डप है जो तीन ओर से खुला है। यह मन्दिर किले की मुख्य विथि के बायीं ओर है।

मुख्य विथि के बायीं ओर मन्दिर के पार्श्व में शस्त्रागार है। यह कमरा लगभग छः मीटर लम्बा और पाँच मीटर चौड़ा है। इस के दायें बायें दो छोटे-छोटे कमरे हैं। इन का छत ढलुवा ईंटों का बना है। इस के पास ही खुले प्रांगण में पानी का टैंक है जो नवनिर्मित है। टैंक से थोड़ी दूर आगे नीचे की ओर सीढ़ियां हैं, जो बावली तक जाने के लिए बनी हैं। इन सीढ़ियों की संख्या दस है। बावली के पास ही एक छोटा जलाशय है। जलाशय तक पहुँचने के लिए ऊँची-ऊँची सीढ़ियां बनी हैं। यह जलाशय ऊपर से खुला है और इस में केवल बारिश का पानी ही संचित होता था जिस का उपयोग लड़ाई के समय सैनिक करते थे।

पानी के टैंक के निकट सैनिकों के लिए कोठरियां बनी हैं। इस समय ये कोठरियां बिना छत के हैं। इन की लम्बाई अनुमानतः पच्चास मीटर और चौड़ाई अढ़ाई मीटर है। इन कोठरियों के पूर्वी कोण में पूर्वी बुर्ज है। यह बुर्ज लगभग छह मीटर ऊँचा है। इस के भीतर प्रवेश के लिए छोटा सा द्वार है। बुर्ज के भीतर रन्ध्र हैं। किले की दक्षिणी दीवार में तीन बुर्ज हैं जिन में एक बुर्ज नष्ट हो चुका है। इन सभी बुर्जों की छतें छतरी आकृति में हैं।

इस किले की टेढ़ी-मेढ़ी विथिकाएँ भूल-भूलैया का भ्रम पैदा करती हैं।

यह किला अपने समय में दुर्जेय रहा। महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल में इस किले के भीतर निर्माण कार्य बजीर जोराबर सिंह के शहीद होने तक सन् 1841 में भी चलता रहा। इस किले के निर्माण में उन बन्दियों को भी काम पर लगाया गया जिन्हें जोराबर सिंह ने लद्दाख क्षेत्र में विद्रोहियों के रूप

में बन्दी बना कर जम्मू भेजा था। जम्मू से वे बन्दी रियासी भेजे गये और वे कई वर्षों तक इस के निर्माण कार्य में लगे रहे।

महाराजा गुलाब सिंह के बाद उसके उत्तराधिकारी महाराजा रणवीर सिंह और महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में इस किले का उपयोग शस्त्रागार और कोषालय के रूप में किया जाता रहा। किन्तु महाराजा हरिसिंह के शासनकाल में रियासत के एक अंग्रेज मंत्री वैकफिल्ड ने शस्त्रागार को नष्ट करवा दिया और कोष को जम्मू में स्थानान्तरित करवा कर किले को खाली करवाया। परिणामस्वरूप किला टूट-फूट गया।

सन् 1989 ई० में जम्मू-कश्मीर सरकार ने एक आदेश में इस किले को रियासत के पुरातत्व विभाग को संरक्षणार्थ सौंप दिया।

मार्च 1990 ई० में जम्मू कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल तथा माता वैष्णों देवी स्थापना बोर्ड के अध्यक्ष जगमोहन ने इस किले के उद्धार के लिए बोर्ड के कोष से 17 लाख रूपये की धनराशि जम्मू कश्मीर के सड़क एवं भवन निर्माण विभाग, विद्युत विभाग, वन विभाग को आबंटित की। सड़क और भवन विभाग ने दस लाख रुपये इस के उद्धार में खर्च किये। दो लाख रुपये में किले की प्रदक्षिणा लेता हुआ एक किलोमीटर लम्बा और एक मीटर चौड़ा पक्का पथ तैयार किया गया। शेष धनराशि किले की वाटिका को विकसित करने तथा किले को विद्युत प्रकाश से आलोकित करने में व्यय हुई।

अब भीमगढ़ दुर्ग एक पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। देश-विदेश से सैकड़ों पर्यटक इस के सौंदर्य का अवलोकन करने आते हैं।

---

1. भीम गढ़ किला का निर्माण उपलब्ध जानकारी के अनुसार सन् 1817 ई० में महाराजा गुलाबसिंह के आदेश पर रसियाल राजाओं के कच्चे किला को गिरा कर किया गया। कहते हैं पहले टीले के ऊपर एक कोठरी भी थी जिस में भीम देवता का पुजारी रहता था।
2. रियासी में चन्द्रभागा के तट के साथ एक पुराने किले की दीवार भी मिली है। इस किला को बाईकोट कहते थे और यह रासियाल राजाओं की निर्मिति माना जाता है।



सलालकोट का किला

यह लघु किला रियासी से सोलह किलोमीटर की दूरी पर उत्तर दिशा में सलालकोट के अन्तर्गत दो पहाड़ियों के मध्य में उस संकीर्ण दर्रे में बना है जिसे बातलगल्ला नाम से अभिहित किया जाता है।

शिलाखंडों और मिट्टी से बना यह किला सन् 1817 ई० में रियासी के पूर्व जागीरदार मियां दीवाना सिंह के अधिकार में था। इस किले की बाह्य दीवारें पत्थर की थीं। किन्तु आवासीय कक्ष मिट्टी और लकड़ी के थे। प्रतिरक्षा की दृष्टि से निर्मित यह किला प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न था। इस के दोनों ओर ऊँचे खड़े पहाड़ प्रहरी के रूप में इसे सुरक्षा प्रदान करते थे। पश्चिम में प्रवाहमान चन्द्रभागा नदी इसे अभेद्य बनाती थी।

परन्तु सन् 1817 ई० में मियां गुलाबसिंह को जब पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने रियासी का ज़ागीरदार नियुक्त किया तो पूर्व ज़ागीरदार मिंया दीवानसिंह और उसके बेटे मियां भूपदेव ने विद्रोह किया जिस का दमन करने मियां गुलाबसिंह अपनी सेना लेकर सलालकोट पहुँचा। मियां दीवानसिंह और उसका बेटा भूपदेव बिना लड़े ही सलालकोट का किला खाली करके पहाड़ों की ओर भाग गये। खाली पड़े इस किले पर महाराजा गुलाबसिंह ने अधिकार कर लिया।

महाराजा रणवीर सिंह (1857-85) के शासन काल में सलालकोट के सामरिक महत्त्व को देखते हुए लघु किला पुराने किले की नींवों पर बनाया गया जिसे 'ड्योढ़ी किला' नाम से अभिहित किया जाने लगा।

इस किले में रणवीरसिंह के समय में सरकारी अधिकारी नियुक्त थे जो यात्रियों की जाँच-पड़ताल करते थे। सेना का एक दल इस किले की सुरक्षा के लिए तैनात रहता था। महाराजा रणवीर सिंह के बाद यहाँ से सैनिक दल हटा लिया गया जिस से यह किला वीरान हो गया।

आज यह किला जीर्णावस्था में खड़ा है। इस किले में एक बड़ा कक्ष है जिसे 'बारूद खाना' कहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. साढ़ा साहित्य- वर्ष 1980
2. डुग्गर का इतिहास-पृष्ठ 177-182
3. फोर्ट एंड पैलेसेज आफ द वेस्टरन हिमालय पृष्ठ 91-92



ध्यानगढ़ का किला

डुग्गर के अति सुरक्षित समझे जाने वाले किलों में ध्यानगढ़ का किला भी परिगणित होता है। यह किला रियासी से 15 किलोमीटर दूरी पर एक ऐसी पहाड़ी पर बना है जिस की प्रदक्षिणा करके चन्द्रभागा नदी आगे बढ़ती है।

किले में प्रवेश के लिए दो ड्योढ़ियां बनी हैं जिन में एक ड्योढ़ी जानुगला में और दूसरी इसके पश्चिम में है।

किले तक पहुँचने के लिए लोरन से मार्ग जाता है। मार्ग में साईं लोजन और नमाल स्थान आते हैं। यहाँ से सीधी खड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद किले की दीवार दृष्टिगत है जो अर्धचन्द्राकार है।

सलाल परियोजना को क्रियान्वित करते समय इस किले को अपूर्व क्षति पहुँची। इस की पूर्वी ड्योढ़ी को तोड़कर ध्यानगढ़ पहाड़ी के चारों ओर सड़क निकाली गई। आज इस किले की केवल पश्चिमी ड्योढ़ी ही बची है, शेष किला धराशायी है।

इस किले का निर्माण कहते हैं महाराजा रणवीर सिंह (1856-85) ने करवाया और इसका नाम अपने चाचा राजा ध्यानसिंह के नाम पर ध्यानगढ़ रखा। कहते हैं कि इस किले में डोगरा राजा अपना गुप्त खज़ाना रखते थे।

सलाल से लेकर ध्यानगढ़ तक चन्द्रभागा नदी के तट के साथ-साथ बारह बुर्ज थे जो निरीक्षण केन्द्र के रूप में प्रयोग में लाए जाते थे।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. साढ़ा साहित्य-वर्ष 1980, पृष्ठ-69
2. डुग्गर का इतिहास-पृष्ठ 177-182
3. फोर्ट एंड पैलेसेज आफ द वेस्टरन हिमालय, पृष्ठ-91-92



देवीगढ़ का किला

यह दुर्ग रियासी के अन्तर्गत घने वन और गगनचुम्बी पहाड़ी शिखरों से घिरे 'शेरगली' गाँव में बना है। यह किला डुग्गर के दूरस्थ दुर्गों में एक है। पहाड़ी टीले पर बने इस किले के पूर्व में लालीकोट, पश्चिम में टोट, उत्तर में मनेओट दक्षिण में बरेओत है। यह किला धंगीधार, कड़क और टिब्बा धार से इस प्रकार आवेष्टित है कि शत्रु पक्ष की सेना का इस तक पहुँच पाना कठिन है। चन्द्रभागा नदी इस किले से दस किलोमीटर की दूरी पर प्रवाहमान है।

रियासी से अनुमानतः 45 किलोमीटर उत्तर में स्थित इस किले तक पहुँचने के लिए जो पगडंडी जाती है वह खुंदारी, खेरीकोट, सराढ़गली, बेसपत, कुरसल गली इत्यादि पहाड़ी गाँवों से गुज़रती हुई शेरगली पहुंचती है। शेरगली में एक खुला मैदान है जिसके एक सिरे पर एक टीला है। यह किला टीले के ऊपर बना है। टीला भूमितल से लगभग डेढ़ सौ मीटर ऊँचा है।

देवीगढ़ का किला लघु है। यह मिट्टी और पत्थर से बना है। इस की दीवारों की चिनाई में चूना-सुर्खी का प्रयोग किया गया था।

इस किले का निर्माण कहते हैं कि राजा गुलाबसिंह ने रियासी का जागीरदार बनने के बाद अनुमानतः सन् 1820 ई० में उस समय करवाया जब रियासी के पूर्व-जागीरदार मियां दीवानसिंह और उसके पुत्र मियां भूपदेव ने रियासी के किले पर अधिकार करने के लिए बिम्हाग और मौहरगढ़ के मुंगलेआल, लाड, तुंदु, कुसु, बस्सन, जज्जु तथा गुल्ली आदि प्रजातियों के मुखियों की सहायता से आक्रमण किया। वज़ीर जोरावर सिंह और उसके साथियों के हाथों पराजित होने के बाद मियां दीवानसिंह जब सलाल से होता

हुआ बिम्हाग की ओर भागा तो मियां गुलाबसिंह ने दीवान सिंह का प्रभाव समाप्त करने के लिए शेरगढ़ी में यह किला बनवाया। मियां गुलाबसिंह ने मियां लहरु गुलेरिया को इस किले का किलेदार और पूरो दोहड़ा को इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया।

जनश्रुतियों के अनुसार मियां गुलाबसिंह ने इस किले में अपना कोष छुपा कर रखा था। महाराजा रणजीत सिंह के देहावसान के बाद खालसा दरबार द्वारा नियुक्त कश्मीर के गर्वनर के कानों में खज़ाने की भनक पड़ी तो उसने खालसा सेना का एक दल इस किले पर अधिकार करने भेजा। किन्तु किले की सुरक्षा के लिए तैनात सैनिकों ने खालसा सेना का मुकाबला किया। परिणाम स्वरूप यह किला ध्वंस होकर खंड़हर का ढेर बना।

इस किले के पुरावशेष शेरगली के टीले पर आज भी बिखरे पड़े हैं।



सानालकोट का किला

यह किला उधमपुर जनपद के अन्तर्गत पौनी गाँव के पूर्वोतर में स्थित एक पहाड़ी शिखर के ऊपर निर्मित है। डुग्गर में कोट शैली में निर्मित किलों का यह प्रचीनतम रूप कहा जा सकता है। इस किले को शालकोट तथा परोल का किला भी कहते हैं। राजस्थान में किले के द्वार को 'पोल' कहा जाता है, सम्भव है 'परोल' पोल का ही पर्यायवाची हो।

शालकोट की संरचना एक गिरि दुर्ग के रूप में की गई है। यह किला चन्द्रभागा नदी के पश्चिमी तट पर स्थित पहाड़ियों की श्रृंखला में एक ऐसे पहाड़ी शिखर पर बना है जहाँ से पंजाब के स्यालकोट के क्षेत्र तक को देखा जा सकता है।

पौनी गाँव से सात किलोमीटर पूर्व में स्थित ठंडा पानी गाँव से इस दुर्जेय दुर्ग को रास्ता जाता है। सड़क के ऊपर आधा कि० मी० की दूरी पर ठंडा पानी गांव है। इस गांव के पूर्व में एक जलधारा प्रवाहित है। इसके पश्चिमी तट पर शिलाओं से निर्मित एक चबूतरा बना है, जिसे राजगद्दी कहते हैं। जलधारा के पूर्वीतट पर सीढ़ीनुमां खेतों के मध्य एक मध्ययुगीन मंदिर के अवशेष दृष्टिगत हैं। मंदिर की भूमि को राजधानी नाम से अभिहित किया जाता है। इसी भूमि में किसी प्राचीन नगर के पुरावशेष उपलब्ध हैं। लगता है कि कभी यहाँ कोई बस्ती रही होगी। यह भी सम्भव है कि यह बस्ती किसी स्थानीय 'राणा' अथवा सामंत की राजधानी रही हो। यह बस्ती पहाड़ी ढलवान पर स्थित है और दुर्ग इस पहाड़ी के ऊपर है। दुर्ग तक पहुँचने के लिए जो पेंचदार संकीर्ण मार्ग है उसके पश्चिम में एक नाला है जो इस पहाड़ी को दो भागों में विभाजित

करता है। सघन चीड़ के ऊँचे और विशाल वृक्षों के नीचे से गुजरते समय कभी-कभी वन्य पशुओं का सामना भी करना पड़ता है। कांटेदार झाड़ियों और चट्टानों को फाँदकर एक किलोमीटर की चढ़ाई चढ़ने के बाद इस किले का प्रथम भाग दृष्टिगत होता है। किले के इस भाग को 'शिविर' कहा जाता है। इस भाग में काले पत्थर से बनी दीवार है जो अनुमानतः छः मीटर ऊँची है। इस दीवार के साथ की भूमि की भराई करके शिविर का आधार बनाया गया है। यह शिविर सम्भवतः निरीक्षण केन्द्र रहा होगा। यहाँ से मैदानी-भाग की गतिविधियों को सुगमता से देखा जा सकता है।

शिविर से टेढ़ा मेढ़ा रास्ता आरम्भ होता है। इस मार्ग के दोनों ओर घने वृक्ष और काँटेदार झाड़ियां हैं। पौन किलोमीटर आगे बढ़ने पर काले पत्थरों की एक दीवार दिखाई देती है जिस के ऊपरी भाग में एक छोटा सा मैदान है। इस मैदान में कई कोठरियों के अवशेष हैं। इस स्थान को 'तबेला' कहा जाता है। जनश्रुति है कि किले की रक्षार्थ अश्व-सेना को इसी स्थान पर रखा गया था।

तबेला के आगे का मार्ग अतिदुर्गम तथा दुर्बोध है। मार्ग-दर्शक के बिना आगे बढ़ना दुष्कर है। यहाँ से आगे पहाड़ी पर चढ़ने के लिए कई मार्ग हैं, किन्तु दुर्ग किस मार्ग में स्थित है, इस की जानकारी केवल पथ प्रदर्शक ही दे सकता है।

दुर्ग तक पहुँचने के लिए सीधी खड़ी पगडंडी का ही अनुसरण करना चाहिए। चट्टानों को काट कर बनी यह पगडंडी अति दुष्कर है। आधा कि. मि. पगडंडी चढ़ने के बाद एक ऊँची चट्टान के ऊपर निर्मित शिखर शैली का एक लघु मंदिर दृष्टिगत होता है। इस मंदिर का शिल्प विधान पहाड़ी के नीचे सीढ़ीनुमा खेतों में बने मंदिर जैसा ही है। पश्चिमोन्मुख इस मंदिर का प्रवेश द्वार अति संकीर्ण है। मंदिर के भीतर गर्भगृह के मध्य में हल्के नीले रंग के पत्थर से निर्मित एक भव्यमूर्ति प्रतिष्ठित है जिसे स्थानीय लोक

कालकदेव या 'शांकाली देवता' कहते हैं। लगता है मूल मंदिर प्रस्तर शिलाओं से बना था, बाद में समय-समय पर इस का उद्धार किया गया है। इस मंदिर का प्रदक्षिणा पथ अनाच्छादित है और इस की परिधि अनुमानतः छः मीटर है।

इस मंदिर से आधा किलोमीटर चढ़ाई चढ़ने के बाद शालकोट दुर्ग के दर्शन होते हैं। अनुमानतः तीन सौ मीटर परिधि में परिव्याप्त पहाड़ी के शिखर पर उत्तर की ओर सौ मीटर के लगभग लम्बी और पाँच मीटर के लगभग ऊँची काले पत्थरों की बिना किसी मसाले से चिनी गई एक सुरक्षात्मक दीवार है। इस दीवार के साथ ही ऊपरी सिरे के ऊपर एक छोटे से दूहे के ऊपर बिना छत के एक मचान सा बना है। जिस की दीवारें प्रस्तर-शिलाओं की हैं। कहते है कि आपद् समय राजा अथवा राणा इस के ऊपर चढ़ जाता था। और इस प्रकार वह शत्रु सेना के हाथ नहीं आता था। शत्रु-सेना का यदि कोई सैनिक मचान पर चढ़ने का प्रयास करता तो वह अपनी खड्ग से उस का वध कर देता था। मचान के ऊपर बैठा हुआ राजा या सामंत तब तक पराजय स्वीकार नहीं करता था जब तक उसका खाद्यान्न और जल का भंड़ार समाप्त नहीं हो जाता। इस मचान के पश्चिमी भाग में पहाड़ी की ढलान इतनी गहरी है कि वहाँ से चढ़ना और उतरना असम्भव है।

शिखर भाग में यहाँ एक छोटा सा मैदान है, वहाँ चैत्य-आकार का एक छोटा सा असलाखाना भी है। जिस का छत खुली छतरी के आकार में है। पश्चिमोन्मुख इस भवन का प्रवेशद्वार अनुमानतः पौन मीटर ऊँचा और आधा मीटर चौड़ा है। इस की ऊँचाई अढ़ाई मीटर के करीब है। इस का छत गोल है और फर्श कच्चा है। इस भवन के सन्मुख खुला प्रांगण है और उसके साथ कोठरियों के अवशेप नीवों के रूप में दृष्टव्य हैं। सम्भवतः ये कोठरियां राज प्रसाद का अवशेष हैं।

यह दुर्ग अपने समय में दुर्जेय रहा होगा इस का निर्माण आपद्-काल में शरण-स्थली के रूप में किया गया लगता है।

इस दुर्ग के निर्माता और निर्माण काल के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। राजदर्शनी के लेखक गणेशदास बटैहड़ा के अनुसार इस किले का निर्माण स्यालकोट के राजा साहलवान ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में तब करवाया जब उसे स्यालकोट छोड़ना पड़ा। इतिहासकारों के अनुसार राजा साहलवान के शासनकाल का समय 979 ई० से लेकर 997 ई० के बीच का है। यदि यह सत्य है तो यह किला एक हजार वर्ष से भी पुराना है। लोकपरम्परा भी इसे राजा सालवाहन का ही किला मानती है। एक दन्त कथा के अनुसार राजा साहलवान को जब किसी कारण स्यालकोट से भागना पड़ा तो वह अपनी सुरक्षा के लिए पहाड़ों की ओर आया। उसने सब से पहले पौनी के निकटवर्ती पहाड़ी पर अपना शिविर लगाया। वहाँ उसने एक कोट शैली में छोटा सा दुर्ग बनवाया, किन्तु उसे वह स्थान सुरक्षित न लगा तो वह वहाँ से भाग कर सानालकोट की पहाड़ी पर आ गया और उसने इस पहाड़ी पर यह दुर्ग बनवाया।

इस दुर्ग में प्रयुक्त काले रंग के प्रस्तर-खंड स्थानीय नहीं हैं, अतः लगता है कि किसी अस्थानीय शासक की ही यह किला निर्मिति है।

एक मत यह भी है कि इस गिरि दुर्ग का निर्माण यक्षभानु नामक एक सामंत ने करवाया। जम्मू के राजाओं की वशांवली में जिस राजबल्लभ का नाम मिलता है, यक्ष भानु उसी का चाचा था। वह पौनी क्षेत्र का शासक था। नगरकोट के राजा मंगलचन्द ने राजा राजबल्लभ को जब युद्ध में पराजित करके मार डाला तो राजा भानुयक्ष इस दुर्ग को खाली करके राजा मंगलचन्द से प्रतिशोध लेने जम्मू की ओर चला गया। बाद में वह जम्मू का राजा बना। भानुयक्ष पुनः अपने जीवन काल में पौनी के इस दुर्ग में नहीं आया, जिसके कारण यह दुर्ग उपेक्षित रहा।

एक अन्य मत के अनुसार राजौरी के राजा दौलतखान के पुत्र राजा शाहजुमा ने 1390 ई. के लगभग जब पौनी गाँव बसाया, तब उसने यह किला

भी बनवाया। किन्तु यह मत भ्रामक लगता है क्योकि संरचना की दृष्टि से यह दुर्ग प्राक् मुस्लिम काल का है। इस किले में मंदिर की उपस्थिति भी यह सिद्ध करती है कि इस किले का निर्माण किसी हिन्दू राजा या सामंत द्वारा करवाया गया है।

एक मत यह भी है कि दशरथ खोखर ने जब अनुमानतः 1440 ई० में चन्द्रभागा के पश्चिमी क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए तलबाड़ा की ओर अपने पग बढ़ाए तो पौनी के स्थानीय सामंत ने दशरथ खोखर से आंतकित होकर अपनी सुरक्षा के लिए पहाड़ी पर इस किले का निर्माण करवाया।

कुछ भी हो सानालकोट की पहाड़ी पर निर्मित यह दुर्ग दुर्जेय था। कई शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी इस के पुरावशेष आज भी पहाड़ी पर बिखरे पड़े हैं। इन पुरावशेषों पर शोध-कार्य करने की आवश्यकता है।



---

1. दुर्ग स्थापत्य की दृष्टि से सानालकोट दसवीं शताब्दी की निर्मिति लगता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. गजदर्शनी
2. डुग्गर का इतिहास पृष्ठ-183

भारख का किला

डुग्गर के जिन जागीरदारों ने अपने आवास के लिए किलानुमा महल बनवाये उनमें एक ऐसा ही किला आकार का महल जराल वंशीय जागीरदार राय सुकालसी (1825-1860 अनुमानत:) ने सन् 1850 ई. के लगभग भारख में तब बनवाया जब जम्मू कश्मीर का महाराजा बनने के बाद गुलाबसिंह ने उसे तहसील रियासी के अन्तर्गत भारख की जागीर प्रदान की। भारख रियासी से अनुमानत: 37 किलोमीटर और पौनी से बारह किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित है

भारख का किलानुमा महल शेरगढ़ी नाला के पूर्वी तट पर स्थित एक ऐसी छोटी सी पहाड़ी पर बना है जो प्रतिरक्षा की दृष्टि से सुरक्षित है। इस पहाड़ी के दायीं और बायीं ओर प्राकृतिक नाले हैं तथा उत्तर में पहाड़ों की लम्बी श्रृंखला है।

किले तक पहुँचने के लिए शेरगढ़ी नाला के पश्चिमी तट से एक सोपान पथ बना है जो कहीं टेढ़ा तो कहीं सीधा है।

पहाड़ी भूतल से लगभग सौ मीटर ऊँची है। सोपानपथ पहाड़ी के जिस कोण में समाप्त होता है वहाँ से किले तक जाने के लिए सीढ़ीनुमां रास्ता बना है। इस के दोनों ओर दुकानों, मकानों और अट्टालिकाओं के अवशेष बिखरे पड़े हैं। आधा किलोमीटर उत्तर की ओर चढ़ने पर एक छोटी-सी मस्जिद दृष्टिगत होती है जो आयताकार है। मस्जिद में प्रवेशद्वार डेढ़ मीटर ऊँचा और पौन मीटर चौड़ा है। इस का छत ईंटों का है और कक्ष में दो खुले वितान हैं। जिन से बाहर का दृश्य देखा जा सकता है। कक्ष की लम्बाई 12 मीटर

है। इसके साथ ही गुस्सलखाना बना है। मस्जिद से 20 मीटर पूर्व में एक पक्का तालाब है जो अनुमानतः 15 मीटर लम्बा, 12 मीटर चौड़ा और आठ मीटर गहरा है। इसमें सात पक्की अट्टारिकाएँ बनी हैं।

तालाब से पच्चास मीटर की दूरी पर पत्थर की ईंटों से बना भारख का किलानुमा महल है जो चारों ओर से ऊँची दीवारों से घिरा है किले में प्रवेश के लिए जो मुख्य ड्योढ़ी बनी है वह पूर्वोन्मुख है। किले के अन्दर एक खुला सहन है और इस के चारों ओर निवासकक्ष तथा प्रहरियों के लिए कोठरियां हैं। इस किले में निर्मित यह महल दुमंजिला है। स्थापत्य की दृष्टि से यह किला मुस्लिम शैली में है। महल में पुष्पलताओं का अंकन बड़े सुचारू ढंग से हुआ है। इसकी छत लकड़ी की थी जो अब गिर गई है।

इस महल में बने कक्षों के आगे खुले बरामदे हैं और बरामदों में प्रवेशार्थ तीन-तीन मेहराबी द्वार हैं। इसके उत्तर और दक्षिण में जो कक्ष बने हैं उनकी लम्बाई लगभग 10 मीटर और चौड़ाई तीन मीटर है। बड़े कक्षों के साथ छोटे-छोटे वर्गाकार कक्ष हैं। इन कक्षों को गर्म रखने के लिए अंगीठियों का प्रावधान किया गया है।

दूसरी मंजिल में बने कक्षों में बेल-बूटों का जो अंकन हुआ है, वह अनूठा है।

किले की दीवारों की ऊँचाई अनुमानतः दस मीटर है। ये दीवारें एक मीटर के करीब चौड़ी हैं और इनकी चिनाई में शिलाखंडों को जोड़ने के लिए चूना-सुर्खी का प्रयोग हुआ है।

इस किला से पच्चास मीटर की दूरी पर नया बना महल है जिस का प्रवेशद्वार पश्चिमोन्मुख है। यह महल भी ऊँची दीवार से घिरा है। इसके दक्षिण में एक खुला सहन है। सहन के एक ओर मेहाराबी द्वारों से सुसज्जित बरामदा है और बरामदे के पीछे वर्गाकार सभागार है जिस की प्रत्येक भुजा 12 मीटर है। इसके पार्श्व में तीन और मेहराबी द्वार हैं जो तीन कोठरियों के साथ जुड़े

हैं। बड़ी कोठरी की लम्बाई 12 मीटर और चौड़ाई साढ़े तीन मीटर के करीब है। इस की उत्तरी दीवार में तीन ताक हैं। सहन के दक्षिणी सिरे में भी ऐसे ही कक्ष बने हैं।

इस महल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मुस्लिम शैली में है और इस की दीवारें बुर्जरहित हैं।

इस किला आकार के महल के नीचे दर्जनों की संख्यां में निवास कोठरियों के अवशेष बिखरे पड़े हैं। जिस पहाड़ी पर ये अवशेष उपलब्ध हैं उसे 'नगरी' नाम से अभिहित किया जाता है। नगरी जागीरदारों की राजधानी रही है।

सन् 1947 में भारत के विभाजन के बाद इस जागीर का अन्तिम जागीरदार राय मुहम्मद इकबाल अपने परिवार के साथ पाकिस्तान चला गया। पुंछ जनपद से आये कई शरणार्था परिवार भारख में आ बसे। इस उथल-पुथल में इस किले को भी क्षति पहुँची और यह गिर पड़ा।

इस पहाड़ी पर बसे लोगों ने भी अपने अपने घरों का परित्याग किया और वे पहाड़ी के नीचे भारख गाँव आ बसे। इसका परिणाम यह निकला कि यह किला और इसके आसपास बसा गाँव खंडहरों की प्रदर्शनी मात्र रह गया है।

टिप्पणियाँ

1. तरीख डोगरा देश में यह उल्लेख मिलता है कि राजौरी के राजा शाह जुमान खान ने पौनी और भारख के गांव सन् 1387 ई0 में गद्दी पर बैठने के बाद बसाये।

2. भारख की जागीर तेरह गाँवों पर आधारित थी जिन के नाम--ऐल, ननोत, बरनाह, मल्ला, सरैना, गजोड़, खैरालैड, झंगड़, कुरूल, रणसु, पोंग कोटला तथा भारख हैं।

3. भारख के तीन जागीरदारों के नाम मिलते हैं और वह हैं

   1) मुहम्मद सुकालसी (1840-80 ई0 अनुमानत:)

2) राय मुहम्मद लालसी (1880-1910 अनुमानतः)

3) राय मुहम्मद इकबाल (1910-1947 अनुमानतः)

4. भारख लोहे की खान के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा इसके कारण भारख जागीर की आय में वृद्धि होती रही और यह जागीर समृद्ध रही।

5. भारख का क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध रहा। 'शिवखोड़ी' का पावन तीर्थ इसी के अन्तर्गत था।



गुलाबगढ़ का किला

यह किला तहसील महौर के अन्तर्गत गुलाबगढ़ गाँव में है। सीमावर्ती इस किले को वन्य दुर्ग के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है।

महौर से 45 कि. मी. दूरी पर अवस्थित यह किला गुलाबगढ़ गाँव में स्थित है। निक्कन पहाड़ी की ढलान में निर्मित यह प्रस्तर दुर्ग पश्चिम में किनदोरा और उत्तर में गुलाबगढ़ नाले के घेरे में है। चतुष्कोणीय इस किले की दीवारों में घाड़मां प्रस्तर खंड लगे हैं और चिनाई में चूना-सुर्खी का प्रयोग हुआ है। इस का सिंह द्वार पूर्वोन्मुख है जो प्रस्तर-शिलाओं और काष्ठ से निर्मित है। इस की प्राचीर की ऊँचाई अनुमानतः साढ़े छः मीटर है। किले के भीतर सैनिकों के आवास के लिए कोठरियाँ थीं जो अब पूर्ण रूपेण ढह गई हैं। इस किले के भीतर पानी की व्यवस्था के लिए छोटा सा जलकुंड था जिस का उपयोग आपद काल में ही किया जाता था। वैसे सैनिकों के लिए किले के बाहर एक बावली थी जिस की अट्टारिकाएँ तक्षित शिला-खंडों से निर्मित हैं।

किले तक पहुँचने के लिए तीन मार्ग हैं। एक मार्ग महौर से बग्गा-अवरोला, टुकसन, लाद, शदोल, खोड़, लार और बरनसाल गाँवों से गुजरता हुआ गुलाबगढ़ पहुँचता है। दूसरा मार्ग गूहल से जाता है। इस मार्ग से सलधार, बठोई, साढ़ और बग्गा मुख्य पड़ाव हैं। वग्गा से आगे बरनसाल तक का मार्ग पहले मार्ग से जुड़ा है। तीसरा मार्ग कजाकी पहाड़ को लाघंकर डडहाला खोड़ की ओर से जाता है। इसी मार्ग से एक पगडंडी अगराला, नोहज और देवल से होती हुई गुलाबगढ़ पहुंचती है।

गुलाबगढ़ के पश्चिम में कौंसर नाग की पहाड़ी है। यहाँ से एक मार्ग

नन्दी मार्ग की ओर जाता है जो कश्मीर घाटी का सुरम्य पर्यटन-स्थल है। उन्नीसवीं शताब्दी में और उससे बहुत पहले गुलाबगढ़ से यात्री कश्मीर जाते थे। अत: सीमा पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से इस दुर्ग का निर्माण महाराजा गुलाबसिंह ने करवाया।

स्थानीय दन्तकथाओं के अनुसार कश्मीर पर अधिकार करने के बाद महाराजा गुलाबसिंह एक बार नंदीमर्ग के मार्ग से इस क्षेत्र में आया। सामरिक दृष्टि से उसे यह इलाका बहुत महत्वपूर्ण लगा। अत: उसने बरनसाल गांव के निकट इस किले का निर्माण कर इस का नामकरण अपने नाम से गुलाबगढ़ किया।

महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल (1885-1925 ई०) तक इस किले का उपयोग किसी न किसी रूप में होता रहा। किन्तु जब जम्मू श्रीनगर कोर्ट-रोड बन गई तो यह दुर्ग उपेक्षित रहा। कहा जाता है कि डोगरा राजाओं ने इस दुर्ग का विकास शरणस्थली के रूप में इसलिए किया कि यदि उन्हें किसी कारण कश्मीर से भागना पड़े तो वे इस निकटस्थ दुर्ग में शरण ले सकें।

महाराजा हरिसिंह (1926-1948 ई०) के शासन काल में वैक फिल्ड की नीति के अनुसार इस दुर्ग से सैनिक टुकड़ी हटा ली जिसके परिणाम स्वरूप यह दुर्ग खाली रहने के कारण धराशायी हुआ।

अब यह दुर्ग खंडहर के रूप में गुलाबगढ़ गाँव में खड़ा है। इस की क्षतिग्रस्त दीवारें जर्जरित अवस्था में हैं।

इस किले के निकट बरनसाल गाँव में ब्राह्मणों के भी कुछ घर है। लगता है किले के भीतर कोई मंदिर भी रहा होगा जिन के पुजारी ये ब्राह्मण रहे होंगें। किन्तु इस समय दुर्ग के भीतर किसी मंदिर के अवशेष उपलब्ध नहीं हैं और यह किला भीतर से खाली है।



बट्टल का किला

काष्ठ से बना यह डुग्गर का अकेला ऐसा किला था जो दुर्ग-स्थापत्य की दृष्टि से शेष दुर्गो से भिन्न था। रामवन-गूहल मार्ग पर 'हडोक' स्थान में चन्द्र भागा नदी के दायें तट पर बना यह किला देखने में विलक्षण और अद्‌भुत है। इस की प्राकार पत्थर की थी और इस के भीतर बने निवास कक्ष लकड़ी के थे। चन्द्रभागा और चैंजी नाला का यहाँ संगम है, वहीं इस किले के भग्नावशेष दृष्टव्य हैं।

इस किले के पूर्व में धर्मकुण्ड है जो इस किले से अनुमानत: तीन किलोमीटर दूर है। यह एक ऐसी पहाड़ी ढलान पर बना है जिस पर चढ़ना सहज नहीं। सामरिक दृष्टि से भी यह किला महत्वपूर्ण रहा है।

चन्द्र भागा नदी और विचलरी नाला इसे प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते हैं और चैंजी नाला इस के नीचे प्रवाहमान है।

यह किला जम्मू से श्रीनगर जाने वाले पुराने मार्ग में बना था, अतः इस का उपयोग एक पड़ाव के रूप में भी होता रहा। मोटर गाड़ियों की सड़क बन जाने के बाद यह मार्ग उपेक्षित रहा जिस के कारण यह किला भी नष्ट हो गया।

सन् 1870 में संकलित 'ऐ गजेटर आफ कश्मीर' पुस्तक में इस किले का उल्लेख हुआ है। और इस के सम्पादक वेट्स ने इस किले को प्रदेश के अन्य किलों से अलग माना है।

इस किले के निर्माता के विषय में कोई जानकारी नहीं किन्तु अनुमान

है कि बट्टल के ही किसी शासक या सामंत ने सुरक्षा की दृष्टि से इस का निर्माण करवाया होगा।

टिप्पणियाँ

1. बट्टल वर्तुल का अपभ्रंश है। राजतंरगिणी में वर्तुल का उल्लेख एक अलग राज्य के रूप में हुआ है। राजतरंगिणी की आठवीं तरंग के 287 वें श्लोक में वर्तुल की राजकुमारी का नाम विज्जला उल्लिखित है। विज्जला का विवाह कश्मीर के राजा उच्चल से हुआ। इसी तरंग के 538 से 541 वें श्लोक में डुग्गर प्रदेश के जिन राजाओं का उल्लेख हुआ है उन में बर्तुल देश के राजा का नाम सहज पाल वर्णित है। डुग्गर के इतिहास का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि डिंग बट्टल नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र ही प्राचीन वर्तुल था। इस राज्य के पूर्व में धर्मकुंड पश्चिम में थुरू पट्टियां और दक्षिण में हंदरगली तक का क्षेत्र परिसीमित था। सांवला कोट, छछुआ, महाकुण्ड, ठठारका, दर्शन, टेडा, तरसागली, लपरी-टाप, ईद, हंदरागली, खन्नीकोट आदि गाँव इस राज्य के अन्तर्गत थे। यह राज्य कभी अरनास तक फैला था, किन्तु बाद में इस की सीमा सिमटती गई। सतारहवीं सदी के अन्त तक यह राज्य कुछ ही गांवों तक सीमित रहा। महाराजा रणजीत देव (1733-1783) ई० के शासनकाल में इस का अन्त हुआ। इस राजवंश के सदस्यों को राय नाम से ही सम्बोधित किया जाता है।

1. बट्टल के किले का निर्माण लगता है सतरहवीं शताब्दी में हुआ। काष्ठनिर्मित यह किला वर्तुल के प्राचीन स्मारकों में एक है।



डोडा का किला

जम्मू के पूर्वोत्तर में स्थित डोडा कस्बे के पश्चिम में निर्मित जिस किले का उल्लेख ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है उस का अस्तित्व आज कहीं दृष्टिगत नहीं।

'ए गजेटर आफ कश्मीर' में वीट्स ने इस किले का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह किला चन्द्रभागा के तट पर स्थित है। पहाड़ी के आँचल में है और भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम में 21 मील (अनुमानत: साढ़े तैंतीस किलोमीटर) की दूरी पर अवस्थित है। इसके नीचे चन्द्रभागा प्रवाहमान है। किले तक पहुँचने के लिए आधा घंटा का समय लगता है। यह कस्बा से 500 गज (अनुमानत: 480 मीटर) दक्षिण में है। यह मिट्टी की चिनाई से बना है। वर्गाकार इस किले के प्रत्येक कोण में बुर्ज तो हैं किन्तु खाई नहीं है। इस का प्रवेश द्वार पूर्वोन्मुख है और यह किला घने वृक्षों की छाया से आच्छादित है।

वीट्स के वर्णन से इतना स्पष्ट है कि डोडा में भी एक किला था। कहा जाता है कि सिक्ख काल में गुलाब सिंह ने डोडा में किला बनवाया। जिस के बुर्ज दायीं ओर थे। इस किले की दीवारें 4 फुट चौड़ी और चालीस से पच्चास फुट ऊँची थीं।

डोगरा राजाओं के शासनकाल में इस किले का उपयोग कारावास के रूप में भी होता रहा। वीट्स के अनुसार बजीर हट्ठु को पहले इसी किले में एक कैदी के रूप में रखा गया और उस का परिवार डोडा कस्बा में रहता था। लगता है कि गजपत का किला बनने के बाद हट्ठु को वहां स्थानातरित किया गया और वहीं उसने अपना शरीर छोड़ा।

सन् 1952 में सरकार के निर्देश पर यह किला गिराया गया। यहाँ महाविद्यालय है, वहीं यह किला था।

पोगल (रामसु) का किला

वीट्स ने 'गजेटर आफ कश्मीर' में इस किले का उल्लेख 'हरकर्तन्द (Harkartand) का किला नाम से किया है। बनिहाल तहसील के अन्तर्गत यह किला विचलरी नदी के बायें तट पर स्थित पहाड़ी पर बना है। इस किले के नीचे शाहबाद से एक पगडंडी राहमोर दर्रा से बनिहाल की ओर जाती है।

बीट्स के अनुसार इस किले में दस सिपाहियों का दल तैनात रहता था। यह किला यात्रियों की सुरक्षा के लिए निरीक्षण केन्द्र के रूप में बनाया गया था। जब जम्मू से श्रीनगर के लिए मोटर गाड़ियों की सड़क बन गई तो इस किले का कोई उपयोग न रहा, अत: सैनिक दल हटा लेने के बाद यह किला खाली रहा और बाद में खंडहरों में बदल गया।

---

1. पोगल के विषय में कहा जाता है कि यह क्षेत्र भद्रवाह के अन्तर्गत एक जागीर के रूप में था। राजा पहाड़चन्द के शासन काल में राय अज़मत इस क्षेत्र का जागीरदार था। सेजधार उस की राजधानी थी। वहां भी एक किला था जिसे पोगल का किला कहते थे। वजीर नत्थु ने भद्रवाह को जीतने के बाद सेजधार पर हमला किया। उसने राय अज़मत को लड़ाई में पराजित करने के बाद उस का किला नष्ट किया और महलों को आग लगा दी जिससे पोगल के क़िले को बहुत क्षति पहुँची। आज भी सेलधार में महल और किला के निशान मौजूद हैं।



कास्तीगढ़ का किला

तहसील डोडा के अन्तर्गत डोडा से 12 किलो मीटर की दूरी पर ऐतिहासिक गाँव कास्ती गढ़ में एक किले के अवशेष उपलब्ध हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे किश्तबाड़ के शासकों के शासन काल के समय के हैं।

कास्ती गढ़ किले तक पहुँचने के लिए गनिका गांव तक बस सेवा उपलब्ध है इस के आगे लिद्दर खोल नदी है। इस नदी को लुद्दर गंगा नाम से भी अभिहित किया जाता है। नदी पार करने के लिए झूला पुल बना है।

कास्तीगढ़ का किला चन्द्रभागा और लिद्दर खोल नदी के बीच में स्थित रहा है। सामरिक दृष्टि से यह अति महत्त्वपूर्ण किला था। शत्रु सेना का इस किले तक पहुंच पाना कठिन था।

इस किले का उल्लेख किश्तबाड़ के इतिहास के अतिरिक्त वोट्स संकलित 'ऐ गजेटर आफ कश्मीर' में भी मिलता है।



किश्तबाड़ का किला

डुग्गर के इतिहास में जो किले बहुत ही चर्चित रहे उन में एक किश्तवाड़ का किला भी है। यह किला डोडा जनपद के अन्तर्गत पुल डोडा से पैंसठ किलो मीटर की दूरी पर किश्तवाड़ नगर के पश्चिम में स्थित एक ऊँचे टीले पर बना है। यह टीला भूमितल से अनुमानतः डेढ़ से दो सौ मीटर ऊँचा है।

किश्तवाड़ के इतिहास का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि इस टीले पर सब से पहले राजा काह्न सेन ने सातवीं शताब्दी में अपने आवास के लिए महल बनाया जिसे बाद में उसके उत्तराधिकारियों ने शाही किले का रूप दिया। राजा काह्न सेन के वंश में ऐसे 45 राजा हुए जिन्होंने किश्तवाढ़ में शासन किया।

इन राजाओं में किस-किस ने इस किले के विकास में योगदान दिया, इस का सही विवरण तो नहीं मिलता किन्तु जनश्रुतियों से जो ब्योरा मिलता है उस के आधार पर कहा जा सकता है कि यह किला धूलि दुर्ग की कोटि का था। इस की प्राकार मिट्टी की थी और इस के चारों कोणों में जो बुर्ज थे उन के कोण कहीं लम्बे तो कहीं छोटे थे। दुर्ग का मुख्य प्रवेशद्वार पश्चिमोन्मुख था और इस तक पहुँचने के लिए सोपान पथ था। मुख्य प्रवेशद्वार जिसे ड्योढ़ी भी कहा जाता था, विशाल-दरवाज़े पर आधारित था। दरवाज़ा काष्ठ निर्मित था। ड्योढ़ी के साथ प्रहरियों के कक्ष थे और उसके बाद भीतरी प्राचीर से घिरा राज महल था, जिस की साज-सज्जा पर मुगल शैली की छाप थी। महल के कक्ष, गवाक्ष तथा हवादार सज्जे चित्ताकर्षक थे। किले के साथ

ही शालीमार बाग़ था।

इस राजवंश का अन्तिम राजा मुहम्मद तेग सिंह (1798-1820 ई०)था। इसी के शासन काल में सन् 1821 ई० में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के आदेश पर मियां गुलाबसिंह ने किश्तबाड़ पर आक्रमण करने के उद्देश्य से जम्मू से किश्तगढ़ की ओर प्रस्थान किया। गुलाबसिंह ने एक षड्यंत्र रच कर बिना लड़े किश्तवाड़ के राजा मुहम्मद तेग सिंह को बन्दी बना कर महाराजा रणजीत सिंह के पास भेज दिया और किश्तबाड़ के किले को अपने अधिकार में ले लिया।

1824 ई० में एक अंग्रेज़ यात्री विगने ने इसे देखा तो यह ठीक अवस्था में था। सन् 1870 ई० में फ्रिडरिक डियु ने जम्मू व कश्मीर राज्य के एक अधिकारी के रूप में इस का अवलोकन किया तो उस समय इस किले में तीस सैनिक थे जिन के पास एक तोपखाना भी था। किले में सैनिकों के आवास के लिए जो कोठरियां बनी थीं वे अपने पूर्व रूप में खड़ी थी। महाराजा प्रतापसिंह (1886-1925 ई०) के शासनकाल में भी इस का उपयोग होता रहा। किन्तु महाराजा हरिसिंह (1926-1948) के शासन काल में रियासत के अंग्रेज़ मंत्री वेकफिल्ड ने सन् 1931 में इस किले को तुड़वा कर इसे एक खंडहर के रूप में बदला।

अब इस क़िले का केवल एक सिंहासन बचा है जो शिलाखंड से निर्मित है। यह वर्गाकार हं और इसकी प्रत्येक भुजा सवा मीटर है इसके चार पाय हैं जो 40 से.मी. ऊँचे और 30 से.मी. चौड़े हैं। इन का ऊपरी भाग गोल है। सिंहासन की शिला पर जो बेलाकृतियाँ बनी हैं, वे आकर्षक हैं।

भव्य अतीत को अपने गर्भ में छुपाए इस किले के अवशेष भूमिसात हैं। अब तो केवल उन का क्रंदन ही सुनाई देता है। फिर भी इस किले के शिखर पर खड़े होकर किश्तबाड़ नगर का परिदृश्य देखा जा सकता है।

टिप्पणियाँ

1. किश्तबाड़ डुग्गर का प्राचीनतम राज्य है। राजतंरगिणी में इसका उल्लेख काष्टवत के नाम से हुआ है। राजतंरगिणी में किश्तबाड़ के राजा उधत देव सेन का वर्णन कश्मीर के राजा कलश के सन्दर्भ में हुआ। इस राजा ने 1087 ई० में कश्मीर के दरबार में हाज़िरी भरी थी।

2. किश्तबाड़ का उल्लेख मुगल इतिहास में भी हुआ है। किश्तबाड़ के इतिहास का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि मिर्ज़ा हैदरकाशगिरी ने सन् 1547 ई० में किश्तबाड़ पर आक्रमण किया किन्तु किश्तबाड़ के राजा राय मानसिंह ने मरू नदी की पहाड़ी के ऊपर मोर्चा लगाया और उसके सैनिकों ने मिर्जा के सेनापति कूका को पत्थर मार-मार कर मार डाला और उसके 25 सैनिकों को हताहत किया।

3. सन् 1570 ई० में कश्मीर के चक्क राजाओं ने भी किश्तबाड़ पर हमला किया। इस हमले में किश्तबाड़ का राजा पराजित हुआ और उसने अपनी बहन शंकरा देवी का विवाह राजकुमार याकूब खान से किया। इस विवाह के बाद कश्मीर के चक्क बादशाह किश्तबाड़ के राजाओं के सम्बन्धी बन गए और उन में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गए।

4. मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल में मुगल सेना ने जब कश्मीर को अपने अधिकार में लिया तो कश्मीर का बादशाह सन् 1586 ई० में कश्मीर से भाग कर किश्तबाड़ आया और वह कई वर्ष इसी शाही किले में रहा। सन् 1604 ई० में मुगल सेना ने किश्तबाड़ पर हमला किया तो किश्तबाड़ के राजा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की। सन् 1619 ई० में कश्मीर के प्रशासक दिलावर खान ने किश्तबाड़ पर तीन ओर से हमला किया और किश्तबाड़ के राजा गोहरसिंह को बंदी बनाकर जहांगीर के दरबार में पेश किया। राजा ने अधीनता स्वीकार की। कर देना माना तो जहाँगीर ने उसे मुक्त कर दिया।

5. शाहजहाँ के शासनकाल में बसोहली के राजा भूपतपाल ने किश्तबाड़ पर हमला किया और इस पर अधिकार कर लिया। किन्तु राजा कीरतसिंह के भाई भगवान् सिंह ने मुगल सेना की सहायता से किश्तबाड़ को पुन: हासिल किया।

6. 17वीं सदी में गोरखों ने भी किश्तबाड़ पर हमला किया किन्तु किश्तबाड़ के राजा ने सुकेत, मंडी और जसरोटा की सहायता से इसे असफल कर दिया।

7. सन् 1717 ई० में किश्तबाड़ के राजा कीरतसिंह ने अपनी बहिन भूपादेवी का विवाह मुगल राजा फारूक-सिप्यार से किया। इस प्रकार मुगलों से भी इन के सम्बन्ध सुधर गए। किन्तु 1738 में नादिरशाह के हमले के बाद कश्मीर जब मुगल प्रभाव से

स्वतन्त्र हुआ तो किश्तबाड़ भी स्वतंत्र हो गया।

8. किश्तबाड़ के किले ने वह समय भी देखा जब किश्तबाड़ के राजा के भाई सुजानसिंह ने जम्मू के राजा की सहायता से किश्तबाड़ की राजगद्दी पर अधिकार किया।

9. इस किले ने किश्तबाड़ के अंतिम राजा मुहम्मद तेगसिंह (1798-1820) और अफ़गानिस्तान के निर्वासित बादशाह शाह शुजा के वैभवशाली दरबार को भी देखा है। किन्तु अब यह किला केवल एक यादगार रह गया है।

10. इतिहास में यह उल्लेख भी मिलता है कि महाराजा गुलाबसिंह ने इस किले को कारावास में बदला। कहते हैं कि लद्दाख विजय के बाद कई विद्रोही सामंतों को कुछ समय के लिए इस किले में रखा गया था।



रत्नगढ़ का किला

गिरि दुर्ग कोटि का यह किला डोडा जनपद के अन्तर्गत पुल डोडा से 35 किलोमीटर पूर्व में स्थित ऐतिहासिक नगर भद्रवाह के एक पहाड़ी टीले पर निर्मित है। यह टीला नगर के पश्चिम में है और भूमितल से अनुमानतः एक सौ मीटर ऊँचा है।

इस किले की बाहरी दीवारें स्लेटी शिलाओं से बनी हैं और इसके चारों कोणों में जो चार बुर्ज हैं वे सुदृढ़ता के कारण आज भी खड़े हैं। यह एक विस्तृत एवं सुदृढ़ किला है। इस किले की विशिष्ट स्थिति सामरिक महत्त्व और इसका भव्य अतीत इस की प्रसिद्धि का मुख्य कारण है। यह किला चारों ओर से पहाड़ी घाटियों तथा नदी नालों से घिरा हुआ है। अत: सामरिक दृष्टि से भी इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

मज़बूत पत्थरों से चुने गए इस अभेद्य किले की नींव कहते हैं कि भद्रवाह नगर के संस्थापक राजा मेदनी पाल (सन् 1707-1730 ई०) ने रखी। राजा मेदनी पाल की किलेबन्दी के अन्तर्गत एक सुदृढ़ परकोट, बुर्ज और प्रवेशद्वार ही मुख्य तत्त्व थे। किले के भीतर निवास कक्षों में कुछेक का निर्माण भी उसी के शासन काल में हुआ। राजा मेदनी पाल के उत्तराधिकारी सम्मतपाल और उसके पुत्र फतहपाल ने इस किले को सुदृढ़ किया और इसके भीतर कहते हैं कि नये आवासीय कक्ष बनाए। फतहपाल के उत्तराधिकारी दयापाल के शासनकाल में इसके विकास के लिए क्या यत्न हुए, इसका व्योरा न तो इतिहास के ग्रंथों में और न जनश्रुतियों में मिलता है। राजा दयापाल के बाद उसका चचेरा-भाई पहाड़चन्द जब भद्रवाह का राजा बना तो उसने इस किले

को नया स्वरूप दिया और इसे दुर्जेय तथा अपराजेय बनाने के लिए इस की जीर्ण-शीर्ण दीवारों को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु इस की चिनाई में मज़बूत शिलाखंडों का प्रयोग किया।

राजा पहाड़चन्द के शासनकाल में ही चम्बा नरेश ने अपने वज़ीर नत्थु को इस दुर्ग पर अधिकार करने के लिए भेजा। वज़ीर नत्थु चम्बा से भारी सेना लेकर जब इस किले को घेरने के उद्देश्य से यहाँ आया तो राजा पहाड़चन्द ने उसे बुरी तरह से परास्त करके भागने को विवश किया। चम्बा के बज़ीर नत्थु ने पराजित होने के बाद महाराजा रणजीतसिंह से सैनिक सहायता माँगी। महाराजा ने चम्बा के सामरिक महत्त्व के रिहलु के किले के बदले सैनिक सहायता देना माना तो वज़ीर नत्थु सिक्ख सेना लेकर भद्रवाह की ओर बढ़ा। राजा पहाड़चन्द को जब सिक्ख सेना के आगमन की सूचना मिली तो उसने किला तोड़ दिया और भाग गया। वज़ीर नत्थु ने वीरान पड़े इस किले पर सन् 1821 ई० में अधिकार किया और भद्रवाह का प्रशासक बनकर शासन करने लगा।

सन् 1836 ई० में राजा गुलाबसिंह के आदेश पर वज़ीर ज़ोराबर सिंह ने इस किले पर अपना ध्वज फहराने का प्रयास किया किन्तु चम्बा के राजा चढ़त सिंह की सेना ने इस हमले को पछाड़ दिया। सन् 1844 ई० में चम्बा के राजा चढ़तसिंह के देहावसान के बाद राजा गुलाब सिंह ने अपनी सेना भद्रवाह भेजी। इस सेना ने चम्बा के सैनिकों को लड़ाई में पराजित करके किले को अपने अधिकार में ले लिया।

महाराजा रणवीर सिंह (1856-85 ई०) ने भद्रवाह का क्षेत्र अपने छोटे राजकुमार अमर सिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया। राजा अमरसिंह के समय में इस किले का सामरिक महत्त्व बना रहा। वीट्स ने सन् 1870 के लगभग जब इस ऐतिहासिक किले को देखा तो यह किला ठीक अवस्था में था। किले में एक सैनिक दल तैनात था और उसके पास चार तोपें थीं। पालवंशीय राजाओं के महलों के भग्नावशेष भी किले के निकट थे। किन्तु

महाराजा हरिसिंह के एक अंग्रेज़ मंत्री की नीति के अन्तर्गत जब डुग्गर के ऐतिहासिक किले विनष्ट किये गये तो यह किला भी उस नीति का शिकार हुआ। डुग्गर की यह अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर भद्रवाह में आज भी देखी जा सकती है।

टिप्पणी

1. रत्नगढ़ के किले को भद्रवाह का किला भी कहते हैं।
2. इस किले को अब जिला कारावास बनाया गया है।



पाडर का किला

डुग्गर के दूरस्थ और दुर्गम स्थानों में सामरिक दृष्टि से जिन दुर्गों का निर्माण हुआ उनमें एक दुर्ग डोडा जनपद के अन्तर्गत तहसील किश्तवाड़ के पूर्व में किश्तबाड़ से अनुमानत: 65 किलोमीटर की दूरी पर गुलाबगढ़ में है। इस किले को गुलाबगढ़ का किला भी कहा जाता है।

यह किला अठोली से तीन किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ी चट्टानों के ऊपर उस स्थान पर निर्मित है जहाँ भोटना नदी का चन्द्रभागा के साथ संगम है। सामरिक दृष्टि से यह एक दुर्जेय किला है। पहाड़ियों और बेगवती नदियों से घिरा है। किले तक पहुँच पाना शत्रुपक्ष की सेना के लिए असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है।

यह किला काप्ठ और शिला से बना था। लगभग तीन सौ मीटर वर्ग क्षेत्र में फैले इस किले के पूर्व में खाई थी। जिस की लम्बाई अनुमानत: तीस मीटर और गहराई आठ मीटर थी। खाई के ऊपर उठवां लकड़ी का पुल था। इस के प्रवेशद्वार के साथ एक छोटा वितान था, प्राय: सैनिक इसी से भीतर जाते और बाहर आते। मुख्य प्रवेशद्वार केवल पर्व-त्योहार के दिन ही खुलता था।

किले की जो प्राकार थी वह शिलाखंडों से निर्मित थी। इसे सुदृढ़ करने के लिए इसके चारों कोणों पर बुर्ज बने थे जिनके छत लकड़ी के थे।

किले के भीतर तिमंजिला महल था जो बारह कक्षों और एक विस्तृत बरामदा पर आधारित था। महल के सहन के एक कोने में महाकाली का मंदिर था।

किले के भीतर बुर्जों की कोठरियों में तथा महल में कई तहखाने बने

थे। इनमें नीलम का भण्डार रखा जाता था। नीलम प्राय: भेड़ बकरियों की खालों में वज़न करके रखा जाता था। एक खाल में 37 किलोग्राम के करीब नीलम भरा जाता था। इसे सील करके बाद में जम्मू भेज दिया जाता था।

गुलाबगढ़ का किला कच्चा था। इस का निर्माण वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने सन् 1836 ई० में गुलाबसिंह के नाम पर करवाया था। कहते हैं कि यह किला जिस स्थान पर बना है वहां पहले भी एक किला था जिसका नाम छतरगढ़ था और उसका निर्माण चम्बा के राजा चतुर सिंह ने करवाया था।

महाराजा गुलाबसिंह (1846–1856 ई०) महाराजा रणवीर सिंह (1856–1885 ई०) तथा महाराजा प्रतापसिंह (1885–1926 ई०) के शासनकाल तक यह किला मूलरूप में खड़ा था। महाराजा हरिसिंह (1926–48) के शासनकाल में इस किले को अनुपयोगी मानकर इस में तैनात सैनिक-दल को हटा लिया गया जिस के कारण यह किला लावारिस होने के कारण क्षतिग्रस्त हो गया।

सन् 1947 ई० के बाद जब राजतन्त्र शासन व्यवस्था समाप्त हो गई तो स्थानीय लोगों ने इस सन्देह से इस किले को तोड़ डाला कि इस के अन्दर ज़मीन के नीचे नीलम छुपा रखा गया है।

अब यह धराशायी दुर्ग खंडहर के रूप में गुलाबगढ़ में दृष्टव्य है।



राजगढ़ का किला

डोडा जनपद के अन्तर्गत सिराज क्षेत्र में जिन गिरि दुर्गों का निर्माण हुआ उनमें राजगढ़ का किला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तर शिलाओं से निर्मित यह किला सुदृढ़ता और प्रतिरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

राजगढ़ का यह किला जम्मू श्रीनगर राष्ट्रीय राजपथ में स्थित चन्द्रकोट से अनुमानत: छ: किलोमीटर दूर है। इस किले को चन्द्रकोट पुल से एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी जाती है। यह गिरि दुर्ग राजगढ़ गांव के पूर्व में एक किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी के ऊपर निर्मित है।

इस किले के पूर्व में बुद्दनी गांव है जिस में अधिकांश घर लुहारों के हैं। इसके पश्चिम में जट्टगली, उत्तर में फुल्ला पहाड़ और पोगल का क्षेत्र तथा दक्षिण में हेलूर गाँव हैं। पूर्व दक्षिण में दयारगली है जिस का सामरिक दृष्टि से महत्त्व है। राजगढ़ का नाला इसके पार्श्व में प्रवाहमान है।

चारों ओर से छोटी-बड़ी पहाड़ियों से घिरा यह किला चारों ओर से ऊँची प्राकार से परिसीमित है। इस की मुख्य ड्योढ़ी पूर्वोन्मुख है। किले के भीतर छोटे-छोटे कक्षों की जो पंक्ति थी वह धराशायी है।

इस समय यह किला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में राजगढ़ के स्मारक के रूप में खड़ा है। इसकी जर्जरित दीवारें इस की भव्यता की व्याख्या करती हैं।

कहते हैं कि इस किले का निर्माण राजगढ़ के किसी राणा ने करवाया था। सन 1822 ई० में वजीर जोरावर सिंह ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो उसने इस किले को तोड़ दिया।

राजगढ़ की सुन्दर घाटी इस किले के इर्द-गिर्द फैली है।



गजपत का किला

सिराज क्षेत्र में जिस दुर्जेय किले का निर्माण राज बन्दियों को कैद रखने के लिए हुआ, वह गजपत का किला था। यह किला चन्द्रकोट गांव से केवल तीन किलोमीटर की दूरी पर एक सीधी पहाड़ी के ऊपर स्थित है। इस किले के नीचे तीव्रगति से चन्द्रभागा नदी प्रवाहमान है। किले के पूर्व में राजगढ़ के क्षेत्र उत्तर में आलाह्गाँव और पोगल का इलाका तथा पश्चिम-दक्षिण में बल खाती चन्द्रभागा नदी है।

किले तक पहुँचने के लिए चन्द्रभागा नदी के तट पर बसे गागुआन गाँव से एक पगडंडी किले की ओर जाती है। यह किला गागुआन गाँव के निकट स्थित है। पत्थर की ईंटों से बने इस किले की अब केवल दीवारें ही बची हैं, शेष किला धराशायी है। जिस स्थान पर यह किला बना है वहाँ तीन सौ कनाल भूमि में फैला एक लम्बा चौड़ा मैदान है। इस मैदान के इर्द-गिर्द इस किले के अतिरिक्त कई आवासीय गृह हैं। किले के ऊपरी भाग में दो किलोमीटर की दूरी पर सुंड्डी नामक गाँव है। जिस में थोड़े से घर हैं।

इस किले का निर्माण कहते हैं कि महाराजा गुलाबसिंह (1846-56 ई०) के शासनकाल में आरम्भ हुआ और इस को महाराजा रणवीरसिंह ने पूर्ण करवाया।

महाराजा रणवीरसिंह की हत्या का जिन लोगों ने षड्यंत्र रचा उनमें महाराजा गुलाबसिंह का दासीपुत्र मियां हटठु भी था। महाराजा रणवीर सिंह ने मियां हंट्ठु को इस किले में बन्दी बनाकर रखा और अन्त में उसके शरीर का अन्त भी इसी किले में हुआ।

अब यह किला खंडहर में बदल चुका है। किले के भीतर बना नवनिर्मित मंदिर इस किले का अब विशेष आकर्षण है। ❑ ❑ ❑

अखनूर का किला

कुषाण कालीन पुरावशेषों की आधार शिलाओं पर बना अखनूर का किला डुग्गर के चर्चित किलों में से एक है। यह किला जम्मू से अनुमानत: तीस किलोमीटर पश्चिम की ओर चन्द्रभागा की पश्चिमी तटीय चट्टानों पर निर्मित है। इस किले का मुख्य प्रवेशद्वार उत्तरोन्मुख है। प्रवेशद्वार के आगे खुला सहन है जिसके एक कोणे में किले की अधिष्ठात्रीदेवी का देहरी शैली में बना मंदिर है। सहन के दक्षिण में दूसरी ड्योढ़ी है। इस ड्योढ़ी को पार करते ही पूर्वोन्मुख निवास कोठरियों की लम्बी पंक्ति दृष्टिगत होती है। ये कोठरियां जर्जरित-अवस्था में हैं और इन का अधिकांश भाग ढह गया है। लगता है इन कोठरियों का उपयोग प्रहरियों द्वारा किया जाता रहा होगा।

किले के तीसरे भाग में दुमंजिला महल है जो चारों ओर से ऊँची प्राकार से घिरा है। इस में प्रवेशार्थ जो उत्तरोन्मुख ड्योढ़ी है, वास्तुकला की दृष्टि से उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं। किले का महल भाग आकर्षक है। इस की कलात्मक सज्जा, मेहराबी द्वार और खुले वितान दर्शनीय हैं। लगता है शिल्पियों ने इस के वैभव को अपनी कला से संजोने में कोई कसर नहीं रखी है।

इन महलों के मध्य में एक खुला सहन है और इसके चारों ओर निवास कोठरियां हैं। महल का जो पश्चिमोन्मुख भाग है वह दुमंजिला है और ऊपर चढ़ने के लिए सहन के ही एक ओर से सोपान पथ बना है। इस महल की पहली तथा दूसरी मंजिल में कई विशाल कक्ष हैं। दूसरे छत के एक बड़े कक्ष में एक छोटा-सा संग्रहालय है जिसमें किले की खुदाई में मिली वस्तुएँ प्रदर्शित हैं। इन वस्तुओं में सुराही, दीपक, कटोरी, चिलम, मिट्टी के अंलकृत बर्तन तथा भग्न मूर्तियां आदि प्रदर्शित हैं। इस संग्रहालय में एक घड़ा भी प्रदर्शित

है जिस पर की गई चित्रकारी आकर्षक किन्तु अद्भुत है। संग्रहालय में रखी मूर्तियों में अधिकांश पत्थर की हैं और इनके आकार भिन्न-भिन्न हैं। मिट्टी के बर्तनों में नीचे और ऊपर काले रंग के डोरे हैं। किले की खुदाई में ज़मीन के नीचे एक दीवार भी मिली है जिससे लगता है कि प्राचीन काल में भी यहां कोई बस्ती अथवा किला रहा होगा।

इस किले के चारों ओर जो दीवार बनी है उसमें शिलाखंडों और मिट्टी की ईंटों का प्रयोग हुआ है। इस की दीवारें सुदृढ़ हैं और इन की मोटाई लगभग एक मीटर के करीब है।

किले का भूविन्यास वर्गाकार है और इसकी लम्बाई अनुमानतः दो सौ मीटर है।

इस किले का निर्माण अखनूर के राजा तेजसिंह ने अनुमानतः सन् 1750 में उस समय करवाया जब इस क्षेत्र में दुर्भिक्ष जैसी स्थिति थी। राजा ने स्थानीय लोगों को काम दिया और शिल्पियों ने इस किले का निर्माण किया। इस किले के निर्माण के बाद राजा तेजसिंह ने गढ़ का किला खाली किया और इस किले को अपना आवास बनाया। इसी राजा के शासनकाल में अखनूर को राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

राजा तेजसिंह के बाद राजा आलमसिंह अख़नूर की गद्दी पर बैठा ही था कि सन् 1787 ई० में खालसा सेना ने इस किले पर हमला बोल दिया जिससे इसे अत्याधिक क्षति पहुँची। सन् 1807 ई० में खालसा सेना ने इस किले पर पुनः आक्रमण किया। इस बार खालसा सेना का नेतृत्व पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के भाई साहबसिंह ने किया। साहबसिंह ने अखनूर के किले पर अधिकार करने के बाद इस का विलय खालसा राज्य में किया। अखनूर के राजा आलमसिंह को खालसा दरबार ने सोलह गाँवों पर आधारित सोहल की जागीर प्रदान की। अखनूर का राजपरिवार पुराने गढ़ किले में चला आया।

सन् 1822 ई० में इसी किले के पास जयपोता वृक्ष के नीचे चन्द्रभागा के तट पर महाराजा रणजीतसिंह ने जम्मू का राज्य मियां गुलाबसिंह को सौंप कर उसे जम्मू का राजा घोषित किया। मियां गुलाबसिंह ने जम्मू का राजा बनने के बाद इस किले को अपने अधिकार में तो लिया किन्तु इसका समुचित विकास या उद्धार न किया जिस के कारण डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला जर्जरित होकर भूमिसात हुआ।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने सन् 1993 ई० में इस किले को अपने अधिकार में लिया। आशा है कि पुरातत्व-विभाग इस के गौरव को बचाये रखने में सक्षम रहेगा।



कलीठ का किला

कलीठ किले की गिनती डुग्गर के प्राचीनतम किलों में की जाती है। जनश्रुतियों के अनुसार इस किले का शिलान्यास तेरहवीं शताब्दी में भाऊदेव के एक वंशज जेवरदेव ने किया। भाऊदेव को युद्ध-प्रिय भाऊ कबीले का आदि पुरुष भी माना जाता है। कहा जाता है कि भाऊदेव कश्मीर से डुग्गर प्रदेश में आया और उसके एक वंशज राय सरनदेव ने मनावर तवी के आस-पास एक छोटा-सा राज्य स्थापित किया। उसने सहारन गाँव को अपनी राजधानी बनाया और शासन करने लगा। किन्तु इसी वंश के एक योद्धा जबरदेव ने थक्कपाल कबीले से कलीठ क्षेत्र छीना और कलीठ गांव को अपनी राजधानी बनाकर यहीं रहने लगा। उसने अपने राज्य का विस्तार किया और इसे चौरासी गाँवों में परिसीमित किया। राजा जबरदेव ने कलीठ गाँव में जो किला बनवाया वह कई शताब्दियों तक अजेय बना रहा। इस किले को जीतने के लिए जराल और चिभाल कबीले के लोगों ने कई बार प्रयास किये, किन्तु वे असफल रहे। इस राजवंश के इतिहास की पुस्तकों में 27 नाम मिलते हैं। इन्होंने 'राव' की उपाधि धारण की और लगभग साढ़े छह सौ वर्षों तक राज्य किया।

कलीठ के इस किले के इतिहास ने कई उत्थान और पतन देखे। कई आक्रान्ता इस ओर बढ़े, लड़ाई हुई, तलवारें चलीं और किले की भूमि बार-बार रक्त रंजित हुई। भाऊ कबीले ने इस किले के गौरव को बनाए रखने के लिए बार-बार बलिदान दिये किन्तु पराजय स्वीकार न की। सन् 1596 ई० में मुगलसेना जम्मू के राजा समाहिल देव के संरक्षक और सेनापति मिंया माना को लड़ाई में परास्त करके अखनूर से होती हुई जब कलीठ की ओर बढ़ी

तो इस किले के गौरव को बनाये रखने के लिए भाऊ कबीले के योद्धाओं ने प्राणोत्सर्ग किये। किन्तु पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की सेना ने कूटनीति से इस दुर्जेय दुर्ग पर अपना ध्वज फहराने में सफलता प्राप्त की और कलीठ राज्य का अंतिम राजा लाजसिंह पराजय के बाद हताश और निराश होकर इस किले से बाहर निकल आया। सन् 1822 ई० में पंजाब नरेश रणजीत सिंह ने मियां गुलाबसिंह को जम्मू का राजतिलक दिया तो गुलाबसिंह ने इस किले पर भी अधिकार कर लिया और सीमा पर चौकसी रखने के लिए इस किले में सैनिक दल तैनात किया।

सन् 1925 ई० में भाऊ राजवंश तथा राय लाजसिंह के एक वंशज कर्नल शिवराम सिंह ने जम्मू कश्मीर के महाराजा प्रतापसिंह को अपनी सेवाओं से प्रसन्न करके टूटे-फूटे इस किले को केवल 365 रुपये में खरीदा। कर्नल ने इस किले का उद्धार करने के बाद सन् 1929 ई० में अपने परिवार के साथ किले में प्रवेश किया। कर्नल ने अपने आवास के लिए किले के भीतर आवासीय भवन बनवाये।

सन् 1947 ई० में पाकिस्तान द्वारा प्रेपित कबाईलियों ने इस किले को अपूर्व क्षति पहुँचाई किन्तु स्थानीय लोगों की सहायता से भारतीय सेना ने इस किले को आक्रान्ताओं से मुक्त करवाकर उन्हें सीमा के पार धकेल दिया। सन् 1965 ई० में भारत-पाकिस्तान लड़ाई में यह किला कुछ दिनों के लिए पाकिस्तानी सेना के अधिकार में रहा। किन्तु भारतीय सेना ने इसे शीघ्र ही मुक्त करवा लिया। इस प्रकार बार-बार शत्रु के आक्रमणों से इस किले को बहुत क्षति पहुँची जिससे डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला क्षत-विक्षत हुआ।

7 कनाल तेरह मरले भूमि में भग्नावस्था में खड़ा कलीठ का यह किला अखनूर के पश्चिम में अनुमानतः बीस किलोमीटर की दूरी पर कलीठ गाँव में स्थित एक टीले पर निर्मित है। इसका सिंहद्वार पूर्वोन्मुख है। सिंहद्वार के दायें बायें जिन प्रस्तर-शिलाओं का प्रयोग हुआ है उन पर अत्युत्तम तक्षणकार्य

हुआ है। सिंह द्वार के साथ पाँच कोठरियों के अवशेष मिलते हैं। लगता है इनका उपयोग प्रहरी और कर्मचारी करते होंगे। इन कोठरियों के बाद किले का दूसरा भाग आरम्भ होता है जिस में प्रवेश करने के लिए जो ड्योढ़ी बनी है उसके किवाड़ों में लोहे के तबे जड़े गये हैं। ऐसा ड्योढ़ी को सुदृढ़ बनाने हेतु किया गया है। ड्योढ़ी को पार करते ही खुला प्रांगण आता है।

इसके पूर्व में दीवानखाना है जिस की लम्बाई लगभग 25 मीटर है। दीवानखाने के पार्श्व में चार कोठरियां हैं। इन कोठरियों का उपयोग अन्न-भण्डार के लिए किया जाता था। दीवान-खाना के साथ एक खुला बरामदा है जिस की चौड़ाई सवा तीन मीटर है। इस समय दीवान खाना का बहुत बड़ा भाग टूट-फूट गया है और केवल कुछ दीवारें ही शेष बची हैं।

दीवान खाना के सामने प्रांगण में एक वर्गाकार जलाशय है। यह 6.25 × 6.25 मीटर में बना है। इस की गहराई 8 मीटर के करीब है।

यह किला चारों ओर से मिट्टी की पक्की छोटी ईंटों (नानकी ईंटों) की दीवार से आवेष्टित है। दीवार में प्रत्येक कोण में एक-एक ऊँचा बुर्ज है। इन बुर्जों में दो धराशायी हैं और दो बुर्ज अभी खड़े हैं।

किले के प्रांगण के उत्तर में दुमंजिला एक छोटा सा आवासीय भवन है जिसे राजा का महल या हवेली कहा जाता है। यह भवन चारों ओर से प्राचीर से घिरा है। किले के इस भाग में प्रवेश के लिए जो दक्षिणोन्मुख द्वार है वह साधारण कोटि का है। इस भवन में दीवारों की ऊँचाई दस मीटर के लगभग है। ये दीवारें मिट्टी की ईंटों से चिनी गई हैं जिनमें चूनासुर्खी का प्रयोग हुआ है। इस भवन की कोठरियों की छतें लकड़ी की हैं। यह भवन पांच कोठरियों पर आधारित है। दूसरे छत पर जाने के लिए जो सीढ़ी बनी है, वह लकड़ी की है। इस महल की ऊपरी छत से कलीठ गाँव और उस के आस-पास के क्षेत्र का दृश्य देखा जा सकता है। इस छत्त से किले के पश्चिम में बसे मश्याल गाँव, दक्षिण में स्थित चक्क-मलाल के प्राकृतिक सौंदर्य का अवलोकन किया

जा सकता है। किले के उत्तर में प्रवाहित लुयाक्खी नाला इसे प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है।

किले के पश्चिम में ऊँची पीठ पर बना देवी का मंदिर भी प्राचीन है। यह मंदिर महाकाली को समर्पित है। मंदिर अन्तराल, प्रदक्षिणा-पथ और गर्भगृह योजना पर आधारित है। गर्भगृह में महाकाली की मूर्ति स्थापित है। इस मंदिर को भी पाकिस्तानी हमलों से कई बार क्षति पहुँची अत: भाऊ कबीले के लोगों ने अपनी कुल देवी के इस मंदिर का उद्धार बार-बार किया।

इस किले के नीचे कलीठ गाँव बसा है। गाँव में 85 घर हैं और आबादी एक हज़ार के लगभग है। सन् 1947 से पूर्व कलीठ एक समृद्ध और वैभवशाली गाँव था। यहां एक मण्डी थी जिस में सामान बेचने और पहाड़ी माल खरीदने पंजाब और उत्तर-भारत से व्यापारी आते थे। कलीठ के व्यापारियों की प्रसिद्धि भी दूर-दूर तक थी। किन्तु देश के विभाजन के बाद किले के साथ-साथ यह मण्डी भी उजड़ गई गाँव वीरान हो गया। आज इस गाँव में बिखरे किले और व्यापारियों की हवेलियों के खंडहर इस ऐतिहासिक स्थान की गौरवगाथा सुनाते हैं।



गढ़ अम्बारां का किला

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त राजपूतों की विभिन्न शाखाओं के लोग छोटे-छोटे दलों में सुरक्षित स्थलों की खोज में जब डुग्गर क्षेत्र में आये तो उन्होंने संगठित रूप में स्थानीय राणाओं अथवा सामंतों को अपनी रणनीति तथा समर कौशल से पराजित करके उन्हें उनके क्षेत्र से भगाया और अपने राज्य स्थापित किये। इसी प्रकार बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र के पूना-सितारा के पंचगणि गाँव से पलायन कर पंवार शाखा के कुछ लोग वामनराय के नेतृत्व में भटकते-फिरते पहले टक्क देश पहुँचे और बाद में वहां से निकल कर चन्द्रभागा नदी के साथ-साथ चलते अखनूर क्षेत्र में आये। उन्हें नदी-नालों और ऊँचे-ऊँचे पर्वतश्रृंगों से घिरे अखनूर का यह क्षेत्र सुरक्षित लगा। उन्होंने स्थानीय राणा को लड़ाई में पराजित करके अपनी कुलदेवी अम्बा के नाम पर एक नई नगरी बसाई जिस का नाम उन्होंने अम्बायण रखा जिस का अर्थ है-अम्बा का घर। वामनराय के एक वंशज राजा जगदेव ने निकटवर्ती गाँवों को अपने अधिकार में लेकर अम्बारायण राज्य की स्थापना की। इतिहासकार कर्नल कमलसिंह ने राजा जगदेव के शासनकाल की अवधि सन् 1144 से 1151 ई० के बीच मानी है। कहा जाता है कि राजा जगदेव ने ही सब से पहले इस नगरी में दुर्ग निर्मित किया और उसमें अपने रहने के लिए महल बनाये। बाद में राजा जगदेव के वंशजों ने अम्बारां दुर्ग का विकास किया और अपने रहने के लिए नया भवन निर्मित किया। पंवार वंशीय राजाओं ने यहां पाँच सौ वर्ष राज्य किया। इस वंश का अन्तिम राजा विजयपाल (1740-55) था। तारीख डोगरा देश के अनुसार रामगढ़ के जागीरदार जयसिंह ने अम्बारां किले पर आक्रमण किया। राजा विजयपाल ने इस किले की रक्षा के लिए बहुत यत्न किया किन्तु

असफल रहा और पंवारों का यह सुदृढ़ दुर्ग जयसिंह के अधिकार में आ गया। राजा विजय पाल दुर्ग खोने के बाद पहाड़ों की ओर भाग गया। गढ़-अम्बारां का किला खोने के बाद पंवार हताश नहीं हुये। वे एक बार पुनः संगठित हुये। उन्होंने राजा जयसिंह को लड़ाई के लिए ललकारा। राजा जयसिंह ने अपने भाई विजयसिंह को सहायता के लिए बुलाया। वह भी रामगढ़ से अपनी सेना लेकर अंबारा की ओर बढ़ा। पंवारों ने उसे घेर लिया। जयसिंह घेरा तोड़ने के लिए आगे बढ़ा तो पंवारों ने भीषण लड़ाई में राजा जयसिंह और उसके भाई विजय सिंह को रणभूमि में हताहत किया। इस लड़ाई के बाद विजयसिंह का बेटा महि-प्रकाश अम्बारां का किला खाली करके सोहल की पहाड़ियों में चला गया और गढ़ में उसने अपना शिविर जमाया। पंवारों ने उसे भी लड़ाई में मार डाला।

महिप्रकाश के देहावसान के बाद उसका बेटा बुद्धिसिंह जब सिंहासन पर बैठा तो उसने शपथ ली कि वह अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए पंवार वंश का समूल नाश करेगा। अत: उसने पंवारों के इस किले को तुड़वा डाला और महलों को आग लगा कर उन्हें राख कर दिया। राजा बुद्धिसिंह ने पंवारों का बड़ी क्रूरता से संहार करना शुरू किया। परिणामस्वरूप अम्बारां क्षेत्र से पंवार भाग गये। कईयों ने अपने प्राण बचाने के लिए अपनी जाति ही बदल ली।

राजाबुद्धि सिंह के प्रतिशोध ने पंवारों के इस भव्य दुर्ग को जिस ढंग से मिट्टी के ढेर में बदला उससे इस किले का स्वरूप ही बदल गया। अब यह किला अम्बारां गाँव के पश्चिमी सिरे में मिट्टी के ढेंर में अपना सिर छुपाकर सदैव के लिए सो गया है। मिट्टी की ईंटों की चिनाई से खड़ी की गई इस की दीवारें मिट्टी के ढेर के ऊपर गिर कर ढेर हो चुकी है। किले की निशानी के रूप में अब केवल एक ड्योढ़ी बची है जो शिलाखंडों से बनी है। इस ड्योढ़ी की ऊँचाई अनुमानत: पाँच मीटर और चौड़ाई अढ़ाई मीटर है। ड्योढ़ी के ललाट में एक छोटे से देव कोष्ठक में देवी अम्बा की प्रतिमा स्थापित है। देवी अम्बा इस किले की आधिष्ठात्री देवी मानी जाती है।

ड्योढ़ी से डेढ़ सौ मीटर की दूरी पर पीपल के वृक्ष के नीचे बने चबूतरे में पुरानी टाकरी में दो शिलालेख प्रदर्शित हैं। समझा जाता है कि ये शिलालेख अम्बारां के राजाओं के समय के हैं। शिलालेख के चबूतरे के सामने मिट्टी और पत्थर के अढ़ाई मीटर ऊँचे चार टीले हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे अम्बारां के सामन्तों के बैठने के लिए बनाये गये थे। इन टीलों के साथ ही पत्थरों की एक लम्बी दीवार के निशान मिलते हैं जिन के अवलोकन से लगता है कि अम्बारां किले की रक्षार्थ दोहरी प्राचीर बनी थी।

अम्बारां किले के वास्तु विन्यास के विषय में तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता जब तक कि उस ढेर की खुदाई न करा ली जाए जो किले के पुरावशेषों को अपनी कोख में छुपाये हुए हैं।

किले के ढेर के नीचे की उत्तर दिशा में एक प्राचीन विशाल सरोवर आज भी विद्यमान है जिस की प्रस्तर पाट्टिकाओं से बनी अट्टारिकाएं पंवारों के स्थापत्य प्रेम का दिग्दर्शन कराती हैं। यह तालाब अनुमानतः छः कनाल भूमि में परिव्याप्त है और गाँव में जल का मुख्य स्रोत है।

अम्बारां किले के पूर्व और उत्तर में गाँव की घनी बस्ती है। साठ घरों पर आधारित इस गाँव में पच्चास घर राजपूतों के हैं। शेष घर अन्य जातियों के हैं। तालाब के निकट बुआ तृप्ता का समाधि मंदिर है। आर्य शिखर शैली में बना यह मंदिर मण्डप प्रदक्षिणा पथ और गर्भगृह पर आधारित है। गर्भ-गृह में प्रतिष्ठित देवी की मूर्ति प्रस्तर शिला पर उत्कीर्ण है। एक दन्तकथा के अनुसार पंवार वंश और उनके किले का ह्रास देवी तृप्ता के अभिशाप के कारण हुआ। इस क्षेत्र की बाईस जातियां इस देवी को अपनी कुलदेवी मानती हैं और अम्बारां की सुरक्षा के लिए उस की पूजा करती हैं।

अम्बारां को 'पंवारायण' के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस का कारण यह है कि यह छोटा-सा राज्य पंवारों का घर समझा जाता था।



सोहल का किला

डुग्गर प्रदेश में दुर्गों का निर्माण स्थानीय सामंतों, राणाओं या जागीरदारों ने अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए करवाया। इन किलों में कई किले ऐसे भी हैं जो छुपने के लिए दुर्गम वन्य पहाड़ियों में बने हैं। सोहल का किला भी इसी कोटि का है। यह किला अखनूर से अनुमानतः तेरह किलोमीटर पश्चिम में स्थित सोहल गाँव के उत्तर में अवस्थित है। इक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर निर्मित इस किले के पूर्व में वरगलखड्ड, पश्चिम में जमोढ़ी खड्ड, उत्तर में स्माह तथा दक्षिण में गुढ़ा स्थित है। नालों, पहाड़ी ढलवानों और घने जंगल के बीच जो यह किला बना है उसे 'गढ़' नाम से अभिहित किया जाता है।

किले तक पहुँचने के लिए कई मार्ग हैं जिन में एक पगडंडी सोहल से जाती है जिस की लम्बाई तीन किलोमीटर है। किले तक जाने का दूसरा मार्ग स्माह से है जो दुर्गम है।

यह किला लगभग एक एकड़ भूमि में परिसीमित है। इस में प्रवेश के लिए पहाड़ी शैली में जो ड्योढ़ी बनी है, वह दक्षिणोन्मुख है। भग्न इस ड्योढ़ी के शिलाखंड आस-पास ही बिखरे पड़े हैं। किले के भीतर राजमहल के पुरावशेष भी दृष्टव्य हैं। इनमें महल में प्रवेश के लिए बनी पूर्वोन्मुख ड्योढ़ी, टूटे-फूटे महलों की जीर्ण-शीर्ण दीवारें, इन दीवारों को सहारा देने के लिए महलों के पीछे बने आधार-स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। महल के पूर्व में तवेला (घुड़साल) के अवशेष हैं। किले के आस-पास की हवेलियों, अट्टालिकाओं और जलाशयों की अट्टारिकाओं के निशान मिलते हैं जिन को देखकर लगता है कि कभी इस किले के इर्द-गिर्द घनी बस्ती थी और इसके निवासी वैभव

एवं समृद्धि का जीवन जीते थे।

इस किले के पुरावशेषों में एक मंदिर अब भी सही अवस्था में खड़ा है जिस में संस्थापित मूर्ति किसी कुलदेवता की लगती है।

इस किले का निर्माण रामगढ़ के राजा बुद्धिसिंह ने सन् 1750 ई० के लगभग तब करवाया जब जम्मू के सामन्त मियां चन्दनदेव ने दिल्ली के हाकिम की अनुमति से अखनूर और रामगढ़ की जागीर पर अधिकार करने के लिए राजा बुद्धिसिंह पर चढ़ाई की।

राजा बुद्धिसिंह जब चन्दनदेव की सेना के सन्मुख न टिक सका तो उसने रामगढ़ छोड़ दिया और सोहल की पहाड़ी में दुर्ग का निर्माण करवाया। मियां चन्दन देव सोहल की पहाड़ी में बुद्धिसिंह की किला बन्दी को तोड़कर गढ़ किले की ओर बढ़ा तो राजा बुद्धिसिंह इस किले को खाली करके पहाड़ों की ओर भाग गया। मियां चन्दन देव ने इस दुर्ग पर अधिकार करके इसे अपना आवास बनाया। किन्तु उसके उत्तराधिकारी राजा तेज सिंह (सन् 1755-1776 ई०) ने गढ़ छोड़ दिया और अखनूर को अपनी राजधानी बनाया। राजा तेजसिंह जम्मू नरेश राजा रणजीतदेव (1730-85 ई०) का समकालीन था। उसके बाद आलमसिंह अखनूर का राजा बना। उसके शासनकाल में 1807 ई० में पंजाब नरेश रणजीत सिंह ने अखनूर पर हमला किया और अखनूर का किला जीत लिया। महाराजा रणजीत सिंह ने राजा को जो जागीर दी वह सोलह गाँवों पर आधारित थी। अखनूर का राजा आलमसिंह सोहल आ गया और उसने अपने रहने के लिए गढ़ दुर्ग को ही सुरक्षित समझा। उसके उत्तराधिकारी भी यहीं रहे। उनके समय में जो नये महल बने उनके पुरावशेष भी इस गाँव में उपलब्ध है। इनमें एक मियां करतार सिंह का महल भी है जो महाराजा हरिसिंह (1926-1948ई०) के मंत्री मंडल में एक मंत्री था। मियां करतार सिंह ने मंत्री बनने के बाद 'गढ़' से अपना आवास हटा लिया जिससे इस स्थान का गौरव घट गया।

सन् 1947 में कबाइलियों ने अखनूर के कई गाँवों पर अनाधिकार किया और कलीठ दुर्ग को घेरे में ले लिया। कलीठ दुर्ग का कबाईलियों के घेरे से छुड़ाने के लिए गढ़ के पूर्व सैनिकों ने रसालदार भगवन्तसिंह के नेतृत्व में कलीठ की ओर प्रस्थान किया। कबाइलियों को इन सैनिकों के कलीठ की ओर बढ़ने की जैसे ही सूचना मिली उन्होंने कलीठ से घेरा उठाया और इस किले पर अधिकार कर लिया। रसालदार भगवन्तसिंह तथा उसके साथियों को गढ़ के पतन का पता चला तो वे एक समूह के रूप में गढ़ की ओर बढ़े। उन्होंने जमोटी की पहाड़ी पर अपना शिविर लगाया और कबाईलियों पर गोलियां चलाईं। डेढ़ दिन दोनों ओर से धुंआधार गोले बरसाए गये और बन्दूकों से गोलियों की वर्षा हुई। अन्ततः कबाईली रात के अन्धेरे में इस दुर्ग को खाली करके भाग गये किन्तु भागने से पूर्व उन्होंने गढ़ के महलों, हवेलियों और घरों में आग लगा दी जिससे ये भवन जलकर राख हो गये।

गढ़ के वीर योद्धाओं ने गढ़ को शत्रु से मुक्त तो करवा लिया किन्तु शत्रु ने जो यहाँ तांडव नृत्य किया उसने यह किला नष्ट हो गया।

अब यह किला और इस में बसा गाँव चाहे उजड़ गया है किन्तु इस का उज्जवल अतीत इतिहास के पन्नों में हमेशा अमर रहेगा।



सूरगढ़ का किला

डुग्गर के इतिहास में सूरगढ़ का किला चाहे गुमसुम ही रहा किन्तु इस दुर्ग ने डुग्गर के इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं को देखा है। चन्द्रभागा नदी के तट पर पहाड़ी चट्टानों के ऊपर बना यह दुर्ग तहसील अखनूर के 'गसानु' गाँव में अवस्थित है। कई लोग इसे 'गसानु का किला' भी कहते हैं।

जम्मू के पश्चिम में बसा गसानु गाँव जम्मू से अनुमानतः 50 किलोमीटर दूरी पर एक ऐसे पहाड़ी समतल मैदान में स्थित है जो चारों ओर से नालों, नदियों और पहाड़ों से घिरा हुआ है। अखनूर से गसानु जाने के लिए नौर तक बस सेवा उपलब्ध है। नौर प्रकृति की गोद में बसा अति सुन्दर गाँव है। इसी गाँव में नाग देवता काई का ऐतिहासिक काष्ठ मंदिर है जिसमें नागदेवता की सोने की मूर्ति प्रदर्शित है। इस गाँव के उत्तर में चोयका नाला प्रवाहित है जो गहरी घाटी बनाता हुआ प्रवाहमान है। इस नाला को ढलने के लिए पत्थरों की ढक्की है जो आधा किलोमीटर लम्बी है। इस लेटवां पगडंडी के दोनों ओर झाड़ियां और कठोर चट्टानें हैं। नाला पार करने के बाद पुनः लेटवां ढक्की आरम्भ होती है। इस ढक्की को 'बिल्ली की ढक्की' कहते हैं। यह एक किलोमीटर लम्बी है। यहां ढक्की समाप्त होती है वहां से एक खुला मैदान आरम्भ होता है। इस मैदान को नग्गर कहते हैं। इस मैदान में कभी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और भवन थे, किन्तु अब वहां केवल एक विशाल तालाब ही शेष बचा है जिसकी विस्तृत और विशाल अट्टारिकाएँ अतीत की गौरव-गाथा सुनाती हैं। गाँव में जहां महल थे वहां अब चूना-सुर्खी से सने कुछ शिलाखंड बिखरे पड़े हैं। महल से थोड़ी दूरी पर गसानु गाँव आबाद है जो चार सौ घरों में समाहित है। गाँव की आबादी चार हज़ार के लगभग बताई

जाती है। गाँव में अधिकांश घर जम्बाल और बराल ब्राह्मणों के हैं। हरिजनों के भी पचास के लगभग घर हैं। इस गाँव से तीन किलोमीटर की दूरी पर सूरगढ़ का किला है जिसे 'पक्का कोट' भी कहा जाता है। यह किला वर्गाकार है और अढ़ाई सौ मीटर की परिधि में फैला हुआ है।

'राजदर्शनी' के अनुसार इस किले का निर्माण जम्मू के राजा कपूरदेव के एक पुत्र मियां लालदेव ने करवाया। जम्मू नरेश ने लालदेव को अखनूर के निकट रामगढ़ की जागीर प्रदान की तो लालदेव को रामगढ़ का किला सुरक्षित न लगा, उसने अम्बारायण के निकट अपने रहने के लिए किलानुमां महल बनाया।

उन्हीं दिनों शहंशाह अकबर कश्मीर से वापिस आया और उसने लाहौर में दरबार लगाया और जैन खान कोका को पहाड़ी ज़मींदारों को पेश करने का आदेश दिया। डुग्गर के जो राजा अकबर के दरबार में गये वे थे-रायकृष्ण भड्डर वालिया, कृष्ण बलौरिया, राजा मेहरराय जसरोटा, राय बलभद्र लखनपुर, परसराम राजा बाहु तथा राय प्रताप मनकोटिया थे। किन्तु लालदेव उस दरबार में उपस्थित न हुआ। सम्राट अकबर ने हसन अमरी को शाही फौज के साथ लालदेव को कुचलने के लिए इस क्षेत्र में भेजा। जम्मू के राजा संग्रामदेव के संरक्षक मियां माना ने शाही फौजों से टकराने का निश्चय किया। उनकी सहायता पहाड़ी राजाओं ने भी की किन्तु डोगरा सेना मुगल सेना के सन्मुख अधिक देर तक न टिक सकी। शाही सेना ने जम्मू, जसरोटा, रामगढ़, अखनूर और कलीठ पर अधिकार करने के बाद सूरगढ़ की ओर कूच किया। शाही सेना अखनूर से सूरगढ़ की ओर बढ़ी तो मियां लालदेव ने शाही फौज से टकराना उचित न समझा। वह एक नाव पर बैठा। नाव चन्द्रभागा की तरफ बढ़ी और कहाँ गई किसी को कुछ नहीं पता। किन्तु मुगलसेना ने सूरगढ़ पहुँचते ही राजा के महल को लूटने के बाद इसे आग लगी दी जिससे महल जलकर राख हो गया। शाही सेना ने सूरगढ़ दुर्ग को भी तोड़ डाला जिससे यह नष्ट हो गया। आज भी इस किले के खंडहर इस क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं।

किले की बाहरी दीवार भग्न अवस्था में आज भी खड़ी है। यह दीवार एक मीटर के करीब मोटी है। अध्ययन से लगता है कि सूरगढ़ एक सुदृढ़ किला था।

❑❑❑

राजौरी का किला

राजौरी नगर की संरचना से लगता है कि इस नगर का निर्माण एक दुर्ग-नगर के रूप में हुआ है। यह नगर राजौरी-तवी के पश्चिमी तट पर एक टीले पर बसा है जो नदी तट से अनुमानतः पच्चहतर मीटर ऊँचा है। इस नगर की सुरक्षा के लिए प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित जो ऊँची दीवार थी, उसके अवशेष आज भी इस नगर में बिखरे दिखाई देते हैं। नगर में प्रवेशार्थ जो पाँच डयोढ़िया थीं वे सुदृढ़ प्राचीर के साथ जुड़ी हुई थीं। इनमें मुख्य ड्योढ़ी का नाम इन्द्रकोट था। अन्य ड्योढ़ियों के नाम अलमोट तथा नावन आदि थे। चौथी डयोढ़ी वर्तमान बस अड्डा के निकट और पाँचवीं ड्योढ़ी पुरानी सराय के निकट थी।

इस नगर दुर्ग में जराल राजाओं के शासनकाल में निर्मित पाँच महल थे जिन में एक महल इस समय 'खूनी महल' के नाम से भग्नावस्था में आज भी दृष्टव्य है। शेष महलों के पुरावशेष ही देखे जा सकते हैं।

नगर में यहाँ आज थाना है वहां राजौरी के जराल राजाओं का किला था। यह किला आकार में छोटा था किन्तु सुदृढ़ता की दृष्टि से विलक्षण था। अंग्रेज़ पर्यटक सर रिचर्ड टेम्बल ने सतारहवीं सदी में जब इस किले को देखा यह जीर्णावस्था में था।

इस दुर्ग नगर में जराल शासकों के समय की पाँच मस्जिदें जर्जरित दशा में आज भी मौजूद हैं। इनमें वज़ीरों की मस्जिद सब से पुरानी है। इन्द्रकोट, अलमोट तथा नदी के निकट स्थित मस्जिदें अभी जीवंत रूप में हैं। इन मस्जिदों में जामा मस्जिद मुगल-सम्राट जहाँगीर के समय की है और इस

का वास्तुशिल्प मुगलशैली के अनुरूप है। इन्द्रकोट की मस्जिद का निर्माण कहते हैं कि राजा फकीर-उल्लाह ने करवाया।

इस दुर्ग नगर में राजौरी तवी के तट के साथ-साथ कहते हैं कि मिर्ज़ा और उनके सामन्तों की कई हवेलियां थीं। इन्द्रकोट के आस-पास महल थे जिन का निर्माण मुगल सम्राटों की सुख-सुविधा के लिए किया गया था। अब यह महल खंडहरों का ढेर हैं। इन्द्रकोट के निकट ही मंडी थी। यह राजौरी नगर दुर्ग का ऐसा स्थान था जहाँ खूब चहल-पहल रहती थी। यहाँ आज हस्पताल और उच्च विद्यालय है वहाँ मुगल शैली में विकसित रम्य उद्यान था जो चारों ओर से पत्थर की दीवार से आवेष्टित था। उद्यान के बीचों-बीच पानी की नालियां थीं जो एक दूसरे के साथ 90 का कोण बनाती थीं।

दुर्ग नगर राजौरी में बसे लोगों के घर पत्थरों को तराश कर बने थे और प्रायः दुमंज़िलें थे। नगर का बाज़ार चौगान से लेकर नदी तक लम्बा था और इस तंग बाज़ार के दोनों ओर दुकानें थीं।

सन् 1815 ई० में महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से इस नगर दुर्ग में प्रवेश पाने के लिए राजौरी के राजा से टक्कर ली। खालसा सेना ने इस दुर्ग पर ज़ोरदार आक्रमण किया और इस की किलेबन्दी को नष्ट-भ्रष्ट किया जिससे इस नगर-दुर्ग को अपूर्व क्षति पहुँची और इस का अधिकांश भाग नष्ट-भ्रष्ट हुआ।

इस नगर दुर्ग के अवशेष राजौरी नगर में स्थान-स्थान पर बिखरे मिलते हैं।



डंनीधार का किला

डुग्गर के महत्वपूर्ण किलों में जिन किलों की परिगणना की जाती है उनमें एक किला राजौरी के पूर्वोत्तर में तीन किलोमीटर की दूरी पर सैलानी नाला के तट से लगभग पाँच सौ मीटर की ऊँचाई पर डंनीधार गाँव की पहाड़ी ढलान में निर्मित है। इस गिरिदुर्ग को राजौरी का नया किला या डंनीधार का किला कहा जाता है। यह किला न केवल प्रतिरक्षा की दृष्टि से अपितु सामरिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व रखता था। यह जिस चट्टान पर बना है, वह सुदृढ़ है और इसके नीचे जो ढलान है, वह इसे सुरक्षा प्रदान करती है।

यह किला चारों ओर से प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित ऊँची प्राचीर से घिरा है। प्राचीर के चारों कोणों में जो गोल बुर्ज बने हैं उनकी दीवारों में लम्बे और तिरछे रन्ध्र इस ढंग से रखे गये हैं कि उनसे शत्रु पर किले के भीतर से गोलियां बरसाई जा सकें।

किले का प्रवेशद्वार कठोर शिलाखंडों से बना है और इस तक पहुँचने के लिए जो सीढ़ीनुमां पगडंडी है वह सीधी खड़ी है। प्रवेशद्वार किले की पूर्वी दीवार में है किन्तु इस का मुख--भाग उत्तरोन्मुख है।

पत्थर की ईंटों से बने इस किले के भीतर दुमंजिलें निवास कक्ष हैं और इनके आगे खुले और विशाल बरामदें हैं जो निवास कक्षों से जुड़े हुए हैं। इन निवास कक्षों के सन्मुख खुला प्रांगण है। निवास कक्षों के पार्श्व में भी आवासीय कोठरियां हैं। आवासीय कोठरियां सीढ़ियों से एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हैं कि लड़ाई के समय एक कोठरी से दूसरी कोठरी तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। निवास कक्षों के निचले तल में कक्षों की बाहरी दीवारों

में भी मारक रन्ध्र हैं।

किले का शस्त्रागार विशाल और भव्य है। इसके निकट ही अन्न भण्डार के लिए अलग कक्ष बना है।

किले के बुर्जों के शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ियां बनी हैं वे छोटी और संकीर्ण हैं।

किले की बाहरी दीवारों की ईंटें तो शिलाखंडों की हैं किन्तु निवास कक्ष मिट्टी की ईंटों से निर्मित हैं।

इस की बाह्य दीवारें आज भी खड़ी हैं किन्तु सन् 1856 में जब मियां हट्ठु को पद से हटाया गया तो इस का निर्माण कार्य रुक गया। सन् 1870 ई० के लगभग वीट्स ने जब इस किले को देखा तो इस पर निर्माण कार्य चल रहा था। सन् 1888 ई० में एक अंग्रेज़ यात्री वोगल ने जब इस किले का अवलोकन किया तो यह बनकर तैयार हो चुका था। वोगल ने अपने यात्रावृत्त में लिखा है कि नदी के पार एक किला है, जिसके निर्माण में काफी समय लगा था।



बुद्दल का किला

डुग्गर के जिन प्राचीन नगरों में ऐतिहासिक स्मारक मिलते हैं उनमें एक बुद्दल का किला भी है। जो सामरिक और प्रतिरक्षा की दृष्टि से ऐतिहासिक ग्रंथों में चर्चित रहा है।

बुद्दल राजौरी के उत्तर में अनुमानत: 55 किलोमीटर की दूरी पर बसा एक ऐसा गाँव है जिस का उल्लेख कल्हण कृत राजतरंगिणी में कई बार हुआ है। इस ग्रंथ में इसका नाम 'वाद्दिवास' वर्णित है। गाँव को राजनगरी नाम से भी अभिहित किया जाता है। लगता है यह किसी सामंत की राजधानी रहा है अथवा इसे किसी राजा या महाराजा ने बसाया है।

इस गाँव के दक्षिण में डेढ़ सौ मीटर की दूरी पर मुगल शैली में बना यह किला बुद्दल नाला के दायें तट पर स्थित है। भूविन्यास की दृष्टि से वर्गाकार इस किले की दीवारों में बुर्ज बने हैं जिनकी दीवारों में रन्ध्र हैं।

सन् 1870 के लगभग वीट्स ने जब यह किला देखा तो यह शोचनीय स्थिति में था। अब यह पूरी तरह से टूट चुका है और इसके पुरावशेष नाले के आस-पास बिखरे पड़े हैं।

इस किले के निकट ही गुरुद्वारा और मंदिर हैं। इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल यह किला हमारी विरासत का एक महत्त्वपूर्ण स्मारक है।



पतली का किला

यह किला ज़िला राजौरी के अन्तर्गत तहसील बुद्दल के 'गाला मैदान' के एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। गाला मैदान राजौरी से अनुमानतः पैंतीस कि.मी. दूर है। इसे गाला-कंडी नाम से भी अभिहित किया जाता है।

आकार में छोटा होते हुए भी यह किला प्रतिरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जिस टीले पर यह किला है वहां से राजौरी सलधार तथा तता पानी के इलाके पर दृष्टि रखी जा सकती है।

सामरिक दृष्टि से भी यह किला कम महत्त्वपूर्ण नहीं। इसके उत्तर में वेगवती पहाड़ी नदी अंजस प्रवाहित है। शेष भाग पहाड़ों और वन से घिरा है।

पत्थर की ईंटों से बना यह किला सुदृढ़ है। इसकी दीवारों में जिन भारी शिलाखंडों का उपयोग हुआ है उससे इस में मज़बूती आई है।

इस किले का निर्माण कहते हैं कि राजौरी के किसी मिर्ज़ा ने सतारहवीं सदी में सैरगाह के लिए करवाया। गर्मियों में राजपरिवार के लोग राजौरी की उमस से बचने कुछ दिनों के लिए इस किले में जाते और विश्राम करने के बाद लौट आते।

आज यह किला मृतप्राय : अवस्था में है।

❑❑❑

अज़ीमगढ़ का किला

यह किला राजौरी से पुंछ जाने वाली सड़क पर स्थित भिम्बर गली के निकट एक पहाड़ी पर निर्मित है। राजौरी के पश्चिमोत्तर में पत्थर की ईंटों से बना यह लघुकिला सामरिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यह किला अब जीर्णावस्था में है और इसके भीतर बने निवासकक्ष धराशायी हैं। इसके छोटे बुर्ज मुगलशैली में हैं।

इस किले का निर्माण राजा कर्म-उल्लाह खान के (1767-1808 ई०) बेटे रहीम-उल्लाहखान ने अज़ीमगढ़ का जागीरदार बनने के बाद करवाया। राजौरी के इतिहास के अनुसार राजा कर्म उल्लाह खान की राजपूत रानी का बेटा अग्गर खान जब राजौरी की गद्दी पर बैठा तो राजा कर्म-उल्लाह खान की मुस्लिम रानी के पेट से जन्म लेने वाले रहीम उल्लाह खान ने राजौरी की गद्दी पर अपना अधिकार इस तर्क के साथ उठाया कि वह मुस्लिम रानी का बेटा है, अत: राजा उसे ही होना चाहिए। राजा उग्गर खान ने अपने सौतेले भाई रहीम उल्लाह खान को समझाया बुझाया और उसे अज़ीमगढ़ की जागीर प्रदान करके उसे अज़ीमगढ़ भेज दिया।

राजा रहीमउल्लाह खान ने अज़ीमगढ़ की पहाड़ी पर इस किले का निर्माण करवाकर इसी में अपना आवासी महल बनवाया।

डुग्गर का यह ऐतिहासिक स्मारक असुरक्षित रहने के कारण जर्जरित अवस्था में खड़ा है।



सियोट का किला

यह छोटा किला सुन्दरवनी सियोट सड़क पर सुन्दरवनी से 16 किलोमीटर की दूरी पर बना है। इस किले की प्राचीर ही अब शेष है, बाकी सारा किला धराशायी है। किले का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि इस का निर्माण प्रतिरक्षा की दृष्टि से किया गया होगा। कहते हैं कि डोगरा शासकों के शासन काल में इस किले में सैनिक दल भी तैनात रहता था जो बाद में हटा लिया गया।

19 वीं सदी में बना यह किला महाराजा गुलाबसिंह की निर्मिति बताया जाता है।



मंगला का किला

डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला सुन्दरबनी नौशहरा सड़क पर स्थित एक पहाड़ी शिखर के ऊपर बना है। सुन्दरबनी से 24 किलोमीटर दूर पहाड़ी पर बना यह किला दृष्टिगत होता है।

किले के स्थापत्य का अनुशीलन करने से लगता है कि यह किला पूर्व मुगलकालीन है। इस किले का पुनर्निर्माण होता रहा है, अत: इस के मूल-स्वरूप में परिवर्तन हुआ है।

चारों ओर से शिला-खंडों की सुदृढ़ प्राकार से घिरा यह किला गिरि दुर्गों की कोटि में परिगणित होता है। इस किले का सामरिक दृष्टि से भी अत्याधिक महत्त्व रहा है। यह किला एक ऐसे स्थान पर बना है जहाँ शत्रु सेना का पहुँच पाना कठिन है। अत: शताब्दियों से इसे 'अजेय दुर्ग' माना जाता रहा है।

इस किले के भीतर मंगला देवी का मंदिर निर्मित है जो प्राचीन है। इस मंदिर का भी समय-समय पर उद्धार हुआ है जिस के कारण इस का स्थापत्य मिश्रित लगता है।

जनश्रुति है कि इस किले का निर्माण सिकन्दर के आक्रमण के समय जम्मू के राजा विजय सिंह की विधवा रानी मंगला ने करवाया था। अत: यह किला मंगला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु तारीख डोगरा देश के अनुसार इस दुर्ग का निर्माण मंगलिया वंश के किसी शासक ने करवाया अत: इस का नाम मंगला का किला पड़ा।



दराल का किला

यह किला नौशहरा से 29 किलोमीटर की दूरी पर नौशहरा दराल सड़क में स्थित एक ऊँची पहाड़ी पर बना है। गिरि दुर्ग शैली में निर्मित इस किले पर चढ़ना अति दुष्कर है। स्थानीय लोग पाँच मीटर लम्बी सीढ़ी की सहायता से इस किले तक पहुँचते हैं।

घने जंगलों, ऊँची चट्टानों और पहाड़ियों से घिरा यह किला कहते हैं कि मुगल कालीन है। जन श्रुतियों के अनुसार मुगल-सम्राट् जब कश्मीर के लिए इस मार्ग से गुजरते थे तो उन को सुरक्षा प्रदान करने के लिए इस क्षेत्र में ऐसे किलों का निर्माण किया गया था। एक अन्य दन्त कथा के अनुसार यह किला किसी स्थानीय सामंत का है।

प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित यह किला भग्नावस्था में पहाड़ी पर आज भी देखा जा सकता है। इसके अवशेषों के अध्ययन से लगता है कि इस का समय-समय पर उद्धार होता रहा है।



सवाई का किला

बुद्दल से तेरह किलोमीटर की दूरी पर सवाई नामक स्थान में एक पुराने किले के निशान मिलते हैं। इस स्थान तक पहुँचने के लिए पैदल-यात्रा करनी पड़ती है। पत्थरों से बने इस किले के अवशेष पहाड़ी पर देखे जा सकते हैं। कहते हैं कि इस किले का निर्माण किसी स्थानीय राणा ने करवाया था। एक अन्य दन्त कथा के अनुसार यह किला मुगल कालीन है।



गुलाबगढ़ का किला

यह किला काला कोट़ तहसील के अन्तर्गत मंगोरी की ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। कालाकोट से मंगोरी दस किलोमीटर दूर है। मंगोरी से एक पगडंडी इस किले की ओर जाती है। सीधी खड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद यह किला दृष्टिगत होता है। पहाड़ी चढ़ते समय मार्ग में कहीं भी जल उपलब्ध नहीं, अत: इस किले पर जाते समय पानी की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। पत्थरों से बना यह किला सामरिक महत्त्व का है। कहते हैं कि इस का निर्माण महाराजा गुलाबसिंह ने सन् 1825 के लगभग भिम्बर पर अधिकार करने के बाद करवाया था।

आज यह किला नष्ट प्राय:स्थिति में है।



पुंछ का किला

जम्मू के पश्चिम में 248 किलोमीटर की दूरी पर पुंछ नदी और वेतार नाला के तट पर बसे प्राचीन ऐतिहासिक नगर पुंछ का शोभा शाली यह किला पुंछ के पश्चिम में स्थित एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। सामरिक दृष्टि से अजेय इस किले के पश्चिमी किनारे में एक गहरा दर्रा है जो दौ सौ मीटर के लगभग चौड़ा है। इस दर्रा के निकट ही एक उपनदी प्रवाहित है जो इस किले की प्रतिरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण समझी जाती है।

इस किले का भू-विन्यास वर्गाकार है और यह एक सुदृढ़ प्राचीर से घिरा हुआ है। प्राचीर शिला खंडों से बनी है। इस किले की प्राचीर अनुमानतः आठ मीटर ऊँची है और इस की चिनाई में चूना-सुर्खी का प्रयोग हुआ है।

किले में प्रवेशार्थ जो ड्योढ़ी है वह उत्तरोन्मुख है। ड्योढ़ी के साथ निर्मित निवास कक्षा प्रहरियों के लिए बने हैं। इस दुर्ग की किला बन्दी के लिए जो परिखा (खाई) किले की बायीं ओर खोदी गई थी, कहते हैं कि उस की गहराई छः और सात मीटर के बीच थी किन्तु बाद में इसे भर दिया गया।

यह किला शिला खंडों से बने बुर्जों से सुशोभित है। ये बुर्ज एक ओर तो किले की प्राचीर को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए बने हैं दूसरे इन के ऊपर निरीक्षण केन्द्र स्थापित हैं जिन से शत्रु सेना की गतिविधियों का अवलोकन किया जा सके।

किले के सामने भी एक निरीक्षण केन्द्र बना है जिस का उपयोग प्रहरियों द्वारा किया जाता रहा है।

मुगल और पहाड़ी शैली के मिश्रित स्थापत्य में बना यह किला डुग्गर में निर्मित गिरि-समीपक दुर्ग की कोटि में रखा जा सकता है।

इस किले के भीतर जो महल बने हैं वे दो प्रकार के हैं।

पुराने महल और नए महल।

पुराने महल सन् 1823 ई० से पहले के हैं। नए महल राजा मोतीसिंह (1850-1891 ई०) और राजा बलदेव सिंह के शासन काल में बने बताये जाते हैं।

ऐतिहासिक पुस्तकों में उल्लेख मिलता है कि इस इतिहास प्रसिद्ध किले की नींव पुंछ के राजा अब्दुल रजाक (सन् 1701-1747 ई०) ने रखी। राजा अब्दुल रजाक के विषय में कहा जाता है कि वह पुंछ का एक शक्तिशाली राजा था। उसने कोटली, भिम्बर और मीरपुर को जीत कर जो धन प्राप्त किया वह उसने इस किले के निर्माण में खर्च किया। राजा अब्दुल रजाक के उत्तराधिकारी राजा मुहम्मद जमान खां (1747-48 ई०) ने इस के विकास के लिए योजना बनाई किन्तु एक षड्यंत्र में जब उस की मृत्यु हुई तो कश्मीर में तैनात मुगल सेना के एक सरदार इस्लाम यार खान ने इस किले पर अधिकार किया और इस को अपना आवास बनाकर तेरह वर्ष तक पुंछ का प्रशासन चलाया। सन् 1760 ई० में राजा मुहम्मद जमान खान के सब से छोटे बेटे अली गौहर ने कश्मीर के पठान सूबेदार की सहायता से इस किले पर पुनः अधिकार (1760-1787 ई०) करने के उद्देश्य से इस किले पर हमला किया किन्तु शहनाज ने उसके हमले को पछाड़ दिया। लोगों ने विद्रोह किया जिस का परिणाम यह निकला कि राजा अग्गर खान पुंछ का किला खाली करके राजौरी भाग गया। राजा अग्गर खान के बाद शहनाज का छोटा भाई बहादुर खान पुंछ का राजा बना। राजा खान बहादुर खान ने सन् 1792 ई० से लेकर 1798 ई० तक इस किले में बैठ कर शासन किया। सन् 1798 ई० में कश्मीर के सूबेदार ने उसे कश्मीर बुला कर भोजन में विष देकर मार डाला तो पुंछ के इस किले पर राजा खान के बज़ीर रूह-उल्लाह ने अधिकार किया। उसने अपने बेटे

अमीर खान को पुंछ की खाली गद्दी पर बैठाया और उस का वज़ीर बन कर स्वयं प्रशासन चलाने लगा। किन्तु पुंछ जागीर के संस्थापक सिराज-उल-द्दीन के एक वंशज और कहूटा के जागीर दार राजा शेरबाज ने अमीर खान को पुंछ का राजा स्वीकार न किया। वह कश्मीर के सूबेदार से सैनिक सहायता लेकर पुंछ आया। उसने अमीर खान और रूह-उल्लाह को पुंछ से भगा दिया। रूह-उल्लाह खान ने शेर वाज को चैन से पुंछ के किले में नहीं रहने दिया। उसने कश्मीर के नये सूबेदार से सैनिक सहायता ली और पुंछ पर हमला किया। उसे सफलता मिली और उसने पुंछ के किले पर अपना झंडा लहराया और अपने बेटे अमीर खान को दोबारा पुंछ का राजा बनाया।

सन् 1814 ई० में पुंछ का यह किला ऐतिहासिक घटनाओं के कारण पुनः चर्चित रहा। पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह ने भिम्बर और राजौरी के राजाओं से सहयोग प्राप्त करके गर्मियों में कश्मीर-विजय के लिए प्रस्थान किया। महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया। उसने अपनी सेना का एक दल बुद्दल के मार्ग से कश्मीर भेजा। दूसरा दल राजौरी के राजा अग्गर खान के नेतृत्व में बहरामगला की ओर बढ़ा। तीसरे दल का नेतृत्व महाराजा रणजीत सिंह ने स्वयं किया। महाराजा रणजीत सिंह पुंछ के मार्ग से आगे तो बढ़ा किन्तु रूह-उल्लाह खान ने महाराजा की सेना को सूरनकोट नदी के निकट लड़ाई के लिए ललकारा। खालसा सेना ने राजौरी के राजा अग्गर खान की सहायता से रूह-उल्लाह की सेना को पराजित किया और 28 जून 1814 ई० को पुंछ-नगर को घेरे में लिया। किन्तु खालसा सेना के पुंछ पहुँचने से पहले रूह-उल्लाह पुंछ का किला खाली करके पहाड़ों की ओर भाग गया। खालसा सेना तोश मैदान की ओर बढ़ी तो रूह-उल्लाह के सैनिकों ने खालसा सेना को मार्ग में कई स्थानों पर तंग किया। सेना तोश मैदान में पहुँची तो यहाँ उसका सामना कश्मीर के सूबेदार अज़ीम खान की सेना से हुआ। राजौरी के राजा के षड्यंत्र के कारण खालसा सेना को वापस लौटना पड़ा। लौटती खालसा सेना पर रूह-उल्लाह खान के सैनिकों ने कई

हमले किये। इसका परिणाम यह निकला कि महाराजा रणजीतसिंह ने क्रोध में आकर पुंछ नगर को आग लगा दी। जिससे यह नगर और किला क्षतिग्रस्त हुआ।

सन् 1819 ई० में खालसा सैनिक की गोली से अमीरखान का शरीरान्त हुआ तो रूह-उल्लाह खान ने अपने पोते और अमीर खान के बेटे मीरवाज़ को पुंछ का राजा घोषित किया। सन् 1819 ई० में ही रूह-उल्लाह खान भी अपने बेटे की मौत का गम सहन न करते हुए इस संसार को छोड़ कर चल बसा। रूह-उल्लाह खान के देहान्त के बाद राजा रणजीत सिंह ने कश्मीर पर अधिकार करने के लिए दूसरी बार खालसा सेना के साथ सन् 1819 ई० में प्रस्थान किया। इस बार पुंछ के राजा मीर बाज़ खान ने महाराजा की सहायता की और महाराजा ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया।

सन् 1822 ई० में पुंछ के राजा मीरबाज़ ने महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किया तो महाराजा ने राजौरी के राजा रहीम-उल्लाह को पुंछ के राजा को बन्दी बनाने का आदेश दिया। रहीम-उल्लाह ने पुंछ के किले पर अधिकार किया और राजा मीरबाज़ को बन्दी बनाकर लाहौर भेज दिया।

सन् 1823 ई० में महाराजा रणजीतसिंह ने पुंछ का इलाका अपने राज्य में सम्मिलित किया और इसका प्रशासन चलाने के लिए धनपत राय और हाकमसिंह को पुंछ भेजा। उन्होंने पुंछ के किले में डेरा तो जमा लिया किन्तु स्थानीय सरदारों ने उन्हें कोई सहयोग न दिया। परिणामस्वरूप प्रशासन व्यवस्था चरमरा उठी। अन्ततः महाराजा रणजीत सिंह को यथार्थ स्थिति का ज्ञान हुआ। उन्होंने पुंछ, भिम्बर और चम्बाल का क्षेत्र अपने प्रधानमंत्री ध्यानसिंह को 20 जून 1827 को जागीर के रूप में प्रदान किया। राजा ध्यानसिंह ने कृष्ण गोपाल को पुंछ का प्रशासक नियुक्त किया। वह इस किले में बैठकर प्रशासन तो चलाने लगा किन्तु उसने शीघ्र ही अनुभव किया कि स्थानीय सरदारों के सहयोग के बिना वह पुंछ का प्रशासन नहीं चला सकता,

अतः उसने पुंछ के एक सरदार शमसखान को अपना सहयोगी बनाया। कृष्ण गोपाल के देहावसान के बाद राजा ध्यानसिंह ने दिलबागसिंह को पुंछ भेजा। उसने किले में अपना आवास रखा और पुंछ का प्रशासन चलाने लगा। दीवान ने सरदार शमसखान को जब संदेह की दृष्टि से देखा तो दीवान और शमसखान में टकराव हुआ जिस का परिणाम यह निकला कि शमसखान ने पुंछ में स्थानीय सरदारों के महयोग से विद्रोह किया। उसने पुंछ क्षेत्र में जितने भी दुर्ग थे उन पर आधिपत्य स्थापित किया। किन्तु वह पुंछ के किले को नहीं जीत पाया। शमसखान के विद्रोह का दमन करने के लिए कश्मीर के सूबेदार मोहनसिंह को महाराजा ने आदेश दिया। मोहनसिंह ने एक सैनिक टुकड़ी शमसखान को पकड़ने या मारने के लिए भेजी। किन्तु यह सैनिक टुकड़ी असफल रही और सन् 1837 ई० में वापस लौट गई। जम्मू नरेश गुलाबसिंह का बड़ा बेटा उधमसिंह भी शमस का दमन करने कोटली के मार्ग से पुंछ आया किन्तु वह भी असफल लौटा। अन्ततः महाराजा रणजीतसिंह ने गुलाबसिंह को शमस का दमन करने पुंछ भेजा। गुलाबसिंह के आगमन का समाचार सुनकर शमस तहसील बाग में चला गया। यहाँ उसके ही एक मित्र शेरबाज़ खान ने उसका तथा उसके भतीजे राजबल्ली के सिर काट कर गुलाबसिंह को भेंट किये। गुलाबसिंह पुंछ में शांति स्थापित करके वापस लौट आया। इस प्रकार पुंछ के किले पर खालसा सरकार का अधिकार बना रहा।

महाराजा रणजीत सिंह के शरीर छोड़ने के बाद सन् 1843 ई० में पुंछ के जागीरदार तथा लाहौर दरबार के प्रधानमंत्री राजा ध्यानसिंह का भी बध हुआ। राजा ध्यानसिंह का बड़ा लड़का हीरासिंह भी लाहौर दरबार के षड्यंत्र का शिकार हुआ और 1845 ई० में वह भी मारा गया। राजा ध्यानसिंह के दो बेटे जवाहरसिंह और मोतीसिंह लाहौर से जम्मू आये और उन्होंने पुंछ की जागीर तथा भिम्बर, चम्बाल तथा जसरोटा का आधिपत्य गुलाबसिंह से मांगा किन्तु गुलाबसिंह बात टाल गया। 15 मार्च 1846 ई० में अमृतसर संधि के अन्तर्गत अंग्रेज़ों ने जब गुलाबसिंह को रियासत जम्मू-कश्मीर का महाराजा

स्वीकार किया तो राजा ध्यान सिंह के बेटों ने अपने पिता की जागीरों के सम्बन्ध में जानकारी माँगी। गुलाबसिंह ने उन्हें जब सन्तोषजनक उत्तर न दिया तो उन्होंने कोम्पनी सरकार के दरवाज़े खड़खड़ाये। किन्तु वहाँ से भी उन्हें यही उत्तर मिला कि वे इस सम्बन्ध में महाराजा गुलाबसिंह से सम्पर्क करें। अन्ततः महाराजा गुलाबसिंह ने कोटली-नौशहरा का क्षेत्र जवाहर सिंह को और पुंछ की जागीर मोतीसिंह को सौंपी। गुलाबसिंह के इस समझौते से दोनों भाई सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने अपना दावा लारेंस की अदालत पेश किया। लारेंस ने पुंछ की जागीर मोतीसिंह और चम्बाल की जागीर जवाहर सिंह को प्रदान करने का निर्णय दिया। यह निर्णय गुलाबसिंह के समझौते के अनुकूल था। इस निर्णय के बाद मोतीसिंह अपना परिवार और डोगरा सैनिकों के एक दल के साथ पुंछ आया और उसने अपना डेरा पुंछ के इसी किले में जमाया। राजा मोतीसिंह ने इस किले को नया रूप दिया और अपने निवास के लिए कई नए कक्ष भी बनवाए। राजा 450 लोगों के साथ इसी में रहता था। उसने सन् 1850 ई० से लेकर सन् 1892 ई० तक पुंछ का शासन चलाया। सन् 1892 ई० में राजा बलदेवसिंह पुंछ की गद्दी पर बैठा तो उस ने पुंछ के किले को नया रूप दिया और अपने आवास के लिए महल भी बनवाया। इस राजा के शासन काल में लार्ड मिन्टों भी पुंछ आया और उसने भी इस सुदृढ़ किले को देखा।

राजा बलदेव सिंह ने लार्ड मिन्टो के आगमन पर जो नए भवन बनवाए, राजा बलदेवसिंह और उसका परिवार बाद में उन्हीं में रहने लगा जिस से यह किला उपेक्षित रहने के कारण धीरे-धीरे भूमिसात हुआ। अब यह किला नष्टप्रायः स्थिति में है। किले की खंडित और भग्न दीवारें इस के अतीत की कहानी सुनाती प्रतीत होती है।



बहरामगला का किला

भिम्बर से कश्मीर जाते हुए मार्ग में जिन दुर्गों का अवलोकन किया जा सकता है उन में एक दुर्ग बहरामगला में भी स्थित है। बहरामगला भिम्बर से 112 किलोमीटर और श्रीनगर के दक्षिण-पश्चिम में 128 किलोमीटर दूरी पर बसा एक पर्वतीय गाँव है। यह गाँव रतन पीर पहाड़ के दर्रा के निकट स्थित है। इसी गाँव के नीचे यहाँ पुंछ और पुरनोई नदियों का संगम है वहीं यह किला पहाड़ी टीले पर बना है। किले से पच्चास मीटर नीचे चिट्टा नाला प्रवाहमान है। यह नाला इस किले को प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है।

पत्थर की ईंटों से बना यह किला आकार में छोटा है किन्तु इस का सामरिक दृष्टि से महत्व है। कई बार कश्मीर की ओर प्रस्थान करते सेना-नायकों, सामन्तों, राजाओं और महाराजाओं का यह पड़ाव भी रहा है।

पहाड़ी और मुगल शैली के मिश्रित रूप का दिग्दर्शन कराता यह किला चारों ओर से पत्थर की ईंटों से बनी ऊँची प्राचीर से घिरा है। किले के अन्दर बने निवासकक्ष गवाही देते हैं कि इस में सिपाही रहते थे।

इस किले के निकट निर्मित प्राचीन शिव मंदिर को देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह किला किसी हिन्दू राजा की ही निर्मिति रहा होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि सन् 1814 ई० में जब पंजाब नरेश महाराजा रणजीत सिंह की सेना कश्मीर पर हमला करने बरामगला में पहुँची, तब खालसा सेना ने प्रतिरक्षा की दृष्टि से इस किले का निर्माण किया।

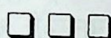
लोक परम्परा इस किले को बहराम नायक की निर्मिति मानती है। लगता भी यही है कि पुंछ सीमा पर दृष्टि रखने के लिए किसी राजा या सामन्त ने

16वीं सदी में इस किले का निर्माण करवाया होगा और बाद में समय-समय पर इस का उद्धार किया जाता रहा होगा।

अब यह किला टूटी-फूटी अवस्था में सूनेपन और वीरानगी का एहसास कराता अपने स्थान पर खड़ा है।

---

1. बहरामगला पुंछ से 45 कि. मी. की दूरी पर रत्नपीर पहाड़ की गोद्री में बसा एक अति रम्य गाँव हैं। समुद्र तल से इस की ऊँचाई 8,600 फुट है। चट्टा पानी ओर परनाई नदियों का संगम इसी स्थान पर होता है। यह गाँव मुगल सड़क के किनारे बसा है। कहते हैं कि इस सड़क का पुराना नाम नमक-मार्ग था, मुगलों ने इसे नया नाम दिया।
इस गाँव का पुराना नाम भैरों गली था। किन्तु स्थानीय सामन्त बहराम नायक ने इस गाँव का नाम अपने नाम पर बहराम गला सन् 1542 के बाद रखा।
कहते हैं कि बहराम नायक ने सन् 1542 ई० से पहले यहाँ पत्थर का जो किला बनवाया था, मुगल-सेना ने कश्मीर-विजय में उस का उपयोग आधार शिविर के रूप में किया। इस किले ने कई घमासान युद्ध देखे हैं और पुंछ के इतिहास में इसे गौरवमय स्थान प्राप्त रहा है।



मनकोट का किला

पुंछ जनपद के अन्तर्गत मनडेल नदी के तट पर बना यह लघु किला जिस पहाड़ी पर स्थित है वहाँ से एक मार्ग पुंछ से कोटली की ओर जाता है। पत्थरों से बने इस किले का निर्माण सीमावर्ती किले के रूप में किया गया लगता है। किले के निर्माता के विषय में तो कुछ ज्ञात नहीं किन्तु अनुमानतः यह किला अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में बना है।

यह किला पूरी तरह से अब खंडहर में परिवर्तित है।

---

1. पुंछ जनपद में 'मनकोट का किला' शैली में बने बीसियों किलों का उल्लेख दन्त कथाओं में मिलता है। लगता है कि इस क्षेत्र में जितने जागीरदार थे उतने ही किले भी थे। दो तीन गाँवों को मिलाकर जो भी सामंत अपना राज्य स्थापित करता, वह कच्चा-पक्का किला भी बना लेता था। सिक्ख काल में भी जब महाराजा रणजीत सिंह ने शमस खान का दमन किया तब भी शामस खान ने कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया था। अब भी कहीं-कहीं इन किलों के अवशेष मिलते हैं।



लोहरकोट का किला

परनोत्स (पुंछ) से इकत्तीस किलोमीटर की दूरी पर दर्रा तोश मैदान के निकट लोरन की पहाड़ी के ऊपर एक प्राचीन दुर्ग को 'लोहर कोट' के नाम से अभिहित किया गया है।

यह किला पुंछ से कश्मीर जाने के लिए कश्मीर का प्रवेशद्वार माना जाता था। प्राचीन काल में प्रायः इसी मार्ग से कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए सेना प्रस्थान करती थी। कश्मीर के शासक भी इसी मार्ग का उपयोग करते थे। सामरिक और प्रतिरक्षा की दृष्टि से इस किले को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था।

कल्हणकृत राजतंरगिणी में लोहरकोट का उल्लेख अनेक बार हुआ है। इस ग्रंथ में लोहरकोट के राजाओं को खश नरेश लिखा है। समझा जाता है कि लोहर कोट का पहला खस नरेश सिंह राज था। राजतंरगिणी के अनुसार सिंहराज लोहर आदि अनेक दुर्गों का अधिपति था। पुंछ के इतिहास के अनुसार राजा सिंहराज ने 950 ई० के लगभग लोहरकोट राज्य की स्थापना की और लोहरकोट को अपनी राजधानी बनाया। सिंहराज ने कश्मीर के राजा क्षेम गुप्त से अपनी बेटी दिद्दा का विवाह करके कश्मीर के शासक के साथ दौत्य सम्बन्ध स्थापित किए। कल्हण ने सिंहराज की तुलना इन्द्र से की है और उसे अद्वितीय वीर और साहसी योद्धा लिखा है। सिंहराज (950-958 ई०) को कई इतिहासकारों ने संघ राज भी लिखा है। सिंहराज के बाद विग्रह राज 958 ई० में लोहर कोट का राजा बना तो उसने अपने राज्य का विस्तार किया और जनश्रुतियों के अनुसार इस क्षेत्र में कई नए दुर्ग बनवाए।

सन् 1015 ई० में महमूद गजनवी ने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया तो वह लोहर कोट किले को न जीत सका। इस दुर्जेय किले ने महमूद गजनवी को पीछे हटने के लिए विवश किया। सन् 1021 में महमूद ने अपनी सेना को सुसंगठित करके पुन: कश्मीर में प्रवेश पाने के लिए लोहर कोट पर धावा बोला तो इस बार भी वह इस किले को न जीत सका और हताश और निराश होकर वापिस लौट गया।

विग्रह राज के बाद कुश्तीराज, उपकृष्ण, सुस्सल, प्रसमन, लोथन, मलार्जुन, हर्षित तथा गल्हण आदि लोहरकोट के शासक रहे। इन शासकों के शासन काल में इस किले ने कई उत्थान और पतन देखे।

❑❑❑

कालिंजर का किला

डुग्गर के जिन प्राचीन दुर्गों का उल्लेख इतिहास में वर्णित है उन में एक दुर्ग जम्मू के उत्तर-पश्चिम में 180 किलोमीटर की दूरी पर मीरपुर जनपद के अन्तर्गत कोटली की पहाड़ी पर स्थित है। इस गिरि दुर्ग के नीचे पुंछ नदी गहरी घाटी बनाती प्रवाहमान है।

शिला खण्डों से निर्मित यह सुदृढ़ किला भग्नावस्था में है और अब इस की बाहय दीवारें ही बची हैं जो इस की अजेयता और सुदृढ़ता का परिचय देती हैं। इस किले में भारी और बोझिल चट्टानों को दीवारों में जिस ढंग से चिना गया है उसे देख कर विस्मय होता है। यह किला जिस पहाड़ी पर स्थित है उस की ढलान को देख कर लगता है कि शत्रु सेना के लिए किले तक पहुँच पाना कठिन ही नहीं अपितु दुष्कर भी है। किले के पार्श्व में स्थित सघन वन सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

जनश्रुतियों के अनुसार इस किले की नींव राजा कल्ह ने रखी। राजा कल्ह का उल्लेख राज तरंगिणी में कश्मीर के राजा सुस्सल (1114-18ई०) के सन्दर्भ में मिलता है। उस के राज्य का नाम कालिंजर वर्णित है। सुस्सल ने कल्ह की पुत्री मेघ मंजरी से विवाह भी किया था और वह संकट के समय यहाँ के राजा की शरण में आया था। लोकश्रुति है कि यहाँ अब यह किला है इस के इर्द-गिर्द ही कालिंजर नगर था जो सोलहवीं शताब्दी तक आबाद था। मुगल-इतिहास में इस का उल्लेख 'कंलजर' नाम से हुआ है जिस से ज्ञात होता है कि मुगलकाल में भी इसे ख्याति प्राप्ति थी।

किन्तु चिभाल क्षेत्र के इतिहास का अध्ययन करने से यह विदित होता

है कि इस किले का निर्माण पुंछ के राजा अली गौहर खान ने सन् 1785 ई० में तब करवाया जब उसने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने के बाद इसे अपने राज्य का भाग बनाया। राजा गौहर अली खान ने उपलब्ध जानकारी के अनुसार इस किले का नाम अपने नाम पर 'कोट-अली' रखा जो बाद में कोटली के नाम से विख्यात हुआ। इतिहासकारों ने इस किले को 'कोटली का किला' भी लिखा है।

किले के इतिहास का अनुशीलन करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजा गौहर अली खान ने कालिंजर किले का पुन: उद्धार करके इसका नामकरण अपने नाम से किया।

भिम्बर के इतिहास में उल्लेख मिलता है कि राजा सुलतान खान जब भिम्बर की गद्दी पर बैठा तो उसने नौशहरा मीरपुर और कोटली पर भी अधिकार किया। इस प्रकार कोटली का यह किला पुंछ राजा के अधिकार से निकल गया। महाराजा रणजीतसिंह ने मीरपुर, भिम्बर नौशहरा और कोटली का इलाका एक जागीर के रूप में अपने प्रधानमंत्री राजा ध्यानसिंह को प्रदान किया। बाद में सन् 1850 ई० में अंग्रेज़ सरकार के एक निर्णय के अनुसार इस क्षेत्र का जागीरदार राजा ध्यानसिंह का बड़ा बेटा जवाहर सिंह बना। उसने यह क्षेत्र जम्मू कश्मीर राज्य को इस शर्त पर सौंपा कि उसे इस क्षेत्र की आय का तीसरा भाग प्रदान किया जाएगा। जम्मू कश्मीर के शासकों के शासनकाल में कालिंजर का यह ऐतिहासिक दुर्ग उपेक्षित रहने के कारण क्षतिग्रस्त हुआ और बाद में धीरे-धीरे ढह गया।

14 नवम्बर 1947 को पाकिस्तान की सेना की सहायता से कबाइलियों ने जब कोटली पर आक्रमण किया तो डोगरा सेना ने स्थानीय लोगों की सहायता से कोटली नगर की दुर्ग बन्दी की और शत्रु से टक्कर ली। भारतीय वायु सेना ने इस नगर दुर्ग को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए कई बार बम वर्षा की। किन्तु शत्रु की प्रबल सेना को जब रोकना सम्भव न हुआ तो

27 नवम्बर 1947 को कोटली के लोग भारतीय सेना के आदेश पर अपने नगर की दुर्ग बन्दी को तोड़ कर और कालिंजर के ऐतिहासिक दुर्ग को अलविदा कह कर नौशहरा की ओर बढ़े। कोटली नगर और किले को खाली देख कर शत्रु पक्ष की सेना ने इस पर अधिकार कर लिया।

डुग्गर के गौरव का प्रतीक यह दुर्ग अब पाक अधिकृत कश्मीर के अनाधिकार में है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओं को अपने वक्ष में समेटे यह किला अब केवल एक खंडहर के रूप में ही देखा जा सकता है।



मीरपुर का किला

कोटली के पश्चिम में अनुमानत: 30 किलोमीटर की दूरी पर वितस्ता और नील गोई नाला के संगम स्थल पर शिलाखंडों से निर्मित यह लघु किला डुग्गर के ऐतिहासिक नगर मीरपुर के दक्षिण में एक पहाड़ी टीले पर अवस्थित है।

यह किला मंगला गाँव में स्थित है, अत: इसे मंगला-देवी का किला भी कहते हैं।

राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय जम्मू के राजा अजयसिंह की रानी और राजा पुरु की बेटी मंगला के नाम पर मंगला गाँव आबाद हुआ। यह स्थान सामरिक और सुरक्षा की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण था, अत: यहाँ किले का निर्माण किया गया। जनश्रुतियों के अनुसार रानी मंगला ने जम्मू के राजा अजयसिंह की लड़ाई में मृत्यु होने के बाद इस किले का निर्माण करवाया।

डुग्गर के इतिहास का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि यह किला शेखा-खोखर और उसके पुत्र दशरथ खोखर की निर्मिति है। उसने मंगला-गाँव को अपनी राजधानी बनाया और अपने आवास के लिए महल भी बनवाये जिन्हें मढ़ी कहा गया।

दशरथ खोखर लाहौर के प्रशासक मुबारक शाह, मुहम्मद शाह और मलिक हलोल का समकालीन था। उसने लाहौर पर कई आक्रमण किए और दिल्ली के शासकों की नींद हराम की। वह जम्मू के राजा अजीब देव (1423-1454) का भी प्रतिद्वन्दी था। उसने चिभाल क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित

करके इस किले को अपना आवास बनाया।

मुगल काल में इस किले को डुग्गर का प्रवेश द्वार माना जाता था। यहीं से कश्मीर जाने के लिए पहाड़ों की श्रृंखला का आरम्भ होता है।

डोगरा शासकों के शासन काल में इस किले का उपयोग बन्दी गृह के रूप में होता रहा। सन् 1870 के लगभग यह किला उपयोग में आता रहा किन्तु बाद में अति जीर्ण होने के बाद इस का परित्याग किया गया।

सन् 1947 में जब पाकिस्तान ने कबायलियों को मीरपुर की ओर धकेला तो पाकिस्तान की सेना की सहायता से कबायलियों ने इस किले पर अक्तूबर 1947 में अधिकार किया।

अनाधिकृत कश्मीर में स्थित यह किला अब मंगला डैम परियोज़ना के अन्तर्गत जलसमाधि ले चुका है।



भिम्बर का किला

डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला भिम्बर कस्बा के उत्तर में भिम्बर नदी के तट के निकट एक ऐसे स्थान पर निर्मित है यहाँ से पंजाब के समतल भूखंड का अवलोकन सहज ही किया जा सकता है। यह किला गुजरात (पाकिस्तान) के उत्तर में 48 कि०मी०, जेहलम (पाकिस्तान) से 45 किलोमीटर, स्यालकोट से 80 किलोमीटर और श्रीनगर से 240 कि०मी० दूरी पर अवस्थित है। यह किला पंजाब-कश्मीर मार्ग पर बना है, अत: शताब्दियों से इस का सामरिक और राजनैतिक महत्त्व रहा है।

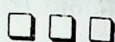
शिलाखंडों से निर्मित इस किले का स्थापत्य मुगल शैली से प्रभावित है। किले की ड्योढ़ी बताया जाता है मेहराबी थी और इस की दीवारों के चारों कोणों में जो बुर्ज बने थे उन में कई तलों में मारक रन्ध्र थे। आकार की दृष्टि से इस किले की परिगणना लघु किलों के अन्तर्गत की जाती है आयताकार इस किले की लम्बाई अनुमानत: 32 मीटर और चौड़ाई 10.5 मीटर (80' × 32') है। किले के भीतर सैनिकों के आवास के लिए कोठरियों के निशान हैं।

दन्त कथाओं के अनुसार इस किले का निर्माण चिभाल के राजा भूपचन्द ने सोलहवीं सदी में तब करवाया जब उसने अपने नाम पर 'भूपनगर' बसाया। भूपनगर का ही विकृत रूप बाद में भिम्बर प्रचलित हुआ और इस किले को 'भिम्बर का किला' नाम दिया गया। राजा भूपचन्द सम्राट् बावर का समकालीन था। कुछ विद्वानों का मत है कि यह किला रानी खान के शासनकाल के समय का है। स्थापत्य की दृष्टि से इस किले को मुगल शैली में बने किलों का लघु रूप कहा जा सकता है। मुगल सम्राट औरंगजेब के शासनकाल में मुगल सेना

ने भिम्बर की घेरा बन्दी की थी। उस समय भिम्बर का शासक इस्माईल खान था। राजा इस्माइल खान ने मुगल सेना के सन्मुख आत्म समर्पण किया अत: यह किला क्षतिग्रस्त होता-होता बच गया।

किन्तु भिम्बर के राजा सुलतान खान के शासनकाल में खालसा सेना ने इस किले को इसलिए क्षति पहुँचाई क्योंकि राजा सुलतान खान ने कश्मीर विजय अभिमान में महाराजा रणजीत सिंह से विश्वासघात किया था। सुलतान खान को दंडित करने के उद्देश्य से खालसा सेना ने सन् 1819 ई० में भिम्बर पर हमला किया। परिणामस्वरूप यह किला भी क्षतिग्रस्त हुआ।

इस किले के भग्नावशेप आज भी भिम्बर कस्बा के निकट देखे जा सकते हैं।



थरोची का किला

मुगल काल में मुगल सम्राटों ने भारत में जिन दुर्गों का निर्माण करवाया उन में एक दुर्ग, डुग्गर प्रदेश के अन्तर्गत भिम्बर क्षेत्र की पहाड़ी पर निर्मित है जो 'अकबर का किला' या थरोची का किला नाम से प्रसिद्ध है। यह किला कोटली के दक्षिण में 16 किलोमीटर तथा झंगड़ के पश्चिम में 35 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। मुगल शैली में निर्मित यह किला मीरपुर की सीमा में एक तंग घाटी में गोलपुर गाँव के निकट बना है। यहाँ से मीरपुर-नौशहरा की सड़क अलग होती है।

यह एक विस्तृत और भव्य किला है इस की प्राचीर भारी भरकम शिला खंडों से निर्मित है। प्राचीर के चारों कोणों और मध्य भाग में ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बने हैं जिन से इर्द-गिर्द के क्षेत्र पर दृष्टि रखी जा सकती है।

यह किला प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पहाड़ियों से घिरा होने के कारण इस पर विजय पाना सरल नहीं। एक सीमावर्ती दुर्ग होने के कारण इस का सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। किले के भीतर सैनिकों के आवास के लिए कोठरियां निर्मित है और जल की भी व्यवस्था है। किले की ड्योढ़ी विशाल है और इस के साथ जो सुदृढ़ दीवार है वह कठोर प्रस्तर शिलाओं से बनी है।

इतिहास में उल्लेख मिलता है कि इस किले का निर्माण मुगल सम्राट अकबर के आदेश पर करवाया गया मुगल सम्राट कश्मीर जाते समय इस किले में ठहरते थे। यह किला उन दिनों नौशहरा का प्रवेशद्वार माना जाता था।

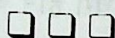
मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भिम्बर के शासकों ने इस किले पर अधिकार किया और इस का उपयोग एक प्रतिरक्षात्मक किले के रूप किया जाने लगा।

सन् 1870 ई० में विट्स ने इसे देखा तो यह ठीक-ठाक था और इस में तीस सैनिक तैनात थे।

सन् 1947 ई० में पाकिस्तान ने योजनाबद्ध ढंग से जम्मू कश्मीर में उपद्रव पैदा करने और इस पर अधिकार करने के लिए कबायलियों को मीरपुर जनपद की ओर धकेला तो कबायली बहुत बड़ी संख्या में मीरपुर और कोटली के क्षेत्र को रौंदते हुए थरोची तक पहुँच गए। थरोची किले में तैनात सैनिकों ने कबायलियों को आगे बढ़ने से रोका।

इस किले के शास्त्रागार में पुरानी तोपें तथा असला रखा हुआ था। सैनिकों ने इस का उपयोग किया और शत्रु-सेना पर तोप के गोले बरसाये। 25 अक्तूबर से लेकर 27 अक्तूबर तक कबायलियों ने इस किले को अपने घेरे में रखा। किन्तु किले के भीतर तैनात देशद्रोही सैनिकों से सांठ-गांठ करके शत्रु ने इस किले पर अधिकार कर लिया।

अब यह किला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।



अमरगढ़ का किला

मुगल शैली में बना यह लघु किला भिम्बर के उत्तर पूर्व में 14 किलो मीटर की दूरी पर अद्धी ढक्क स्थान के निकट अवस्थित है। शिला-खंडों से निर्मित यह किला भूविन्यास की दृष्टि से वर्गाकार है और इस के प्रत्येक कोण में ऊँचे--ऊँचे सुदृढ़ बुर्ज हैं जिन की दीवारों में मारक रन्ध्र कई तलों में बने हैं। किले के अन्दर जल की व्यवस्था है। किले की ड्योढ़ी सुदृढ़ प्रस्तर शिलाओं से बनी है। इस के अन्दर सैनिकों के आवास के लिए आवासीय कक्षों के निशान हैं।

इस किले का निर्माण पुंछ के राजाओं ने इस उद्देश्य से करवाया कि इस क्षेत्र की सीमाओं पर दृष्टि रखी जा सके।

सन् 1846 ई० में अमृतसर संधि के अन्तर्गत अंग्रेज़ों ने महाराजा गुलाबसिंह को जम्मू व कश्मीर का शासक स्वीकार किया तो यह किला भी उसके नियंत्रण में आ गया। किन्तु राजा ध्यान सिंह के पुत्र राजा जवाहर सिंह के आवेदन पर अंग्रेज़ों ने महाराजा गुलाबसिंह को राजा जवाहर सिंह के अनुरोध पर विचार करने का आग्रह किया तो गुलाबसिंह ने चिभाल का अधिकांश क्षेत्र जवाहरसिंह को सौंप कर उसे इस क्षेत्र का जागीरदार माना। किन्तु जवाहर सिंह इस भूभाग को सम्भाल न पाया। उसने एक तिहाई आयकर का समझौता गुलाबसिंह से किया और यह किला गुलाबसिंह को सौंप दिया।

इस किले से दस किलोमीटर दूर पहाड़ी के नीचे भिम्बर से श्रीनगर को सड़क जाती थी। अतः डोगरा राजाओं ने इस किले का उपयोग एक निरीक्षण केन्द्र के रूप में किया।

कठार का किला

यह एक सीमावर्ती किला है जो मीरपुर और कोटली की सीमा रेखा पर एक ऊँची पहाड़ी पर निर्मित है। यह एक लघु किला है जो प्रस्तर-शिलाओं से बना है। सामरिक दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण किला है। पुंछ नदी कुछ ही दूरी पर इस किले के नीचे से प्रवाहमान है।

इस किले की परिगणना भिम्बर के किलों के अन्तर्गत की जाती है। इस किले का निर्माण सतारहवीं सदी में भिम्बर के किसी सुलतान द्वारा करवाया गया बताया जाता है। 1947 से पूर्व ही यह किला नष्ट प्राय: स्थिति में था।

ओयन का किला

भिम्बर क्षेत्र में यह किला वितस्ता नदी के किनारे एक ऐसे स्थान पर बना है जो प्रतिरक्षा की दृष्टि से विशेप महत्त्व रखता है। शिला खंडों से निर्मित यह किला आकार में छोटा है और स्थापत्य की दृष्टि से मुगल शैली की अनुकृति लगता है। यह किला पहाड़ी के ऊपर बना है और इसका उपयोग डोगरा शासनकाल में भी एक सीमावर्ती किले के रूप में किया जाता रहा है।



करजाई का किला

लघु आकार में निर्मित यह किला समलयार पयार क्षेत्र की एक पहाड़ी पर स्थित है। पत्थर की शिलाओं से बने इस किले को सामरिक दृष्टि से अजेय जाना जाता रहा है। डोगरा शासनकाल में इस किले में एक सैनिक दल भी रहता था। सन् 1947 में कबायलियों ने इस किले पर अधिकार किया जिस से इसे बहुत क्षति पहुँची। भग्नावस्था में यह किला पहाड़ी पर आज भी देखा जा सकता है।

बालाकोट का किला

भिम्बर के अन्तर्गत कोटली के निकट बालाकोट गाँव में एक मुगल युगीन किले के अवशेप मिलते हैं जिस के विपय में कहा जाता है कि इस का निर्माण दुलीवंश के किसी मिर्जा वाला ने सतरहवीं सदी में करवाया। कहते हैं कि वाला स्थानीय सामंत और धनाढ्य व्यक्ति था। उसने सेड़ा और बनोटी गाँवों में भी एक-एक दुर्ग बनवाया जिस के निशान 1947 से पूर्व देखने को मिलते थे।



राजमहल का किला

गिरि दुर्ग कोटि में निर्मित यह किला कोटली और पुंछ की सीमा में राजमहल की ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इस किले के भीतर राजमहल भी था, अतः यह किला राजमहल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस पहाड़ी पर यह किला है उस की समुन्द्र तल से ऊँचाई अनुमानतः एक हज़ार मीटर है।

इस किले के निर्माता के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कई इसे भिम्बर के सुलतानों में से किसी एक की निर्मिति मानते हैं तो कईयों का मत है कि यह राजा जवाहर सिंह के समय की उपलब्धि है। राजा जवाहर सिंह सन् 1850 ई० में इस क्षेत्र का शासन था।



कम्बे का किला

पहाड़ी चट्टान पर शैल दुर्ग कोटि का यह किला नौशहरा क्षेत्र में भिम्बर और कोटली मार्ग में स्थित है। यह किला धर्मशाला के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। लघु-आकार का यह किला शिला-खण्डों से बना है। सामरिक दृष्टि से बने इस किले का महत्त्व रहा है। वेट्स ने इस किले का उल्लेख किया है।

❑❑❑

दबीगढ़ का किला

नौशहरा क्षेत्र में नौशहरा और कोटली के मार्ग में ऊँचे टीले पर बना यह छोटा किला कहते हैं कि शिलाखंडों से निर्मित है। इस का निर्माण सुरक्षा की दृष्टि से किया गया था। वेट्स ने सन् 1870 में जब इस किले को देखा तो इस में पच्चीस सैनिक तैनात थे।

झंगड़ का किला

यह किला झंगड़ के निकट खम्बा गाँव में सीमा के निकट स्थित है। नौशहरा से 25 किलोमीटर की दूरी पर निर्मित यह किला आकार में छोटा है। कहते हैं कि इस किले का निर्माण पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में सन् 1812 के बाद उस समय किया गया जब खालसा सेना ने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भिम्बर से नौशहरा की ओर प्रस्थान किया। इस किले का निर्माण प्रतिरक्षा की दृष्टि से किया गया।



वीरगढ़ का किला

यह किला डुग्गर के प्राचीन एवम् ऐतिहासिक नगर बब्वापुर में स्थित था। प्रसिद्ध इतिहासकार काह्नसिंह बलौरिया ने अपनी ऐतिहासिक रचना 'तारीख राजगान जम्मू कश्मीर' में इस दुर्ग की चर्चा की है। डा० अशोक जेरथ ने अपनी कृति फोर्टस एंड पैलेसेज आफ द वेस्टरन हिमालय में इस दुर्ग को थलौड़ा का दुर्ग' नाम दिया है और लिखा है कि पांडव वंशीय भब्रुवाहन ने सर्वप्रथम वीरगढ़ दुर्ग का ध्वंस किया तत्पश्चात् उसने अपने नाम पर बब्वापुर नगर की स्थापना की। डा. जेरथ के अनुसार बब्वापुर जब जम्मू की राजधानी थी तो इस की सुरक्षा के लिए कई दुर्ग निर्मित किए गए थे ताकि बाह्य आक्रमणकारियों से जनता और नगर को सुरक्षा प्रदान की जा सके। यह दुर्ग डा. जेरथ के मतानुसार कुछ समय के लिए मनकोट राज्य का एक हिस्सा भी रहा।

स्थानीय दन्त कथाओं का अध्ययन करें तो लगता है कि तैमूर के आक्रमण के समय बब्वापुर के आस-पास कोई किला था। पियुनी के राजपूत परिवारों से प्राप्त जानकारी के अनुसार उनके पूर्वजों ने तैमूर की सेना को ललकारा था। पराजित होने के बाद ही वे पियुनी में आ बसे थे। एक मत यह है कि तैमूर के आक्रमण के समय इस स्थान का नाम 'मनवाल' प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था और तैमूर ने अपनी डायरी में 'मनु' का जो उल्लेख किया है वह यही मनवाल गाँव था। स्थानीय लोगों के अनुसार मनवाल से डेढ़ किलोमीटर उत्तर में एक पहाड़ी पर एक किला के निशान थे। किन्तु अब वस्तु स्थिति यह है कि बब्वापुर क्षेत्र के आस-पास कहीं भी प्राचीन दुर्ग के पुरावशेष उपलब्ध नहीं हैं। लगता है कि यह किला बब्वापुर नगर की भांति भूमि में समाधि ले चुका है।



रामगढ़ (अखनूर) का किला

डुग्गर के इतिहास में रामगढ़ (अखनूर) एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान रहा है। यह डुग्गर के प्राचीन राज्यों में से एक था। राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय जम्मू के राजा अजयसिंह ने राजा पुरू के पक्ष में लड़ते हुए जब वीरगति प्राप्त की तो उस का बेटा विजयसिंह जम्मू की गद्दी पर बैठा। विजयसिंह के पुत्र का नाम देव गोप्त तथा पोते का नाम राम गोप्त था। राम गोप्त ने ही अखनूर के निकट रामगढ़ का दुर्ग चन्द्रभागा नदी के तट पर निर्मित किया। अखनूर के इतिहास में इस दुर्ग का उल्लेख बार-बार हुआ है। यह किला स्थानीय सामंतों और ज़मींदारों में भी कई बार लड़ाई का कारण बना जिस से इसे क्षति भी पहुँची। अकबर सम्राट के शासनकाल में इस किले पर जम्मू के एक राजकुमार लालदेव का अधिकार था किन्तु वह अज्ञात कारणों से इस दुर्ग को छोड़ कर सूरगढ़ में जा बसा था। चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित होने के कारण यह ऐतिहासिक दुर्ग भयंकर बाढ़ की लपेट में आने के कारण क्षतिग्रस्त हुआ और आज स्थिति यह है इसके पुरावशेष भी उपलब्ध नहीं।

'डुग्गर का इतिहास' में 'रामगढ़' का उल्लेख मिलता है। इस पुस्तक के अनुसार राजा कपूरदेव ने अपने छठे पुत्र भोजदेव को 1590 ई० के लगभग रामगढ़ का इलाका एक जागीर के रूप में प्रदान किया। राजा भोजदेव ने भी वहाँ एक किला बनवाया। उस का उत्तराधिकारी मियां विश्वम्भरदेव था। विश्म्भरदेव के बाद मियां समदु रामगढ़ का जागीरदार बना। मियां समदु के बाद उस का बेटा जयसिंह रामगढ़ का राजा बना तो उसने गढ़-अम्बारां पर कई आक्रमण किए। दोनों राज्यों के मध्य लड़ी गई लड़ाईयों से रामगढ़ दुर्ग को भी क्षति पहुँची और इसका परिणाम यह निकला कि जयसिंह के पुत्र मणि प्रकाश ने रामगढ़ छोड़ दिया और गढ़ को अपनी राजधानी बनाया। इससे भी इस किले का महत्व घट गया और यह उपेक्षा के कारण गिरकर मिट गया। ❑ ❑ ❑

कोटधार का किला

यह ऐतिहासिक फिला बलौरिया राजाओं की निर्मिति माना गया है। बसोहली से पच्चीस किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित महानपुर में इस किले के अवशेष दृष्टव्य है जो स्थापत्य की दृष्टि से मुगल शैली के लगते हैं। गाँव के चारों ओर कहते हैं कि चार ऊचे-ऊंचे बुर्ज थे जो एक कच्ची दीवार से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। ये बुर्ज इतने ऊंचे थे कि इन पर चढ़कर भड्डु, सुमरता तथा जसरोटा आदि पर दृष्टि रखी जा सकती थी। महाराजा गुलाबसिंह ने इन बुर्जों की मुरम्मत करवाई और इन्हें नया रूप दिया। महाराजा रणवीर सिंह (1856-85 ई०) के शासनकाल में इस दुर्ग को अनुपयोगी मानकर इनकी उपेक्षा की गई जिससे यह जर्जरित होकर गिरने लगा। अब स्थिति यह है कि तीन बुर्जों के चिन्ह बचे हैं जो इस दुर्ग की गौरव गाथा सुनाने हैं।

इस दुर्ग के विषय में कहा जाता है कि इस का निर्माण राय मानसिंह ने उस समय करवाया जब उसने अपने नाम पर महानपुर गाँव बसाया और दुर्ग के साथ जगदम्बा का मंदिर बनवाया। कहते हैं कि मूल दुर्ग में यह मंदिर मध्य भाग में था। मंदिर की दीवार में जो टाकरी का शिलालेख उपलब्ध है, उस में मंदिर निर्माण जो टाकरी का शिलालेख उपलब्ध है, उस में मंदिर का निर्माण समय वि. स. 1583 (1526 ई०) अंकित है। इस शिलालेख में जिस राय मानसिंह का उल्लेख हुआ है, कई विज्ञान उसे ही इस किले का निर्माण मानते हैं।



चनैनी की किला

हिमता राज्य का यह प्रसिद्ध किला तवी नदी के बायें तट पर स्थित था। मूलरूप में यह लघु दुर्ग था किन्तु बाद में चनैनी के राजाओं ने इस का विस्तार किया और उन द्वारा निर्मित महल भी इस दुर्ग की परिसीमा के भीतर बने। इस प्रकार यह एक महलनुमा किला था जिस की ऊँची प्राचीरें कठोर पाषाण शिलाओं से निर्मित थी। किले के भीतर जो महल था वह मुगल और राजस्थानी शैली का मिश्रित रूप लगता था। महल के भीतरी कक्षों पर मुगलशैली का प्रभाव और बाहरी छज्जों पर राजस्थानी रंगत देखी जा सकती थी। महल भीतर से आकर्षक एवं मोहक था जो मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित था, जिसका भीतरी भाग रानियों और उन की परिचायिकाओं के लिए था। पश्चिमोन्मुख इस की ड्योढ़ी तक पहुँचने के लिए एक चौड़ा सोपान पथ बना था। किले के भीतर भूमिगत कई कक्ष थे और एक गुप्त मार्ग भी था जो संकट के समय राज परिवार के लिए बनाया गया था। महल में लकड़ी का प्रयोग हुआ था। सन् 1960 में महल को आग लगी जिस से इस महलनुमा दुर्ग को क्षति पहुँची और यह धीरे-धीरे ढह गया। अब महल के बचे-खुचे अवशेष इस दुर्ग की करुण-गाथा सुनाते हैं।

चनैनी के किला को 'हिमता का किला' तथा 'शेरगढ़' के नाम से भी अभिहित किया जाता था। यह एक अद्‌भुत एवं आकर्षक किला था। इस किला का निर्माण कई चरणों में हुआ। इस की मुख्य ड्योढ़ी का निर्माण राजा दयालचन्द ने राजकुमार रामचन्द के विवाह के अवसर पर लगभग सन 1921 ई० में करवाया। इस ड्योढ़ी के साथ प्रहरियों के लिए दो कक्ष दायीं और बायीं ओर थे। किला के भीतर एक सुन्दर वाटिका भी थी।

चनैनी जागीर में ही संगेठ स्थान पर एक और किला था जिसे 'सिंहगढ़' कहा जाता था. किन्तु अब इस किला के अवशेष भी नज़र नहीं आते। ❑ ❑ ❑

नंगा किला

डुग्गर का यह ऐतिहासिक किला जम्मू से 42 किलोमीटर दूरी पर पूर्व-दक्षिण में तहसील साम्बा के अन्तर्गत नंगा गाँव में स्थित है। नंगा रामगढ़ से छह किलोमीटर पूर्वोन्मुख एक सीमावर्ती गाँव है। जिस में पाँच-सौ के लगभग घर हैं। इस गाँव के एक छोटे से टीला पर एक कच्चे-किला के अवशेष मिलते हैं। इस किला को गाँव के नाम पर नंगा का किला कहते हैं। नंगा का किला एक सीमावर्ती किला है। इस के नीचे देविका नदी प्रवाहमान है जो पाकिस्तान और भारत की सीमा मानी जाती है।

डोगरा शासकों के शासनकाल में इस किला का उपयोग अन्न भंडारण के लिए भी किया जाता था। इस के भीतर जो बड़े बड़े कक्ष बने थे उन में लगान की अन्न संकलित किया जाता था।

इस किला की दीवारें कच्ची थीं और उनकी ऊँचाई आठ से दस मीटर तक थी।

डोगरा शासकों ने पंजाब के साथ सटी सीमा पर जिन दुर्गों का निर्माण किया उन में यह एक महत्त्वपूर्ण किला था।

इस किला के निकट निर्मित प्राचीन मंदिर गवाही देते हैं कि नंगा-गाँव संस्कृति की दृष्टि से भी एक सम्पन्न गाँव था।



देवीगढ़ (रणवीर सिंह पुरा) का किला

यह एक सीमावर्ती किला है जो रणवीरसिंह पुरा के निकट स्थित है। इस का स्थापत्य स्थानीय लगता है क्योंकि यह आधा कच्चा और आधा पक्का है । जम्मू पर स्यालकोट के मार्ग से जब-जब भी आक्रमण हुए, इस किले को पहला निशाना बनाया जाता रहा। डोगरा राजाओं द्वारा निर्मित इस किले का उपयोग एक निरीक्षण केन्द्र के रूप में भी किया जाता रहा है। सिक्ख मिसलों के कई सरदारों ने इसे हस्तगत करने के बाद ही अपनी सेनाओं को जम्मू की ओर प्रस्थान करने के आदेश दिए। पंजाब नरेश महाराजा रणजीतसिंह के शासनकाल में भी इस किले को कई प्रहार सहन करना पड़े थे जिससे यह क्षतिग्रस्त होता ही रहा। इस किले में महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में सैनिकों का एक दल तैनात रहता था किन्तु महाराजा हरिसिंह ने इस किले से सैनिक हटा लिए जिस से यह किला वीरान रहने के कारण ढह गया।

'तारीख डोगरा देश' में नृसिंह दास नरगिस ने इस किले का उल्लेख किया है और लिखा है कि महारानी चंदा की आज्ञा से राजा लाल सिंह और शाम सिंह अट्टारी वाले के नेतृत्व में खालसा सेना ने जब इस दुर्ग पर आक्रमण किया तो अर्जुन मल ने इस दुर्ग की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी। सिक्ख काल में यह किला इसलिए भी चर्चित रहा क्योंकि यह जम्मू का प्रवेश द्वार माना जाता था।



सैय्यदगढ़ का किला

विश्नाह तहसील के अन्तर्गत 'सैय्यदगढ़' गाँव में डोगरा शासकों द्वारा निर्मित यह किला 'धूलि दुर्ग' की कोटि में परिगणित किया जा सकता है।

यह किला जम्मू के पूर्व दक्षिण में स्थित है। किले तक पहुँचने के लिए जम्मू-पठानकोट राष्ट्रीय पथ में स्थित 'झक्ख' से एक सम्पर्क सड़क चमने चक्क में जाती है। चमने-चक्क के साथ ही सैय्यदगढ़ है जिसे स्थानीय बोली में 'खैदगढ़' भी कहा जाता है।

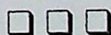
सैय्यदगढ़ गाँव में एक ऊँचा टीला है और यह किला उसी टीला पर निर्मित था। अब इस टीला पर सैंसियों के कुछ परिवार रहते हैं।

इस टीला के नीचे थोड़ी दूरी पर एक नाला प्रवाहमान है जो इसे प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है।

झक्ख से छ: किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस किला का अपना विशेष इतिहास रहा है। इस किला ने मध्ययुग में कई लड़ाईयां देखी हैं जिस के कारण यह कई बार रक्तरंजित हुआ।

रामगढ़ से निक्की तवी तक सीमा के साथ-साथ यदि यात्रा की जाए तो मार्ग में खोजपुर, चकरोई तथा दयोली में भी ऐसे टीले दृष्टिगत होते हैं जिन के विषय में कहा जा सकता है कि वहाँ भी किसी समय दुर्ग रहे होंगे।

जनश्रुतियों के अनुसार रिहाल गाँव में भी मंदिर के साथ एक किला था जो अब भूमिगत है।



टिक्करी का किला

जम्मू-उधमपुर सड़क पर स्थित टिक्करी गांव में एक पहाड़ी टीले पर धूलि-दुर्ग के अवशेष उपलब्ध हैं। यह टीला दोमेल के पूर्व में वावली के निकट स्थित है। टीला भूमितल से 30 मीटर के लगभग ऊँचा है। मिट्टी का बना यह कच्चा किला लगता है यात्रियों की सुरक्षा के लिए बनाया गया होगा क्योंकि जम्मू-श्रीनगर सड़क इस टीले के नीचे से गुजरती है। महाराजा गुलाबसिंह के शासनकाल में बताते हैं कि सैनिकों का छोटा दल इसमें तैनात रहता था।

डाक्टर अशोक जैरथ ने 'फोर्ट एण्ड पेलसिज आफ वेस्टरन हिमालय' पुस्तक में टिक्करी के किला का नाम चनास का किला लिखा है। उनके अनुसार राजा संग्रामदेव (1594-1625 ई०) के शासनकाल में भूति की सेना ने जम्मू के क्षेत्र पर अनाधिकार करने का प्रयास किया तो राजा ने भूति राज्य को सबक सीखने के लिए शिवदर्शन को भेजा। उसका सैनिक अभियान सफल रहा। उसे जम्मू के राजा की ओर से टिक्करी चनास की जागीर मिली। शिव दर्शन ने इस क्षेत्र का जागीरदार बनने के बाद एक किला बनवाया जो राष्ट्रीय राजमार्ग से एक किलोमीटर दूरी पर स्थित था। इस प्रकार टिक्करी और चनास में अलग-अलग किलों की मौजूदगी हो सकती है।

स्थानीय विद्वान् त्रिलोक सिंह चनासिया के अनुसार टिक्करी क्षेत्र में एक और किला था जिसे समसालों का किला कहा जाता है। यह किला झक्खड़ गाँव में स्थित था।

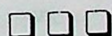


मरमत गलियान का किला

ज़िला डोडा के अन्तर्गत 'मरम्मत गलियान' छोटी-सी जगीर थी जिस के शासकों ने अपनी सुरक्षा के लिए एक कच्चा किला बनवाया था जो मरमत गलियान का किला नाम से प्रसिद्ध था। इस किले का उल्लेख फोर्ट एंड पेलसिज आफ वेस्टन हिमालय में भी मिलता है।

'तारीख डोगरा देश' में भी इस किला का उल्लेख मिलता है। इस ऐतिहासिक ग्रंथ के अनुसार चम्बा के एक सामंत ने मरमत गलियान पर अधिकार किया और अपने क्षेत्र की सुरक्षा के लिए क़िला का निर्माण करवाया।

जिला डोडा के अन्तर्गत खलैनी गाँव से मरमत के लिए गाड़ी सेवा उपलब्ध है। खलैनी से मरमत अनुमानत: तीस किलोमीटर दूर है। इस सड़क मार्ग में कलता गाँव आता है। कलता के निकट हंवल गाँव है। हंवल के ऊपर पहाड़ी शिखर पर यहाँ देद्धनी माता का मंदिर है, कहते हैं कि किला भी उसी के आस-पास था। किन्तु अब उस के अवशेष मिट चुके हैं।



चशोती का किला

यह किला पाडर क्षेत्र में गुलाबगढ़ से अनुमानत: पच्चीस किलोमीटर और मस्सु से 12 किलोमीटर उत्तर में चशोती गाँव में शक्ति मंदिर के निकट स्थित है। इस किला का भौगोलिक परिवेश सामरिक दृष्टि से अनुकूल इस लिए है कि इस के पूर्व में गतिमान भोटना नदी प्रवाहमान है, पश्चिम में सिर ऊँचा उठाये हुए जागल पहाड़ खड़ा है और पूर्व में स्थित करांग पर्वत और पूर्व-पश्चिम में दीना पहाड़ है। पांगी का क्षेत्र इस के पूर्व में और जंस्कार पूर्व उत्तर में है। इस किले का निर्माण कहते हैं कि वजीर जोराबर सिंह ने जंस्कार से लौटते हुए सुरक्षा की दृष्टि से सन् 1838 ई० में करवाया था। ऐतिहासिक मचेल गाँव इस के पूर्वोतर में 10 किलोमीटर दूर है।

अब यह किला पूर्ण रूपेण ध्वस्त है और इसकी दीवारों के अवशेष पत्थर के ढेर के रूप में देखे जा सकते हैं।

पाडर क्षेत्र में 17वीं सदी तक राणा शासन-प्रणाली का प्रचलन था। प्रत्येक राणा का अपना अलग किला होता था। पाडर में ऐसे आठ किले थे जिन के नाम सोहल, छतरगढ़, लियोंढी, गढ़, अठोली, इश्तिहारी, जाड़ और कब्वन आदि थे। ये संभी किले पत्थर के थे और कच्चे थे। इन में कई किलों का खंडहर आज भी दृष्टव्य हैं।



जरालकोट का किला

कटड़ा (वैष्णो देवी) से सात किलोमीटर पूर्व दिशा में स्थित पैंथल गाँव से एक किलोमीटर की दूरी पर झज्झर नाला के ऊपरी भाग में यहां महाकाली का मंदिर है, एक किला के चिन्ह दृष्टिगत हैं। इस किला को स्थानीय लोग जरालो का कोट या जरालकोट नाम से अभिहित करते हैं। किला के नाम पर अब यहां परिखा (खाई) ही बची है जो अनुमानतः तीस मीटर लम्बी और दस मीटर चौड़ी है। किले की दीवार के अवशेष 1980 तक दृष्टव्य थे किन्तु महाकाली का मंदिर बनाते समय उनका प्रयोग किया गया जिस से इस किले के कई निशान मिट गए।

जनश्रुतियों के अनुसार राणा उत्तम डडवाल ने स्थानीय लोगों की सहायता से जरालों को लड़ाई में पराजित किया और उन्हें चन्द्रभागा के पार भागने पर विवश किया। राणा उत्तम ने जो गांव बसाया उसे डूडरा कहते हैं।

---

1. जरालकोट पहाड़ी शैली में बना एक कच्चा किला था। इस का निर्माण जरालों ने अनुमानतः 16वीं सदी में किया।
2. जरालकोट के उजड़ जाने के बाद जम्वाल वंशीय राजा हठदेव ने सुखाल खड्ड के पश्चिमी तट पर एक कच्चे किला बनवाया जिसे गढ़ी कहा जाता था। हठदेव का पड़पोता पिथुदेव था। वह मियां डीडो का साथी था। डीडो इस गढ़ी में भी आता था। खालसा सेना ने 1817 ई० में गढ़ी पर आक्रमण किया और इसे जला डाला। गढ़ी के अवशेष पैंथल गाँव के निकट उपलब्ध हैं।



लाली कोट का किला

पंचारी उपतहसील के अन्तर्गत मौंगरी से आठ किलोमीटर की दूरी पर बिम्हाग क्षेत्र का एक प्रसिद्ध गाँव लालीकोट है जो खस संस्कृति का केन्द्र माना जाता है।

इसी गांव के एक टीले पर प्राचीन किले के पुरावशेष मिलते हैं। इस टीले को स्थानीय लोग 'किला' नाम से अभिहित करते हैं। यह किला पहाड़ी शैली में था। टीले के ऊपर एक चौड़ी पत्थरों की दीवार थी जिस में प्रवेशार्थ एक द्वार था। आपद के समय सैनिक तथा लोग किले में इकट्ठे हो जाते थे और आक्रमणकारी को पत्थर मार-मार कर भगा देते थे।

स्थानीय दन्तकथा का अध्ययन करने से पता चलता है कि यह किला स्थानीय कबीलों के मध्य लम्बे संघर्ष का कारण रहा है।

इस के अतिरिक्त पंचारी क्षेत्र में बीसियों छोटे-छोटे लोक शैली में बने छोटे-बड़े कोट हैं जिन्हें किला का ही रूप माना जाता है।

लाली कोट के अतिरिक्त इस क्षेत्र में अनेक कोट शैली के किले हैं जिन में निम्न अति प्रसिद्ध हैं-

1. **वसनोत कोटः**-यह बसन कबीला का किला है। इस का दरवाजा पत्थर का था। मध्यकाल में कलश कबीले के लोगों ने इस किले पर आक्रमण किया और वसन कबीला के लोगों को भगा दिया।
2. **खारका कोटः**-यह मुंगलेयाल कबीला का किला था। लाड कबीले के लोगों ने कंदो के नेतृत्व में इस किले पर आक्रमण किया। मुंगलेयाल बड़ी बीरता से लड़े और उन्होंने शत्रु को किले पर अधिकार नहीं करने दिया।
3. **तनोट कोटः**-यह तुंदु कबीला का किला है।
4. **कसनोट कोटः**-यहाँ कुसु खानदान के ठाकुर रहते हैं। इन का एक और किला भी था जिसे कुसानी कोट कहते हैं। इन के अतिरिक्त गुल्ली कबीला का कोट गलेओत में, बुद्ध कबीला का कोट बतोता में, सती लोगों का कोट सतिओता में, दुन्द जन का कोट दनधोता और नाग कबीला का कोट नागोती में था। सूर लोग सरोटा में, कुतरवाल केतरा गाँव में और वरमिथिये वरमोथा कोट में रहते हैं। ❑ ❑ ❑

भंड़ार कोट का किला

किशतबाड़ क्षेत्र का यह किला ऐतिहासिक घटनाओं के कारण बहुत ही चर्चित रहा है। 'हिस्टरी आफ किशतबाड़' के लेखक दूनीचन्द शर्मा ने इस किले के महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मुगलकाल में और उसके बाद भी जब-जब किशतबाड़ पर आक्रमण हुए, किशतबाड़ के शासकों ने इस दुर्ग को सुरक्षित माना और इस में शरण ली। यह दुर्ग एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर निर्मित है यहां शत्रु पक्ष की सेना का पहुँच पाना सहज नहीं समझा जाता था।

टूटी फूटी अवस्था में यह किला आज भी खड़ा है। इसकी जर्जरित दीवारें गौरव की कहानी सुनाती प्रतीत होती हैं।

भंडार कोट किश्तवाड़ से अनुमानतः आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां किला स्थित है उसके नीचे बलखाती चन्द्रभागा नदी प्रवाहमान है। यह स्थान भौगोलिक और मांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यहां से एक मार्ग पलमाड़ से होता हुआ मरुवा दच्चन की ओर जाता है तथा दूसरा मार्ग छातरो चिन गाँव से होता हुआ अनन्तनाग की ओर जाता है। भंडार कोट को किश्तवाड़ का दरवाजा भी माना जाता है। किश्तवाड़ के इतिहास में भंडारकोट दुर्ग को विशेष स्थान प्राप्त रहा है।



बुंजवाह का किला

किश्तवाड़ राज्य के अन्तर्गत बुंजवाह का परगना वजीर लखपत पाडियाल की जागीर था। इस जागीर की सुरक्षा के लिए पाडियाल सामन्तों ने जिस कच्चे किला का निर्माण किया, उसे 'बुंजवाह का किला' कहा जाने लगा।

बुंजवाह का परगना किथर, पत नाज़ी, बनून, ज़वार, नाली, ज्वालापुर, केवा, पतरी, मूरी, बलग्रां आदि दस ग्रामों में समाहित था। बुंजवाह का किला एक सीमावर्ती दुर्ग था जिस का निर्माण चम्बा राज्य पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से किया गया था।

वजीर लखपत ने महाराजा गुलाबसिंह की किश्तवाड़ विजय में सहायता की, अतः महाराजा ने उसे जम्मू राज्य की सेवा में ले लिया। वजीर की अनुपस्थिति में यह दुर्ग उपेक्षित रहने के कारण ढह गया। आज इस के खंडहर पत्थरों के ढेर के रूप में दृश्यमान हैं।



भेला का किला

भद्रवाह राज्य के अन्तर्गत भेला क़ा क्षेत्र भद्रवाह के वजीरों की जागीर था। महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल में लखमी राम बजीर इस जागीर का जागीरदार था।

भेला के जागीरदारों ने अपनी पहचान के लिए भेला में जो किला बनवाया उसे वजीरों का क़िला भी कहते थे। यह किला कुछ पक्का किन्तु इस का अधिकांश भाग कच्चा था।

इस किले तक पहुँचने के लिए डोडा से बारह किलोमीटर दूरी पर सूई गवाड़ी से एक सम्पर्क सड़क जाती है जिस की लम्बाई अनुमानत: तीन किलो मीटर है। थलेला तथा चराला नाला पार करने के बाद भेला गाँव आता है। कहा जाता है कि इसी गाँव के एक टीला पर यह किला स्थित था जो अब ध्वस्त है।

इस किला का उल्लेख तारीख डोगरा देश में भी हुआ है। बताया जाता है कि यह एक छोटा किन्तु सुदृढ़ किला था और इस का उपयोग अन्न भंडार के लिए भी किया जाता था।



जंगल वाड़ा का किला

जिला डोडा के अन्तर्गत जिस स्थान को आज ठाठरी नाम से अभिहित किया जाता है, उसी का प्राचीन नाम जंगलवाड़ा है। जंगलवाड़ा जम्मू से 301 किलोमीटर, पुल डोडा से 29 कि. मी. और भद्रवाह से 60 कि.मी. दूरी पर स्थित है।

जंगलवाड़ा का किला ठाठरी से तीन किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी के ऊपर निर्मित है। किले के इर्द-गिर्द जो गाँव बसा है, उसे भी 'जंगल वाड़ा' कहा जाता है। कहते हैं कि यहाँ बावा बुद्धिदास का आश्रम है, यह किला उसी के निकट बना था।

इस किले के अवशेष जंगल वाड़ा में पाषाण-शिलाओं के रूप में देखे जा सकते हैं।

जनश्रुतियों के अनुसार इस किला का निर्माण भद्रवाह राज्य के अन्तर्गत किसी सामंत ने सुरक्षा की दृष्टि से 17वीं सदी में करवाया। यह कच्चा किला था।

तारीख डोगरा देश में इस किला का उल्लेख मिलता है।



अमृत गढ़ का किला

जिला डोडा के अन्तर्गत भेला गाँव से 20 किलोमीटर दूरी पर 'अमृतगढ़' नामक एक गाँव एक पहाड़ी शिखर पर स्थित है। इस गाँव के टीले पर प्राचीन दुर्ग के अवशेष मिलते हैं। गाँव के लोग इस किला को 'अमृतगढ़ का किला' कहते हैं।

इस किला तक पहुँचने के लिए भेला से जो पगडंडी जाती है वह पनशेर-चगसु गाँवों से गुजरती है। इन गाँवों के ऊपर चम्पान धार में डंडासन देवी का मंदिर है और यह किला इस मंदिर के निकट है। किला के साथ जो जनत्रोन धार है वह इसे सुरक्षा प्रदान करती है।

लोकश्रुति है कि यह किला भेला के जागीरदारों की निर्मिति है। एक मत यह भी है कि अमृतगढ़ के किला को ही भेला का किला कहा जाता है।



भागवा का किला

वली मुहम्मद असीर किश्तवाड़ी ने अपनी पुस्तक 'तस्वीर जिला डोडा' में भागवा के किला का उल्लेख किया है। यह किला भागवा गाँव में स्थित है और इस की वर्तमान स्थिति खंडहर जैसी है। यह एक कच्चा किला था जो देसा क्षेत्र की सीमा पर निर्मित था। इस किले का रचना काल 17वीं सदी का अन्तिम चरण माना जाता है। इस काल में जिला डोडा छोटी-छोटी इकाईयों में विभाजित था और इकाईयों के प्रमुख 'राणा' हुआ करते थे। प्रत्येक राणा का अपना अलग किला होता था। अतः डोडा में जितने राणा थे उतने ही किले थे।

डोडा से भागवा पन्द्रह किलोमीटर पूर्व-उत्तर में स्थित एक पहाड़ी गाँव है। इस क्षेत्र में जो लाल दुमण शिखर है समझा जाता है यह दुर्ग भी इस शिखर के ऊपर निर्मित था। भागवा सिराज क्षेत्र का प्रसिद्ध दुर्ग माना जाता था।



पुरानी भूति का किला

जिला उधमपुर के अन्तर्गत पंचारी से आठ किलोमीटर की दूरी पर कुड्डल नामक गाँव के निकट एक पुराने किले के अवशेष दृष्टव्य हैं जिसे पुरानी भूति का किला कहा जाता है। किला के नाम पर यहाँ अब केवल एक जीर्ण दीवार ही बची है, शेष सब धाराशायी है। कहते हैं कि यह एक पत्थर का किला था और इसका कुछ भाग पक्का और कुछ कच्चा था। किला के भीतर भूति राजाओं के आवासीय कक्ष भी थे। किन्तु 17वीं सदी में दो रानियों के आक्रमण से सशंकित होकर भूति नरेश क्रिमची के किला में आ गए तो यह किला असुरक्षित होने के कारण ढह गया।

टिप्पणी:–भूति के राजाओं की वंशावली में 31 राजाओं के नाम हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं :-

1. राजा सोमेयाता 2. राजा दयादाता 3. राजा मानदाता 4. राजा विजयपाल 5. राजा मनसकारा 6. राजा स्थान-पोआर 7. राजा दिलपाल सत 8. राजा पितराज सत 9. राजा रोजैन 10. राजा विलोचन 11. राजा त्रिलोचन 12. राजा सती- अम्बर 13. राजा नन्द, 14. राजा डीठ 15. राजा श्री 16. राजा जीत 17. राजा साम्भ 18. राजा अवतार सिंह 19. राजा नील सिंह 20. राजा अजुपान 21. राजा करतार सिंह 22. राजा तख्त सिंह 23. राजा पहाड़ सिंह 24. राजा उदय सिंह 25. राजा ध्यान सिंह 26. राजा मान सिंह 27. राजा छतर सिंह 28. राजा अभय सिंह 29. राजा भूमिपाल सिंह 30. राजा बहादुर सिंह 31. राजा हिम्मत सिंह



मस्तगढ़ (जम्मू) का किला

मध्य युगीन यह किला जम्मू नगर में तौषी नदी के पश्चिमी तट पर बाहु-दुर्ग के बिल्कुल सामने स्थित था। यह पत्थर का किला था और इस का सन्निवेश प्राकृतिक परिखा, अट्टालक, सिंह द्वार और ऊँची और चौड़ी दीवार में समाहित था। तारीख डोगरा देश के अनुसार मस्तगढ़ की मस्जिद इस किले के मध्य में स्थित थी। इस मस्जिद की बाहरी दीवारों की लम्बाई 70 फुट और चौड़ाई 28 फुट थी किन्तु भीतर से यह 63 फुट लम्बी और 21 फुट 4 ईंच चौड़ी थी। इस का प्रवेश द्वार 17 फुट ऊँचा और 10 फुट चौड़ा था। मस्जिद के वास्तु विन्यास से यह सुस्पष्ट है कि यह एक विशाल किला था और सम्भवतः मुगल शैली में बना था। वर्तमान मस्तगढ़ मुहल्ला इस दुर्ग में समाहित रहा होगा।

इस दुर्ग के निर्माता के विषय में तो जानकारी उपलब्ध नहीं हुई। किन्तु समझा जाता है कि मुगल काल में इस का निर्माण हुआ होगा। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार सन् 1947 के पूर्व इस दुर्ग के अवशेष मस्तगढ़ मुहल्ला में दृष्टिगत थे किन्तु जैसे-जैसे मुहल्ला का विकास होता गया अवशेष मिटते गए।

एक मत यह भी है कि इतिहास में जिस जम्मू-दुर्ग का उल्लेख मिलता है, वह यही दुर्ग था।



कठुआ का किला

यह किला कठुआ के पूर्वोतर में और रावी नदी के पश्चिमी तट के निकट कठुआ से अढ़ाई किलोमीटर की दूरी पर एक समतल मैदान में निर्मित था। सन् 1947 तक कठुआ-पठानकोट सड़क इस किले के नीचे से गुजरती थी। स्थापत्य की दृष्टि से यह किला कई कक्षों पर आधारित एक साधारण-भवन जैसा दृष्टिगत होता था। इस में न तो अट्टालक थे और न ही सुरक्षा के लिए कोई परिखा या ऊँची लम्बी प्राचीर थी। फिर भी इस भवन को किला नाम से अभिहित किया जाता था।

तारीख डोगरा देश में भी इस किला का उल्लेख हुआ है। यह किला पक्की मिट्टी की ईंटों का बना था और इसकी छत्त लकड़ी की थी। सन् 1947 के अन्त तक इस किला का उपयोग आयकर कार्यालय के रूप में किया जाता था। किन्तु सन् 1948 में जब जम्मू-पठानकोट सड़क तैयार हो गई तो आयकर का कार्यालय लखनपुर में खुल गया जिस के कारण यह किला उपेक्षा के कारण ढह गया।

इस किला के अवशेष पुरानी कठुआ-पठानकोट सड़क पर आज भी दृष्टव्य हैं।

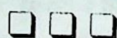


मनावर का किला

मनावर नदी के तट पर स्थित, एक पहाड़ी टीले पर बना यह ऐतिहासिक किला 'तारीख डोगरा देश' के लेखक नृसिंह दास नरगिस के अनुसार चंभाल राजाओं की निर्मिति था। इस दुर्ग का निर्माण एक सीमावर्ती दुर्ग के रूप में किया गया है। वास्तु विन्यास की दृष्टि से यह मुगल और पहाड़ी शैली में बना था।

जनश्रुतियों के अनुसार मनावर गाँव शेखर खोखर के पुत्र दशरथ खोखर ने अपनी चहेती मीना के नाम पर बसाया था और किला तथा महल का निर्माण भी उसी ने करवाया था।

किला और महल के अवशेष मनावर गाँव में आज भी उपलब्ध हैं किन्तु असंरक्षित रहने के कारण इन के लुप्त होने की आशंका है।



शताब गढ़ का किला

यह किला वटाला के दक्षिण में तीन किलोमीटर दूरी पर स्थित था। यह एक कच्चा किला था और इस का निर्माण पंजाब के अधिपति रणजीत सिंह के सेनानायक महासिंह और मियां मोहर सिंह ने वटाला पर आक्रमण करने के उद्देश्य से करवाया था। 'देवा-वटाला' पुस्तक के लेखक बलदेव सिंह चिब के अनुसार चिब्बों के साथ लड़ाई लड़ते हुए मियां मोहर सिंह मर गया तो महाराजा रणजीत सिंह स्वयं सेना लेकर आया और उसने वि० सम्वत 1872 तदानुसार सन 1816 ई० में वटाला पर अधिकार कर लिया। इससे इस किला का महत्त्व और भी बढ़ा गया और इस किला को देवा-वटाला में खालसा शक्ति का केन्द्र माना जाने लगा।



पद्ढार का किला

बलदेव सिंह चिब ने पद्ढार के किला को 'देवा वटाला' पुस्तक में 'रणवीर गढ़' का किला लिखा है। देवा-वटाला क्षेत्र का यह सब से बड़ा और प्रसिद्ध किला था। कहते हैं कि यह पत्थर का किला था और बहुत ही सुदृढ़ था। डोगरा शासकों के शासनकाल में इस किला में चालीस सैनिक रहते थे।

यह किला देवा-वटाला क्षेत्र के ठीक मध्य में था। बरनाला और गुलबहार इस दुर्ग के निकटस्थ गाँव थे। जो सड़क सीगरी से मुनावर जाती थी, यह किला सड़क के ऊपर नदी के किनारे निर्मित था।

सन् 1947 ई० में इस किला को बहुत क्षति पहुँची जिससे यह खंडहर में बदल गया। किला के निशान, कहते हैं, अभी तक उपलब्ध हैं।



शाह कोट का किला

पीर पंचाल घाटी में मुगल काल में जो किले बने उन में 'शाहकोट का किला' विशेष रूप से इसलिए उल्लेखनीय है क्योंकि डुग्गर और कश्मीर की सीमा पर बना यह अपने ढंग का अलग किला था।

मुगल सड़क पर निर्मित अलियावाद सराय से इस की दूरी केवल चार किलोमीटर आंकी गई है। यह पत्थर का किला था और मुगल काल में इस का उपयोग एक निरीक्षण केन्द्र के रूप में किया जाता था।

'ए गज़टेयर आफ कश्मीर' के सम्पादक वेट्स ने इस किला की चर्चा की है। स्थानीय इतिहासकारों ने इसे पीर पंचाल का एक सुरक्षित दुर्ग माना है।

समझा जाता है कि इस किला का निर्माण किसी स्थानीय सामंत ने मुगल राजपरिवार के सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से करवाया होगा।

यह किला अब भग्नावस्था में दृष्टव्य है।



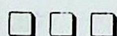
मणिपुर का किला

मनकोट के इतिहास में उल्लेख मिलता है कि इस राज्य के राजा मानिक देव ने बसन्तर नदी के तट पर एक सीमावर्ती दुर्ग का निर्माण करवाया था। इस दुर्ग के अवशेष ढूंढ़ने पर भी नहीं मिले। लगता है कि यह किला या तो बाढ़ की लपेट में आने के कारण बह गया है या इसके पुरावशेष लुप्त हैं।

गिरगटेल का किला

इस किला का उल्लेख 'तारीख डोगरा देश' में मिलता है। इस किला के विषय में केवल इतना ही वर्णन मिलता है कि पटेयाल राजपूत शाखा ने इस का निर्माण करवाया था। यह दुर्ग 17वीं सदी की निर्मिति था। इस को 'घनों की गढ़ी' नाम से अभिहित किया जाता था। यह पत्थरों के ढेर के रूप में देखा गया।

इस दुर्ग की भौगोलिक स्थिति से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध नहीं हुई।



संगलाई का किला

पत्थर से बना यह एक सीमावर्ती दुर्ग था जिसका निर्माण भिम्बर और नौशहरा की सीमा पर किया गया था। तारीख डोगरा देश के अनुसार यह किला महाला वंश की निर्मिति था। सामंत युगीन इस किला के स्थापत्य और भू-विन्यास के विषय में तो कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई। किन्तु लगता है कि इस का स्वरूप लोक-शैली में रहा होगा।

इस किला की वर्तमान स्थिति से सम्बन्धित कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई। लगता है कि यह दुर्ग अब धराशायी है।

ठारह का किला

यह किला कोटली क्षेत्र में ठारह स्थान पर निर्मित था। इस के निर्माता तथा वास्तु विन्यास से सम्बन्धित तो कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हुई किन्तु समझा जाता है कि यह दुर्ग अब भग्नावस्था में होगा। इतिहासकार काहना सिंह बलौरिया तथा नृसिंहदास नरगिस ने इस किला को उल्लेख किया है।

वरजन का किला

तारीख-डोगरा देश के अनुसार यह किला राजौरी और बुद्दल की सीमा पर था। लगता है कि पत्थर का बना यह किला सामंत-युग की निर्मिति था। 'तारीख डोगरा देश' में नृसिंह दास नरगिस ने इस किला का संक्षिप्त वर्णन किया है।



पतनी का किला

यह लघु दुर्ग नौशहरा क्षेत्र में नारवां वंश के किसी सामन्त ने अनुमानत: सतारहवीं सदी में बनवाया था। नृसिंहदास नरगिस ने इस किला का संक्षिप्त वर्णन तारीख डोगरा देश में किया है। पतनी का उल्लेख 'देवा वटाला' पुस्तक में भी हुआ है। लगता है कि किला या तो देवा-वटाला की सीमा पर था या इस क्षेत्र के ही अन्तर्गत था।

इस किला की भौगोलिक स्थिति के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई। सम्भव है कि यह किला अब धाराशायी है।

मालतीगढ़ का किला

यह किला तहसील रामनगर के अन्तर्गत कोह्ग के उतर में मालती गढ़ गाँव के एक ऊँचे टीले पर निर्मित था। यह एक सीमावर्ती किला था और बिलावर राज्य की सीमा के साथ पत्थरों से निर्मित था। कहते हैं कि मालती गढ़ पन्द्रहवीं सदी में किसी स्थानीय राणा की राजधानी थी। बन्दरालता के शासकों ने पहले मालतीगढ़ किला को जीता और बाद में कोह्ग के राणा को पराजित किया।

किला के नाम पर मालती गढ़ में अब पत्थरों का एक ढेर ही बचा है, शेष किला धराशायी है।



कमबे का किला

नौशहरा क्षेत्र में भिम्बर और कोटली मार्ग पर यह लघु किला एक महाड़ी चट्टान के ऊपर बना था। यह धर्मशाला के दक्षिण-पश्चिम में था। विग (Vigue) ने इस किला का उल्लेख किया है। इस किले की वर्तमान स्थिति से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

गोला का किला

यह मध्य युगीन किला तहसील कालाकोट के अन्तर्गत कैंची मोड़ से जो सड़क कलैरा गाँव की ओर जाती है, वहाँ से आठ किलोमीटर की दूरी पर एक घने वन में एक पहाड़ी टीला के ऊपर बना है। किला तक पहुँचना कठिन है, अत: मार्गदर्शक की सहायता से ही इसका दिग्दर्शन किया जा सकता है।

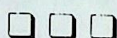
यह किला वास्तु-विन्यास की दृष्टि से पहाड़ी शैली में बना है। किला के अवशेष जर्जरित दीवारों के रूप में देखे जा सकते हैं।



सुरन कोट का किला

डुग्गर के इस प्राचीन ऐतिहासिक स्थान का उल्लेख राजतरंगिणी में 'स्वर्णिक' के नाम से हुआ है। जम्मू-कश्मीर सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित जम्मू-कश्मीर डिस्ट्रिक प्रोफाइलस के अनुसार स्वर्णिक में एक बड़ा किला था जिसे कोट कहते थे। अत: पहले इस स्थान को स्वर्णिक कोट कहते थे और बहुत बाद में इस नाम में परिवर्तन हुआ और इसे सुरन कोट कहा जाने लगा।

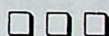
लोहर कोट के शासक संघराज को कल्हण ने कई दुर्गों का अधिपति कहा है और सम्भव है कि यह दुर्ग भी उसके राज्य का एक अंग हो। समझा जाता है कि इस किले की मौजूदगी सुरन कोट नाला के तट के साथ स्थित पहाड़ी टीला पर थी। किन्तु अब इस किला के निशान मिट चुके हैं।



मनानु का किला

बलबालता अंचल में मनानु गाँव में स्थित एक पहाड़ी के ऊपर किला का उल्लेख राजदर्शनी में मिलता है। यह किला कोट शैली में निर्मित था और इस की दीवारों की नींवों के अवशेष कुछ वर्ष पूर्व पहाड़ी के ऊपर बिखरे पड़े थे किन्तु कुछ पशुचारक परिवारों ने जब उस पहाड़ी पर मकान बनाये तो इस किले के चिन्ह मिटने लगे। इस किला को एक मार्ग थाती के जिज्ज कोटली से होता हुआ जाता है। जिज्ज कोटली से मनानु गाँव तीन किलोमीटर और किला उससे दो किलोमीटर दूर तक पहाड़ी पर है।

राजदर्शनी में वर्णित है कि इस किला पर जम्मू की सेना ने आक्रमण किया था और किला के स्वामी 'दूला' को दंडित किया था। यह किला मध्यकाल की निर्मिति माना जाता है।



धंती का किला

यह किला कालाकोट के अन्तर्गत पंचायत बरोह की एक पहाड़ी पर निर्मित है। इस किला तक पहुँचने के लिए जम्मू से तता पानी तक बस- सेवा उपलब्ध है। ततापानी से एक कच्ची सड़क बरोह की ओर जाती है। यह सड़क तीन किलोमीटर लम्बी है। बरोह से दरकेरी की ओर एक पगडंडी जाती है जो लगभग दो किलोमीटर लम्बी है। दरकारी से कुछ दूर आगे मौला गाला है जो दो पहाड़ियों के बीच एक तंग दर्रा है। इस दर्रा के उत्तर में जो पहाड़ी है उस के शिखर पर एक मैदान में यह किला बना है। यह पक्का किला है और स्थापत्य की दृष्टि से मुगल शैली में बना लगता है। किला के भीतर कई कक्ष बने हैं जिनमें अब कई गुज्जर परिवार रहते हैं।

'धंती का किला' एक ऐतिहासिक दुर्ग है और इस की परिगणना गिरि दुर्ग के अन्तर्गत की जा सकती है। शत्रु सेना का किला तक पहुँचना इसलिए कठिन है कि इस का भौगोलिक परिवेश इसे चारों ओर से सुरक्षा प्रदान करता है।

यह दुर्ग मुगल-काल की रचना माना जाता है। इस की सुदृढ़ प्राचीरें तथा विशाल कक्ष इस की भव्यता का दिग्दर्शक हैं।

धंती के किला का यदि सामरिक दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो लगता है कि इस किला का निर्माण सुरक्षा की दृष्टि से किया गया है। इस किला को जीत पाना किसी के लिए भी सहज नहीं था, अत: इस किला को अति सुरक्षित माना जाता था।

धंती का क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से भी अति सम्पन्न लगता है।



सरयां का किला

रामनगर के पूर्वोतर में 7 किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी गाँव सत्यां है जिस के विषय में कहा जाता है कि यह गाँव बन्दरालता क्षेत्र के सशक्त राणा की राजधानी था। प्रत्येक राणा की पहचान उसके दुर्ग से होती थी। अत: सरयां के राणा की भी एक कोट शैली में सुदृढ़ किला था जिस के भीतर कई कक्ष थे।

सोलहवीं सदी में वृहतरदेव ने सरयां पर आक्रमण किया तो यह किला क्षतिग्रस्त हुआ। राजा वृहतर देव ने सरयां के स्थान पर बन्दरालता (रामनगर) को जब अपनी राजधानी बनाया तो यह किला वीरानगी के कारण क्षतिग्रस्त हुआ।

आज सरयां ग्राम में राणा के महल और किला के अवशेष बिखरे नज़र आते हैं जिन को देखकर इस किले के गौरवमय इतिहास की झलक मिलती हैं।

इस किला के निकट ही दसवीं सदी का बना जालन्धरा देवी का मंदिर है जिस का स्थापत्य बबौर के मंदिरों से मिलता जुलता है। कहते हैं कि यह मंदिर पहले किला के भीतर था।

सरयां गाँव के साथ ही थोड़ी दूरी पर एक पहाड़ी चट्टान पर उत्कीर्ण शिलालेख भी उपलब्ध हैं जिन्हें अभी पढ़ा नहीं गया है।

'सरयां गाँव' को बन्दरालता क्षेत्र में आज भी एक सांस्कृतिक केन्द्र माना जाता है। इस गाँव में निर्मित मंदिरों का शिल्प इस की गौरव-गाथा सुनाता है। लोकगीत, लोक-संगीत और वास्तु कला का भी यह गाँव सदियों से एक केन्द्र रहा है।

डुग्गर के वे गाँव और स्थान जिन के विषय में कहा जाता है कि वहाँ मध्ययुग में कोट शैली में बने मिट्‌टी या पत्थर के कच्चे लघु किले थे।

1. धारा कोट - कटड़ा वैष्णोदेवी - रियासी
2. श्री कोट - खंदक पैंथल - उधमपुर
3. सावला कोट -
4. सुरु कोट - पंचारी - उधमपुर
5. रोत कोट - पंचारी - उधमपुर
6. चड़ाला कोट - पंचारी - उधमपुर
7. डाडन कोट - पंचारी - उधमपुर
8. डंगा कोट - रियासी - उधमपुर
9. बलमत कोट - महौर - उधमपुर
10. बागन कोट - महौर - उधमपुर
11. खन्नी कोट - महौर - उधमपुर
12. सौल कोट - महौर - उधमपुर
13. धारा कोट - महौर - उधमपुर
14. संगल कोट - रियासी - उधमपुर
15. बुस्सर कोट - पंचारी - उधमपुर
16. प्रमण कोट - महौर - उधमपुर
17. मम्मन कोट - महौर - उधमपुर
18. काला कोट - काला कोट - उधमपुर
19. चन्द्र कोट - रामवन - डोडा
20. ठाकरा कोट - रियासी - उधमपुर

21. डंडा कोट - रियासी - उधमपुर

22. सलाल कोट (पुराना) - रियासी - उधमपुर

23. खैरी कोट - रियासी - उधमपुर

24. करखान कोट - पंचारी -- उधमपुर

25. बंगाली कोट - पंचारी - उधमपुर

26. कोरिया कोट - पंचारी - उधमपुर

27. ग्रां कोट - पंचारी - उधमपुर

28. इन्द्र कोट - राजौरी - राजौरी

29. बुस्सर कोट - पंचारी - उधमपुर

30. गुज़ाले कोट - पंचारी - उधमपुर

31. जरालों का कोट - पैंथल - उधमपुर

32. मणिकोट - रामकोट - कठुआ

33. धर्मकोट - बसोहली - कठुआ

34. चार कोट - कोटली - मीरपुर

35. सब्ज कोट - कोटली - मीरपुर

36. मगर कोट - रामवन - डोडा

37. बरेओत कोट - पंचारी - उधमपुर

38. लाली कोट - पंचारी - उधमपुर

39. बसनोत कोट - पंचारी - उधमपुर

40. ठाठा कोट - पंचारी - उधमपुर

41. पंड कोट - पंचारी - उधमपुर

42. समधार कोट - पंचारी - उधमपुर

43. ढलकोट - मेंढर - पुंछ

44. सुरनकोट (पुराना) सुरनकोट - पुंछ

45. नार कोट - कोटली - मीरपुर

46. वाला कोट - कोटली - मीरपुर

47. भंडार कोट (पुराना) किश्तवाड़ -डोडा

48. भाट कोट - किश्तवाड़ - डोडा

49. ज्ञान कोट - जिज्जली - उधमपुर

50. मल कोट - नड्ड - साम्बा - जम्मू

51 खारका कोट - पंचारी - उधमपुर

52. तनोट कोट - पंचारी - उधमपुर

53. कसनोट कोट - पंचारी - उधमपुर

54. कुसानी कोट - पंचारी - उधमपुर

55. सुर कोट - किश्तवाड़ - डोडा

56. नीर कोट - किश्तवाड़ - डोडा

57. दयोली कोट - पंचारी - उधमपुर

58. गुरसाला कोट - पंचारी - उधमपुर

59. पंचर कोट - पंचारी - उधमपुर

60. मंझाकोट - मंझाकोट - राजौरी

61. नीलकोट - महौर - उधमपुर
(प्राचीन नाम - नीलाश्व)

62. सौला कोट (प्राचीन नाम सावर्णिक ग्राम) महौर - उधमपुर

63. लोहर कोट - राजपुरा मंडी - पुंछ
(लोरनं)

64. टटैनी कोट - पंचारी - उधमपुर

65. भुड़ाल कोट - पंचारी - उधमपुर

66. शेर गढ़ - चनैनी - उधमपुर

67. सिंह गढ़ - चनैनी- संगेठ - उधमपुर

68. राम गढ़ - अस्सर- बग्गर - डोडा

69. शिवगढ़ - पत्नी टॉप - डोडा

70. गढ़ बबौर - मनवाल - रामनगर, उधमपुर

71. तनोड़ गढ़ - महौर - उधमपुर

72. शेर गढ़ी - महौर - उधमपुर

73. प्रताप गढ़ - (छावनी) जम्मू

74. थड़ा धार गढ़ - बसोहली - कठुआ

75. ध्यान गढ़ - रियासी - उधमपुर

76. सिर गढ़

77. दरवार गढ़ - (किला नुमा महल) जम्मू

78. वाई कोट (रियासी)

❑❑❑

धन्यवाद

निम्न साहित्यकार मित्रों, सूचकों, मार्ग-दर्शकों तथा इतिहास प्रेमियों का सक्रिय सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद

1. स्व० रोमाल सिंह शटियाण–गुलाबगढ़ (पाडर) डोडा
2. श्री रत्न पाडरी–गुलाबगढ़-डोडा
3. श्री हंसराज राठौर–चशोती (पाडर) डोडा
4. श्री हरिकृष्ण शर्मा–सरकूट–किश्तवाड़-डोडा
5. श्री लाल चन्द दर्जी–भद्रवाह-डोडा
6. स्व० इन्द्रसिंह-ग्राम बसनोत (पंचारी) उधमपुर
7. स्व० कालीदास खजूरिया–जगानु–उधमपुर
8. श्री शिवराम भक्त नम्बरदार-ग्राम-बग्गे (डन्साल)–जम्मू
9. मास्टर शिवदास-पंचारी-उधमपुर
10. श्री अब्दुल रशीद ज़ोन–रियासी-उधमपुर
11. श्री शिव दोबलिया–ज्योतिपुरम–उधमपुर
12. श्री त्रिलोक सिंह भ्रगियाल–सलाल–उधमपुर
13. श्री शाहबाज़ राजौरवी–राजौरी।
14. श्री हरदेव सिंह बन्दराल–माड़ता-रामनगर, उधमपुर
15. श्री ओम शर्मा जन्द्रयाड़ी–राम नगर–उधमपुर
16. श्री देश बन्धु डोगरा नूतन–रैपर–ख्यून-राम नगर–उधमपुर
17. श्री राज विलावरी–विलावर-कठुआ।
18. श्री रोमाल सिंह भडवाल–भड्डू–विलावर-कठुआ।
19. श्री ऐंचल सिंह–गढ़, अखनूर–जम्मू
20. श्री कृष्ण सिंह–गढ़, अखनूर–जम्मू

21. मास्टर ध्यान सिंह–बटैहड़ा–अखनूर–उधमपुर
22. श्री शक्ति सिंह–अखनूर–जम्मू
23. श्री कर्ण सिंह भाऊ–कलीठ–अखनूर, जम्मू
24. श्री गुरुदत्त शर्मा–हीरा नगर–कठुआ
25. श्री मन्साराम चंचल–कठुआ।
26. डॉ० सत्यपाल श्री वत्स–रूप नगर, जम्मू।
27. डॉ० निर्मल विनोद–रिहाड़ी कॉलोनी–जम्मू
28. (स्व०) डॉ० शिवराम दीप–कल्चरल अकादमी–जम्मू।
29. डॉ० ज्ञान सिंह–कल्चरल–अकादमी–जम्मू
30. श्री चूनीलाल शर्मा, ग्राम लड्डन–उधमपुर।
31. श्री अनिल पावा–चबूतरा बाज़ार, उधमपुर
32. श्री बलदेव सिंह ग्राम डबरिया (क्रिमची, उधमपुर)
33. श्री कृष्ण सिंह ग्राम डबरैह् (क्रिमची) उधमपुर
34. मास्टर स्वर्ण सिंह कोहस्तानी–बसन्तगढ़, उधमपुर
35. श्री प्रकाश प्रेमी–रामनगर–उधमपुर
36. श्री मदन लाल सूरी–भारख (रियासी) उधमपुर
37. मास्टर बाल कृष्ण आर्य, पौनी, उधमपुर
38. श्री शिवचरण गुप्ता नायब तहसीलदार, पौनी, उधमपुर।
39. श्री राजेश अजनबी–पौनी (रियासी, उधमपुर)
40. श्री लाल चन्द सुनार–रामगढ़, जम्मू
41. श्री ओंकार पाधा–गोबिन्दसर–कठुआ
42. श्री दीवानचन्द, रिहालता कठुआ
43. मास्टर दीना बन्धु बलकुड़िया-जिब-उधमपुर।
44. श्री मनीराम लुहार ग्राम–सुनाड़ी (बड़ौला) उधमपुर।
45. श्री देवीदास नम्बरदार–सुनाड़ी, उधमपुर
46. मास्टर फकीरचन्द ग्राम थियाल, राम नगर, उधमपुर।
47. मास्टर शक्ति कुमार शर्मा-क्होग, राम नगर, उधमपुर।
48. मास्टर राधा कृष्ण शास्त्री, ग्राम क्होग, उधमपुर।

49. ठाकुर बलदेव सिंह चिब, रणवीर सिंह पुरा, जम्मू।
50. श्री सोबाराम चौकीदार ग्राम छछुआ-गूल-उधमपुर।
51. प्रो० ओम प्रकाश सूदन-पुंछ।
52. प्रो० हरदेव सिंह खजूरिया-पुंछ।
53. श्री जी.ए. मीर, थन्ना मंडी, राजौरी।
54. श्री जगदीश गद्दी-अनसार-बसन्तगढ़, राम नगर, उधमपुर।
55. श्री दीवान चन्द नायब सरपंच रस्सली गद्देरण, राम नगर, उधमपुर।
56. श्री जगनसिंह सरपंच-ग्राम चनूनता-रामनगर, उधमपुर।
57. श्री राम पाल गलान-ख्यून-रामकोट-कठुआ।
58. स्व० डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क, जम्मू।
59. डॉ० अनीता बलौरिया-जम्मू-विश्वविद्यालय, जम्मू।
60. डॉ० निर्मल सिंह, इतिहास विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।
61. मास्टर रत्न गोपाल खजूरिया-पैंथल, उधमपुर।
62. मास्टर राम रत्न जम्बाल-पैंथल उधमपुर।
63. श्रीमती अनसुया शर्मा (लेखक की पत्नी) पैंथल उधमपुर।
64. श्री पवित्र सिंह सलाथिया-ग्राम-गूढ़ा सलाथियां-जम्मू।
65. श्री हेमराज, ग्राम मनवाल, रामनगर, उधमपुर।
66. महन्त विजय गिरि, लखनपुर-कठुआ।
67. श्री साईं दास-लखनपुर-कठुआ।
68. श्री सैफ अली-कपूरगढ़, जम्मू।
69. मास्टर प्रेम सिंह-कपूर गढ़, जम्मू।
70. मास्टर ओम प्रकाश दीपक, गुढ़ा ब्राह्मणां-अखनूर।
71. श्री सुंभापचन्द्र ग्राम अवताल-रामगढ़-जम्मू।
72. श्री दूनी चन्द 'नाथ' विलावर-कठुआ।
73. श्री पूर्ण चन्द शर्मा, नम्बरदार, रामकोट-कठुआ।
74. श्री तिलकराज-बसोहली
75. श्री जयदेव भारती-रामगढ़-जम्मू
76. स्व० बिशनदास खजूरिया-राज पुरोहित-राम कोट।

77. श्री चरणदास हरतरेयान, जिब, बड़ौला, उधमपुर।
78. पंडित बाल कृष्ण माथर, रणवीर सिंहपुरा, जम्मू।
79. मास्टर नसीबदास, ग्राम जसबां, जम्मू।
80. महंत बजरंग दास ग्राम-बुर्ज-जम्मू।
81. श्री विजय कुमार पूर्व सरपंच-सुचेतगढ़, जम्मू।
82. श्री ताराचन्द गिरदावर-सुचेतगढ़, जम्मू
83. डॉ० कृष्ण मिश्र-ग्राम परगवाल, जम्मू
84. श्री सतगुर प्रकाश 'वाली'-ज्योड़ियां-अखनूर, जम्मू
85. श्री इन्दू-भूष ग वाली-ज्योड़ियां-अखनूर, जम्मू
86. स्व० शांति स्वरूप शर्मा, टिक्करी, उधमपुर
87. स्व० त्रिलोक सिंह चनासिया, चनास-टिक्करी, उधमपुर
88. श्री पूर्णचन्द वैदय, ग्राम मैरे मान्दरेयां, अखनूर, जम्मू
89. प्रो० परवाना, (बी.एड, कॉलेज) जम्मू, नौशहरा-राजौरी।
90. मास्टर हिमा कान्त, जवाहर नगर, राजौरी।
91. मास्टर विद्याधर मगोत्रा, ग्राम पल्ली, विश्नाह, जम्मू
92. डॉ० धनीराम शास्त्री, श्री रणवीर पुस्तकालय, जम्मू
93. मास्टर शमशेर चन्द-चनैनी, उधमपुर।
94. श्री अमर सिंह आदिल, मड़ीन, हीरा नगर, कठुआ।
95. डॉ० प्रियतम कृष्ण 'कौल' भद्रवाह-डोडा
96. श्री फरीद-अहमद फरीद, कल्चरल अकादमी-डोडा
97. श्रीमती प्रेम प्यारी, अध्यापिका, उधमपुर
98. मास्टर लाल चन्द-शुद्धमहादेव-उधमपुर
99. स्व० ईशरदास चंचल-रियासी-उधमपुर
100. मास्टर लोक नाथ 'भारती' पंजारी-उधमपुर
101. प्रो० सुरेन्द्र पाधा-भद्रवाह, डोडा।
102. प्रो० शिव कुमार, भद्रवाह डोडा।
103. प्रो० इकबाल, भद्रवाह डोडा।
104. श्री पुरुषोतम महाजन-मंहानपुर-बिलावर-कठुआ।

105. श्री उत्तम परदेसी-भड्डु, कठुआ।
106. उत्तम चन्द भड़वाल, थड़ा कुलवाल, कठुआ।
107. श्री केवल कृष्ण शाकिर, शक्तिनगर, जम्मू।
108. श्री पीताम्बर दत्त उपाध्याय-बसोहली-कठुआ।
109. श्री बालकराम बराल-सुन्दरबनी-राजौरी।
110. मास्टर सतपाल सराक-सुन्दरवनी।
111. श्रीमती कृष्णादेवी पत्नी रत्न सिंह, विजयपुर-रियासी, उधमपुर।
112. रिछपाल सिंह भाऊ-खौड़, अखनूर, जम्मू।
113. स्व० ओम प्रकाश गुप्ता कोटलवी, पुरानी मंडी, जम्मू।
114. प्रो० किरण बख्शी-मूल कोटली, वर्तमान, जम्मू।
115. मास्टर बुआदित्ता, टरगवाल, अखनूर, जम्मू
116. श्री कृष्ण लाल टकाइया, ग्राम-गढ़-अम्बारां, अखनूर, जम्मू
117. श्री झग्गर सिंह पंवार ग्राम, गढ़, अम्बारां, जम्मू।
118. स्व० सुखदेव भक्त, ग्राम भंभड़वा, अखनूर जम्मू।
119. श्री सीता राम शर्मा ग्राम गसानु, अखनूर, जम्मू।
120. स्वामी विद्यानन्द, भारती. थड़ा कुलवाल, कठुआ।
121. मास्टर पिशोरी लाल 'शरर' बटोत-डोडा।
122. मास्टर भरतचंद, चन्द्रकोट (वर्तमान टिक्करी, डोडा)
123. मास्टर लक्ष्मण दास-बाड़ीगढ़, रामनगर, उधमपुर।
124. सूरज प्रकाश सूबेदार सरना, साम्बा, जम्मू।
125. सरदार सिंह चबियाल, ठेरगढ़, साम्बा, जम्मू।
126. श्री अनन्तराम चबियाल (जमेदार) ठेरगढ़, साम्बा, जम्मू।
127. स्व० डाक्टर वी.के. शर्मा, जम्मू।
128. श्री गिरधारीलाल वर्मा, पंचारी, उधमपुर।
129. श्री मुन्शीराम बुद्ध ग्राम बतोता, लांदर, उधमपुर
130. श्री ब्रह्मस्वरूप-रियासी-उधमपुर
131. स्व० देवराज गुप्ता-चनैनी-उधमपुर
132. श्री हंसराज नाग, नगोती (वर्तमान कटड़ा) उधमपुर

133. प्रो० एम.एल. टिक्कू. जम्मू
134. प्रो० भारत भूषण शर्मा-नानक नगर-जम्मू
135. श्री अभिशाप, रामनगर, उधमपुर।
136. श्री राज राही, नई बस्ती, रियासी, उधमपुर।
137. श्री सूरज सराफ, वरिष्ठ पत्रकार, जम्मू।
138. श्री धर्मचन्द प्रशान्त, वरिष्ठ वरिष्ठ पत्रकार, जम्मू।
139. डॉ० जगदीप सिंह सम्बयाँल, साम्बा, जम्मू।
140. श्री बलदेव शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार, जम्मू।
141. मास्टर छज्जुराम शास्त्री, चढ़ेआई, उधमपुर
142. श्री शाम लाल रैणा, कल्चरल अकादमी, जम्मू
143. श्री जनक सिंह-ग्राम भाला-भद्रवाह-डोडा
144. श्री विद्या सागर शर्मा, ग्राम कोठे कचैंइयें-तहसील बिश्नाह-जम्मू
145. श्री मोहन लाल शर्मा, लक्ष्मी नगर-जम्मू
146. स्व० सुन्दर दास (मूल देसा) वर्तमान-कुन्नेआं पैंथल।
147. मास्टर बलवान सिंह-चनैनी।
148. मियां जालन्धर सिंह टिक्करी चनास-उधमपुर
149. श्री बाबू सिंह राजा-थाती-उधमपुर।
150. श्री बंसीलाल खजूरिया-पैंथल-उधमपुर
151. डॉ० राजकुमार, हिन्दी विभाग, जम्मू-विश्व विद्यालय
152. श्री सतपाल मिश्र-साम्बा, जम्मू।

❑ ❑ ❑

सहायक ग्रंथ सूची

1.	राजतरंगिणी	कल्हण
2.	राजदर्शनी	गणेश दास बटैहड़ा
3.	तारीख डोगरा देश	नृसिंहदास नरगिस
4.	ए शार्ट हिस्ट्री आफ जम्मू राज	डॉ सुखदेव सिंह चाड़क
5.	हिस्ट्री एंड कल्चर आफ हिमालियन स्टेट-भाग-3	डॉ सुखदेव सिंह चाड़क
6.	हिस्ट्री आफ किश्तबाढ़	दूनीचन्द शर्मा
7.	पूर्वोत्तरीय पर्वतीय प्रदेश का लोक साहित्य	डॉ प्रियतम कृष्ण कौल
8.	जम्मू एंड कश्मीर टैरी टोरीज	फेडरिक डिव
9.	पुंछ	खुशदेव मैनी
10.	बाहु का किला	डॉ वी. के शास्त्री
11.	ए गजटेयर आफ कश्मीर	वेट्स
12.	गुलाब नामा	अनु० डॉ सुखदेवसिंह चाड़क
13.	महाराजा रणजीत देव राइज एंड फाल	डॉ सुखदेवसिंह चाड़क
14.	लाईफ एंड टाईम्ज आफ महाराजा रणवीर सिंह	डॉ सुखदेवसिंह चाड़क
15.	डुग्गर की दन्त कथाएँ	प्रो० शिव 'निर्मोही'
16.	डुग्गर का इतिहास	प्रो० शिव 'निर्मोही'
17.	तारीख राजगान-ए-जम्मू	काह्न सिंह बिलौरिया
18.	साढ़ा साहित्य-1964	

19. शीराजा डोगरी-इतिहास अंक सम्पादक-ओम गोस्वामी
20. डुग्गर का सांस्कृतिक इतिहास-सम्पादक-ओम गोस्वामी



